मेरे नाटक

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के सात प्रसिद्ध
नाटको का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक
श्री ओउम् प्रकाश गुप्ता

प्रकाशक
नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़
देहली

दो शब्द

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साहित्य से आज कौन परिचित नहीं है, लगभग विश्व की समस्त भाषाओं में उनके श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद हो गया है, शायद ही कोई भाग्यहीन भाषा रही हो जिसमें गुरुदेव का साहित्य अनुवादित न हुआ हो। कई देशों में तो उनके साहित्य को मूल में पढने के हेतु लोग बंगला सीख रहे हैं। यही उनके साहित्य की महानता दर्शाने के लिये काफी होगा, वैसे उनके साहित्य के बारे में जो भी कहा जाय थोड़ा है।

हिन्दी साहित्य में यह कमी मुझे बड़े दिनों से खटक रही थी कि 'गुरुदेव' के नाटकों का कोई संग्रह नहीं है, और इसके लिये मैंने स्वयं भी एक दो बँगला भाषी विद्वानों से बात की थी, मगर बात बनी नहीं। और एक दिन यह कार्य मुझको स्वयं ही उठाना पड़ा, जब कि मेरा बँगला ज्ञान यों ही साधारण-सा है। और जब मैंने गुरुदेव के नाटकों को बँगला में तलाश किया तो फिर मेरे सामने बड़ी कठिन समस्या उत्पन्न हो गई, और मैंने अपने को अनुवाद करने के अयोग्य पाया। मगर हास्यकवि श्री गोपालप्रसाद व्यास जी के बारबार प्रोत्साहन देने से मैंने कार्यारम्भ कर दिया। उनका मैं अत्यन्त आभारी हूँ, क्योंकि बिना उनके प्रोत्साहन के ये कठिन कार्य शायद पूरा न होता।

सबसे प्रथम 'बलिदान' नाटक का अनुवाद किया। पहले मेरी इच्छा थी कि एक नाटक समाप्त होने के पश्चात् मैं इसे रोक दूंगा, मगर जब 'बलिदान' समाप्त हुआ और दूसरे नाटक 'मालिनी' में हाथ लगाया तो एक के बाद एक यह सात नाटकों का अनुवाद हो ही गया। जिसमें 'चित्रा' मैंने उर्दू से अनुवाद है, और 'कर्ण कुन्ती' सम्वाद पद्य में होने पर भी मुझे इतना भाया कि मैंने उसे सर्व साधारण के लिये अनुवाद करना आवश्यक समझा उसे भी 'गुरुदेव' के छ नाटकों में मिलाकर सात की गिनती पूरी कर दी।

इसकी भाषा के बारे में मुझे कुछ निवेदन करना है। अर्थात् मैंने ये चेष्टा की है कि मूल के समस्त भाव ज्यो-के-त्यों अनुवाद में आ जाँय और भाषा इतनी सरल हो जाय कि सर्व साधारण उन्हे समझ सके। मगर फिर भी मैं यह दावा कर सकने में असमर्थ हूँ कि सर्व साधारण इसे पूर्णरूपेण समझ ही लेंगे। इस सम्बन्ध में मेरा विचार है यदि इनमें से किसी भी नाटक को रंगमंच पर खेला जाय तो निश्चय ही सर्व साधारण इसे सरलता से समझ लेंगे और आज के छिछले और गदे नाटको की ओर से उनका झुकाव सरलतापूर्वक ऐसे अच्छे नाटको की ओर हो जायेगा।

मैं अपने साथी इजहार असर को भी धन्यवाद देना नहीं भूल सकता, जिन्होंने 'चित्रा' के अनुवाद में मेरी काफी सहायता की।

यदि पाठकों ने इसे अपनाया तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

ओ३मप्रकाश गुप्ता

बलिदान

पात्र परिचय

रानी ज्ञानवती	
रघुपति	दरवार का पुजारी
अपरना	एक गरीब लडकी
मंत्री	
नक्षत्रराय	राजा का भाई
मियां राय	सैनापति
जंसिह	मदिर का कर्मचारी,
	इनके सिवाय अन्य दरवारी, नागरिक पुजारी आदि —

दृश्यः—एक

रानी ज्ञानवती प्रवेश होती है।

ज्ञानवती—माता ! क्या मैंने तुम्हे रुष्ट कर दिया ? तुम तो ऐसी मा हो कि भिखारिन को भी सन्तान दिया करती हो, वह भिखारिन जो अपनी सन्तान को वेचकर पेट पाला करती है । तुम ऐसी स्त्रियो को भी सन्तान देती हो जो वद-नामी से वचने के लिये अपने वच्चो का गला घोट दिया करती हैं । और अव यहाँ एक रानी आपके चरणो में लेटी हुई है । सन्तान के लिये तडप रही है । जिसकी छाती सन्तान के लिये व्याकुल है । मुझ से ऐसा क्या पाप हुआ है । मुझे माँ के स्वर्ग से क्यो धक्का देकर अलग कर दिया गया है ?

पुजारी रघुपति आता है

ज्ञानवती—स्वामी ! क्या मैंने कभी माता की सेवा मन से करने में कुछ उठा रखा ? क्या मैंने सदैव इनके चरणो मे माथा नही रगडा ? फिर माता मुझ से रुष्ट क्यो हैं ? मुझे माँ ने एक वजर और सूखे रेगिस्तान मे फेंक दिया है ।

रघुपति—हमारी माँ तनिक कडे स्वभाव की है, इसे कानून की चिन्ता नही । वह दुख और झझटो के काँटो मे नही फसना चाहती । वेटी ! सन्तोष करो । हम तुम्हारे लिये आज एक मुख्य वलिदान करने वाले हैं । देवी वह वलिदान स्वीकार कर लेगी ।

राजा गोविन्द, मन्दिर का कर्मचारी जैसिंह और एक फकीर की लड़की अपना के साथ प्रवेश करते हैं।

जैसिह—सरकार आप क्या चाहते हैं ?

राजा—क्या यह सच है कि इस गरीव लडकी की वकरी वलिदान के लिये वलपूर्वक लाई गई थी ? क्या माँ ऐसा वलिदान स्वीकार कर लिया करती है ?

जैसिह—महाराज ! मन्दिर के कर्मचारी पूजा की सामग्री एकत्रित करके लाते हैं, हम यह नही जानते कि वह कहाँ से लाते हैं । अरे वच्ची तुम रो रही

हो, जब माता ने तुम्हारा बलिदान स्वीकार कर लिया तो फिर आँसू नही बहाने चाहिये तुमको ?

अप्रना—माता ! मै उसकी माता हूँ ! जब कभी मै बाहर से घर आया करती थी तो वह घास खाना भूल जाया करती थी, वह स्नेह की दृष्टि से गर्दन उठाये मेरा मार्ग तका करती थी, जब मै बाहर से आती तो उसे गोद मे उठा लिया करती और भीख से मिले टुकडो से उसका पेट भरा करती थी। मेरे सिवाय उसकी कोई अन्य माँ नही थी।

जैसिह—महाराज ! यदि मै अपने प्राण देकर भी बकरी को जीवित कर सकता तो फिर प्रसन्नता से अपने प्राण दे देता, पर जो वस्तु माता ले चुकी है उसे मै कैसे वापिस कर सकता हूँ ?

अप्रना—माता ले चुकी है, यह भूठ बात है ? वह माता नही होगी, डायन होगी !

जैसिह—ओह ! माता की तौहीन ! यह लडकी नास्तिक है।

अप्रना—(काली देवी की ओर देखते हुए) माता क्या तुम यहाँ इसीलिये हो कि एक गरीब लडकी के प्रेम को नष्ट कर दो। यदि ये बात सच है, तो बताओ मै तुमको बुरा क्यो न कहूँ ? महाराज आप ही बताये ?

राजा—मेरी बेटी ! मै कुछ नही कह सकता ? मेरे पास इसका कोई उत्तर नही है।

अप्रना—खून की यह धार जो मन्दिर की सीढियो से बह निकली है, क्या मेरी बच्ची की है ? आह ! मेरी प्यारी जब तुम्हारे गले पर छुरी फेरी जा रही थी और तुम्हारे प्राण तडप-तडप कर निकल रहे थे, तो उस समय इस गूँगी दुनिया से निकल कर क्या तुम्हारी चीख मुझ तक नही पहुँच सकती थी ?

जैसिह—(देवी की ओर आकर्पित हो) काली माता ! मै बचपन से तुम्हारी पूजा कर रहा हूँ पर आज तक तुम्हारे भेद को न पा सका। क्या दया धर्म की समस्त बाते केवल अभाग्यशालियो के लिए ही हैं, देवताओ को इससे कोई मतलब नही ? आओ मेरी बच्ची मेरे साथ आओ, मुझसे जो बन पडेगा, वह मै करूँगा। जब देवता सहायता करना बन्द कर दे तो फिर मनुष्यो की ओर आक-

पित होना पड़ता है।

रघुपति, राजा का भाई नक्षत्रराय और दूसरे दरबारी प्रवेश करते हैं।

समस्त—हमारे राजा की जय!

राजा—आजसे तुम लोगों को आज्ञा दी जाती है कि मन्दिर में कभी भी खून न बहाया जाय!

मन्त्री—महाराज, आप देवी के समक्ष बलिदान के लिये मना कर रहे हैं!

सेनापतिराय—उफ बलिदान के लिए मना!

नक्षत्रराय—इतनी कड़ाई! बलिदान से रोका जा रहा है.!

रघुपति—क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ?

राजा—नहीं, यह स्वप्न नहीं हैं, तुम जाग रहे हो। आज माता एक अबोध लड़की के वेष में मेरे पास आई, और उसने मुझसे कहा, मैं खून स्वीकार नहीं करती।

रघुपति—महाराज! वह तो युगों से खून पी रही हैं, आज खून से उन्हे घृणा क्यों हो गई?

राजा—यह गलत है, माता ने कभी खून नहीं पिया, खून देखकर सदैव उसे दुःख हुआ है।

रघुपति—महाराज मैं आपको एक बार सोचने का अवसर देता हूँ, आपको आकाश के कानून को बदलने का अधिकार नहीं है।

राजा—भगवान के शब्द सारे कानूनों से श्रेष्ठ और उच्च हैं।

रघुपति—राजन् घमन्ड मत कीजिये। अपनी हिमाकत के साथ, क्या आप यह दावा कर सकते हैं कि भगवान के शब्दों को केवल आपने ही सुना, जबकि सबसे पहले मुझे सुनना चाहिये था?

नक्षत्रराय- वायुमडल में भगवान हर समय बोलता है, भगवान के शब्द राजा सुने और भला पुजारी न सुने?

राजा—वायुमडल मे भगवान हर समय बोलता है, पर जो लोग उसकी आवाज को सुनना नहीं चाहते, वह सुन भी कैसे सकते हैं।

रघुपति—आप नास्तिक हैं, आपने धर्म नष्ट कर दिया है महाराज?

राजा—पुजारी, कल मेरी ओर से राज्य के समस्त पुजारियो को आज्ञा सुनाना कि यदि भविष्य मे कभी माता के चरणो के समक्ष रक्त की एक बूद भी गिरी तो रक्त बहाने वाले को सदैव के लिये राज्य से निर्वासित कर दिया जायगा !

रघुपति—क्या यह अन्तिम निर्णय है ?

राजा—हाँ ।

रघुपति—(क्रोध से) तुम पर ईश्वर का क्रोध ! क्या तुम अपने घमड मे यह समझ बैठे हो कि काली माता भी तुम्हारी प्रजा है ? क्या तुम अपने कानून से मा के कानूनो को भी तोडना चाहते हो ! तुम ऐसा कभी नही कर सकते ! मैं घोपित करता हूँ कि ऐसा कभी नही होगा ! मैं माता का साधारण सेवक हूँ !

(बाहर चला जाता है)

सेनापति राय—महाराज, क्षमा कीजिये ! क्या आपको ऐसी आज्ञा लागू करने का अधिकार है ?

मत्री—महाराज ! क्या आप अपनी आज्ञा को अब बदल नही सकते ?

राजा—अपनी राजधानी से अपराधो को समूल नष्ट करने मे मै अब देर नही कर सकता ।

मत्री—पर अपराधो का समय इतना बडा तो हो नही सकता, एक युग से देवी के सामने भेट चढाई जाती रही है ।

राजा चुप रहता है

नक्षत्रराय—मत्री तुम ठीक कहते हो ?

मत्री—हमारे पिता और बाबा इसी रीति को पालते आये हैं, फिर आप किस प्रकार मना करके उनके कार्य को गलत बताते हैं ?

राजा चुप रहता है

सेनापतिराय—समय की बनाई गई रीति आप तोड नही सकते महाराज !

राजा—अब इस पर बहस व्यर्थ है । मेरी आज्ञा, मेरा आदेश देश के कौने-कौने मे पहुँचा दो !

मंत्री—महाराज, आज रानी भी एक बलि देने वाली हैं और वह बलि मन्दिर की चौखट पर पहुँच चुकी है।

राजा—उसे वापिस कर दो !

(राजा बाहर चला जाता है)

मंत्री—यह क्या हो रहा है ?

नक्षत्रराय—क्या हम बौद्धों की नाई पशुओं पर भी दया करने लगे हैं, कितनी बेकार-सी बात है ?

(सब बाहर चले जाते हैं)

रघुपति प्रवेश करता है, उसके साथ जैसिंह उनके पैर धोने के लिये पानी लिये हुए हैं।

जैसिंह—बापू !

रघुपति—चले जाओ !

जैसिंह—यह पानी लीजिये !

रघुपति—इसकी आवश्यकता नहीं है।

जैसिंह—आपके वस्त्र ?

रघुपति—उन्हें भी ले जाओ।

जैसिंह—क्या मैंने आपको रुष्ट कर दिया है ?

रघुपति—मुझे अकेला छोड़ दो, अपराधों की परछाइयाँ सन्नाटे में डूब चुकी हैं, राजा की गद्दी मंदिर के सिंहासन से ऊँची उठ गई है। ऐ देवता ! क्या तुम राजा के कर्मचारी की तरह राजा की आज्ञा मान लोगे ? राक्षस और मनुष्य मिलकर राजधानी को नष्ट करने पर तुले हुए हैं ! ऐ देवता ! क्या तुम नामोशी से बचने के लिये चुप रहे आओगे ? ब्राह्मण यहाँ मौजूद हैं, यदि देवता कुछ नहीं कर सकते तो ब्राह्मणों को कुछ-न-कुछ करना पड़ेगा। मेरे पुत्र ! मेरे वक्ष में भूचाल आ गया है !

जैसिंह—पिताजी बात क्या है ?

रघुपति—मैं कुछ नहीं कह सकता, माता देवी से ही पूछो, उसके कानून को तोड़ा जा रहा है !

जैसिंह—कानून किसने तोडा महाराज ?

रघुपति— राजागोविन्द ने !

जैसिंह—राजागोविन्द ने ? कालीदेवी का कानून तोड दिया ?

रघुपति—हूँ ! उसने तुम्हारा और मेरा कानून तोडा है। तमाम पूज्य-ग्रन्थो का कानून तोडा है ! सारे विश्व की भौतिक देवी-कालीमाता का कानून तोडा है। साधारण-सी गद्दी पर बैठकर राजा ने कानून तोड दिया है !

जैसिह—राजागोविन्द ने ?

रघुपति—हॉ-हाँ, तुम्हारे राजागोविन्द ने ! तुम्हारे प्यारे राजा ने ! नमक-हराम, मैंने अपना सारा प्रेम देकर तुम्हे पाला-पोसा पर फिर भी तुम्हे राजागोविन्द मुझ से अधिक प्यारा है ?

जैसिंह—वालक अपने पिता की गोद मे बैठकर चन्द्रमा की ओर हाथ फैलाता है, आप मेरे पिता हैं, और राजागोविन्द मेरा चन्द्रमा है। मैंने, लोगो से सुना है कि राजा ने बलि देने के लिये मना कर दिया है, यह बात ठीक है। उनकी यह बात मान तो नही सकते ?

रघुपति—जो नही मानेगा, उसे देश से निर्वासित कर दिया जायेगा !

जैसिंह—तो यह कौन-सी बडी बात है, जिस देश मे माता की पूजा न हो सके वहाँ से निर्वासित हो जाना ही अच्छा है !

रघुपति—नही, नही जब तक मै जीवित हूँ, ऐसा कदापि नही हो सकता। मन्दिर की पूजा वैसे ही होती रहेगी, जैसे हुआ करती थी।

(सब वाहर चले जाते हैं)

ज्ञानवती अपने कर्मचारी के साथ प्रवेश करती है ।

ज्ञानवती—यह तुम क्या कह रहे हो ? रानी की वलि को मन्दिर के दर-वाजे से बाहर कर दिया गया ! क्या इस पृथ्वी पर किसी आदमी मे इतनी हिम्मत है ? उस आदमी का नाम बतलाओ ?

कर्मचारी—रानी ! मै नाम नही ले सकता !

ज्ञानवती—नाम नही ले सकते, जब मैं तुम्हे आज्ञा देती हूँ तो फिर नाम क्यो नही ले सकते ? भला तुम्हे मेरे होते डर किस बात का है ?

कर्मचारी—क्षमा कीजिये !

ज्ञानवती—अभी कल सन्ध्या की बात है कि दरबारी गवैयो ने मेरे कसीदे गाये, ब्राह्मणो ने मुझे आशीर्वाद दिया, कर्मचारियों ने मेरी आज्ञा मानी, पर आज हो क्या गया है, देवी मेरी पूजा स्वीकार क्यो नही करती ? रानी अपने अधिकार खो चुकी है, क्या मेरा देश स्वप्नो का ससार तो नही है ! जाओ, पुजारी से मेरा प्रणाम कहो ! और कहो कि मुझ से तुरन्त मिल लें !

(कर्मचारी बाहर जाता है)

राजा प्रवेश करता है

ज्ञानवती—महाराज क्या आपने सुना है कि कालीमाता के मदिर से मेरी बलि सामिग्री वापिस कर दी गई ?

राजा—मै जानता हूँ।

ज्ञानवती—आप जानते हैं फिर भी आप चुप रह गये।

राजा—मै तुमसे प्रार्थना करने आया हूँ कि अपराधी का अपराध क्षमा कर दो रानी !

ज्ञानवती—मैं मानती हूं कि आप बहुत बडे दयावान हैं। पर यह दया नही कमजोरी है। यदि आपकी दया किसी कार्य में आडे आती है तो दड देने के लिये मुझे अधिकार सौंप दीजिये। केवल यह बता दीजिये कि वह है कौन ?

राजा—मेरी रानी वह मैं ही हूँ। यह मेरा ही अपराध है कि मैंने तुमको इतना कष्ट पहुँचाया।

ज्ञानवती—मै समझ नही सकी ?

राजा—आज से मैंने आज्ञा दी है कि देवताओ के मदिरो में रक्त की एक बूंद न बहाई जाय।

ज्ञानवती—पर यह आज्ञा है किसकी ?

राजा—माता की !

ज्ञानवती—भला किसने सुनी ?

राजा—मैंने।

ज्ञानवती—आपने ? मुझे हँसी आ रही है। सारे विश्व की माँ केवल आपके

दरवाजे पर प्रार्थना करने आये।

राजा—प्रार्थना नही, अपना कष्ट लेकर!

ज्ञानवती—महाराज! आपका राज्य मदिर की दीवारो के बाहर से आरम्भ होता है। मन्दिर की दीवारो के अन्दर अपनी आज्ञा मत लागू कीजिये!

राजा—यह मेरी आज्ञा नही, माता की आज्ञा है!

ज्ञानवती—यदि आप निश्चय कर चुके हैं, तो कम-से-कम मेरे धर्म पर छापा मत मारिये, मुझे अपनी सामर्थ के अनुसार अपनी बलि चढाने दीजिये।

राजा—मैंने देवी से प्रण कर लिया है कि मन्दिर मे अब कभी रक्त नही बहाया जायेगा, और अब मै इसके विरुद्ध चल नही सकता।

ज्ञानवती—मैंने भी देवी को वचन दिया है कि तीन सौ बकरी के बच्चो और एक सौ भैसो की बलि दी जायगी, और मै अपना वचन पूरा करूँगी। आप अब जा सकते हैं।

राजा—जैसी तुम्हारी इच्छा! पर मेरी आज्ञा अटल है।

(राजा बाहर जाता है)

रघुपति प्रवेश करता है।

ज्ञानवती—पुजारी, मेरी बलि को मन्दिर से वापिस भेज दिया गया था?

रघुपति—आपकी बलि और एक गरीब की बलि मे कोई अन्तर मै नही देख पाता। पर कठिनाई यह है कि माता के अधिकार छीन लिये गये हैं और राजा का गर्व बहुत बडा राक्षस बन कर देवी के मार्ग को रोके हुए है। समस्त पुजारी क्रोध की दृष्टि से यह सब देख रहे हैं।

ज्ञानवती—धर्म पिता! इसका अन्तिम फल क्या होगा?

रघुपति—इस विषय मे केवल देवी ही जान सकती है। वही अपने स्वप्नो से ससार के महल बनाती है। यह बात कटुसत्य है कि जो भी राजगद्दी माता के सिहासन पर अपनी परछाई डालेगी वह पानी के बुलबुले की तरह नष्ट हो जायेगी।

ज्ञानवती—धर्म पिता! अब हम पर दया करो, हमे अधर्म से बचाओ!

रघुपति—अहा .....हा . हा! मै तुम्हे बचाऊँ? तुम्हे? राजा की पत्नी को? जो तनिक-सी राजगद्दी पर घमड किये बैठा है। जो आकाश के सिहासन

का ठट्ठा मारकर हास परिहास करता है। वह बलिदान की रीति तोडना चाहता है !

ज्ञानवती—(रोते हुए) हम पर दया करो महाराज ! मुझ पर दया करो !

रघुपति—ब्राह्मणो के अधिकार वापिस करो, जाओ शीघ्रता करो !

ज्ञानवती—मै वापिस दिलाऊँगी ब्राह्मणो के अधिकार ! धर्म पिता ! जाओ जैसी तुम्हारी इच्छा हो पूजा करो ! तुम्हे कोई शक्ति नही रोक सकती !

रघुपति—तुम्हारी दया से मै दब गया हूँ महारानी ! तुम्हारी एक दृष्टि से देवता बदनामी से बच गये और ब्राह्मणो को पूजा करने का अधिकार मिल गया। जाओ फलो-फूलो, देवता तुम्हारी रक्षा करेंगे !

(पुजारी बाहर जाता है।)

राजा प्रवेश करता है।

राजा—रानी, तुम्हे हुआ क्या ? जो क्रोध से तुम्हारा चेहरा तमतमाया हुआ है ?

ज्ञानवती—मै आपसे कैसे बोलूँ ? आप स्वयं घर को नष्ट करने पर तुले हुये हैं।

राजा—स्त्री की मुस्कराहट समस्त बाधाओ को दूर कर देती है। उसका प्रेम भगवान का एक रूप है !

ज्ञानवती—जाओ मै आपका मुँह नही देखना चाहती !

राजा—जैसी इच्छा ! पर जब तुम याद करोगी तभी आऊँगा !

ज्ञानवती—(राजा के चरणो पर लेटते हुए) क्या आप इतने पाषाण हृदय हैं कि एक स्त्री के गर्व को भी नही सह सकते। क्या आप नही जानते कि जब प्रेम मे कोई चीज रुकावट पैदा करती है तो प्रेम क्रोध से विष उगला करता है।

राजा—तुम जानती हो, मुझे तुम पर सदैव भरोसा रहा है। और मै यह भी जानता हूँ कि मेघ तो कुछ क्षणो के लिये आते हैं, सूर्य सदैव चमकता रहता है।

ज्ञानवती—हाँ बादल चले जायेंगे ! भगवान की माया अपने स्थान पर ही रहेगी और समस्त विश्व का सूर्य समस्त विश्व मे ही चमकता रहेगा। मेरे राजा! आप अपनी आज्ञा वापिस ले लीजिये ताकि ब्राह्मण देवता की पूजा कर सकें, क्योकि आप जानते हैं कि राजाज्ञा मन्दिर की दीवारो के बाहर ही होती है।

राजा—ब्राह्मणो को कोई अधिकार नही कि वे भलाइयो के कानून को तोड सकें ! क्या तुम समझती हो कि मनुष्यो का रक्त देवताओ की भेंट चढाया जा सकता है ? राजा को कम-से-कम इतने अधिकार तो होने चाहिये कि वह नेकी और वदी के कानून को स्थिर रख सके ।

ज्ञानवती—मैं आपके पाँवो पडती हूँ, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि हजारो वर्षो से बना कानून आप नही तोड सकते ! जिस प्रकार वायु समस्त मनुष्यो का सम्मलित धन है, उसी प्रकार आपकी रानी आपके पैरो मे लोट रही है। आपके लिये, आपकी जनता के लिये मैं विनती करती हूँ कि मेरी बात मान लो । आप कितने पाषाण हृदय हैं ? क्या आप अपनी रानी के बँधे हुए हाथ भी नही देख सकते। क्या प्रेमके सारे कर्तव्य भूल गये ·· तो फिर · · जाओ··· · जाओ! मेरे पास से चले जाओ ।

(राजा जाता है ।)

रघुपति, जैसिंह, सेनापतिराय प्रवेश करते हैं ।

रघुपति—सेनापति, काली माँ से तुम्हारा प्रेम तो प्रसिद्ध है ?

सेनापतिराय—मेरी सन्तान इस पर गर्व करती है !

रघुपति—तो मैं तुम्हे आज्ञा देता हूँ कि अपनी समस्त फौजें एकत्रित करो, और माता के दुश्मनो को मिट्टी मे मिला दो ।

राय—धर्म पिता ! दुश्मन कौन है ?

रघुपति—राजा गोविन्द !

राय—हमारा राजा ?

रघुपति—हाँ, अपनी सारी शक्तियाँ एकत्रित करके उसे मिट्टी मे मिला दो।

राय—यह सम्मति तो बहुत बुरी है, बापू ! क्या तुम मेरी परीक्षा ले रहे हो ?

रघुपति—हाँ, तुम्हारी परीक्षा ले रहा हूँ। मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम किसके सेवक हो ? टालमटोल छोड दो ! याद रखो, तुम्हे देवी अपनी ओर बुला रही है और जब माता बुलाती है तो धरती के सारे सम्बन्ध टूट जाते हैं ।

राय—मैं निश्चय कर चुका हूँ, मैं अपने उसी स्थान पर खडा हूँ, जहाँ देवी ने मुझे खडा किया है।

रघुपति—तुम वीर हो!

राय—मैं माता के छोटे से सेवको मे से हूँ, वह हमारे हृदयो की रखवाली करती है, पर वह यह भी जानती है कि मैं विद्रोही वन जाऊँगा! आज यदि राजा को मिट्टी मे मिला दिया गया तो निश्चय ही कल देवी को मिट्टी मे मिलना होगा!

रघुपति—वह राजा जो देवी से विद्रोही वन जाय तुम्हारा राजा नही हो सकता!

राय—धर्म पिता मुझे इन झमेलो मे मत फँसाओ, मै तो केवल एक मार्ग जानता हूँ, जो सच्चाई और धर्म का सीधा मार्ग है। माता का पुजारी इस प्रतिष्ठा के कार्य से इधर-उधर नही जा सकता।

(बाहर चला जाता है)

जैसिंह—आह! हमे अपने धर्म पर पक्का रहना चाहिये। हमे सिपाहियो की सहायता की आवश्यकता नही, हम मे स्वय शक्ति वर्तमान है! यह माता का कार्य है, मन्दिर के दरवाजे खोल दो। ढोल पर डका की चोट लगाओ। आओ आओ नागरिको आओ' अपनी माता की पूजा करो।

नागरिक आते है

पहला नागरिक—आओ आओ'' हमे पुकारा गया है।

सब के सब—माता की जय!

वे गाते और नाचते है।

जैसिंह—क्या तुम नही देख रहे हो कि वलि के लिये पशु मन्दिर की ओर आ रहे हैं?

(सबके-सब चिल्लाते हैं-'माता की जय' 'रानी की जय'।)

रघुपति—जैसिह? बलि के लिये, तुरत तैयारी करो

जैसिह—प्रत्येक सामिग्री ठीक है पिता।

रघुपति—राजकुमार को तुरत बुलावा भेजो!

(जैसिंह वाहर जाता है, लोग नाच रहे हैं)

राजा—शान्त ! रघुपति क्या तुम मेरी आज्ञा तोड रहे हो ?

रघुपति—हाँ !

राजा—तुम्हे निर्वासित कर दिया जायेगा ?

रघुपति—मेरा देश तो वह है, जहाँ राजाओ के मुकुट मिट्टी मे पडे रहते है। नागरिको ! लाओ—'बलि कहाँ है !'

राजा—शान्त ! (कर्मचारियो से) सेनापति से कहो कि वह तुरत आये। मुझे लज्जा आती है कि मुझे गर्मी से काम लेना पडेगा। अस्त्र-शस्त्र तो मानव की दुर्वलताएँ हैं।

रघुपति— ऐ विषैले मानव ! क्या तुम समझते हो कि ब्राह्मणो के क्रोध की अग्नि ठण्डी हो गई है। याद रखो, मेरे हृदय से अब भी अग्नि की चिनगारियाँ निकल रही है, जिससे तुम्हारा सारा राज्य और मुकुट भस्म हो जायेगा। और यदि ऐसा न हुआ तो मै समस्त पवित्र धर्म-ग्रन्थो को अग्नि मे फेक दूंगा।

सेनापति राय अपने सहायक चादपाल के साथ प्रवेश करता है।

राजा—अपनी फौज सहित यही ठहरो, और यह देखो कि कोई मनुष्य रक्त की भेट देवी को न चढा सके।

राय—महाराज, मुझे क्षमा कीजिये ! ईश्वर के मदिर मे राजा का सेवक बेबस है।

राजा—सेनापति, मेरी आज्ञा मे तर्क निकालना तुम्हारा कार्य नही, तुम्हारा कार्य केवल मेरी आज्ञा मानना है, उसके अच्छे बुरे कर्म मेरे ऊपर छोड दो।

राय—मै आपका सेवक हूँ, पर मनुष्य भी तो हूँ ! मेरा कर्तव्य और धर्म भी तो है। राजा के सिवाय मेरा भगवान भी तो हे !

राजा—तव अपनी तलवार चादपाल को दे दो, वह मन्दिर को लाल रक्त से रगने से बचायेगा।

राय—अपनी तलवार चादपाल को क्यो दूँ ? यह तलवार मेरे बाप दादा को आपके पुरखो ने दी थी, यदि आप वापिस लेना चाहते हैं तो आपको दूँगा। ऐ मेरे पुरखो की आत्माओ ! तुम गवाह रहना कि जिस तलवार को तुमने अपनी वीरताओ के कारण वक्ष से लगाये रखा था, आज मै उसे राजा को

वापिस सौंप रहा हूँ।

(वाहर निकल जाता है)

रघुपति—ब्राह्मण के श्राप ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया।

जैसिंह प्रवेश होता है।

जैसिंह—महाराज! हमारी प्रार्थनाओ को सुन लीजिए! ईश्वर के लिये हमारा मार्ग मत रोकिये। मनुष्य देवी का मार्ग नही रोका करते!

रघुपति—जैसिंह! लज्जा करो! उठो! मुझ से क्षमा मागो, मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। तुम्हारा स्थान मेरे चरणो में है। क्या ईश्वर की पूजा के लिये तुम राजा से आज्ञा ले रहे हो! हमें पूजा करेगे! वलि देगे! हम प्रतीक्षा कर रहे हैं कि राजा का गर्व किस प्रकार मिट्टी मे मिलेगा! आओ मेरे साथ!

(सब वाहर चले जाते हैं)

अप्रना प्रवेश करती है।

अप्रना—जैसिंह कहाँ हैं? वह यहाँ नही? केवल आप तुम एक देवी··· पत्थर की मूर्ति · जिसे कोई वस्तु अपने स्थान से नही हिला सकती·· तुमने हमारा सर्वस्व लूट लिया, पर जिह्वा से एक शब्द भी नही निकला। हम प्रेम के भूखे भिखारियो का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। चिता की तरह हमारी सारी आशायें तुम्हारे वक्ष मे जलती चली जा रही हैं।

क्या तुम नही जानती कि प्रार्थना भी कोई चीज है? जैसिंह तुम इस देवी से क्या लाभ प्राप्त कर सके हो? वह तुम से कह ही क्या सकती है? ऐ मेरे प्यार ·!

रघुपति प्रवेश होता हे।

रघुपति—तुम कौन?

अप्रना—मैं भिखारिन हूँ! जैसिंह कहाँ है?

रघुपति—यहाँ से चली जाओ! तुम यहाँ जैसिंह का हृदय चुराने आया करती हो! तुम उसका हृदय देवी से छीनकर अपनी मुट्ठी में करना चाहती हो।

अप्रना—क्या देवी मुझसे डरती हे?

(वह वाहर चली जाती है)

जैसिंह और राजकुमार नक्षत्रराय प्रवेश करते हैं।

नक्षत्रराय—आपने मुझे क्यो बुलाया ?

रघुपति—कल रात स्वप्न मे देवी ने मुझे वताया कि एक सप्ताह के भीतर ही तुम राजा बनोगे।

नक्षत्रराय—अ हा हा हा ! यह विचित्र समाचार है !

रघुपति—हाँ ! तुम राजा वनोगे !

नक्षत्रराय—मैं कैसे विश्वास करूँ ?

रघुपति—तो तुम्हे मुझपर विश्वास नही है ?

नक्षत्रराय—प्रश्न विश्वास का नही है, पर ऐसा हो कदापि नही सकता !

रघुपति—नही, ऐसा ही होगा !

नक्षत्रराय—भला, वह क्यो ?

रघुपति—राजा बनने मे पूर्व तुम्हे वह रक्त देवी के चरणो मे वलि देना होगा !

नक्षत्रराय—पर मै वह रक्त प्राप्त कैसे करूँ ?

रघुपति—राजा गोविन्द तुम्हारे सामने हैं•••जैसिंह ! तुम चुप रहो ! हाँ तुम समझ गये न ? राजा का वध कर दो, और उसका गरम-गरम रक्त देवी की भेट चढा दो। जैसिह तुम यहाँ से चले जाओ••••• अगर तुम शान्त नही वैठ सकते तो जाओ !

नक्षत्रराय—पर वह मेरा भाई है, मै उससे प्रेम करता हूँ।

रघुपति—पर तुम्हारे प्रेम का बलिदान प्रेम से अमूल्य है।

नक्षत्रराय—धर्मपिता ! मुझे अपने इसी जीवन मे शाति है ! मैं राजपाट का भूखा नही हूँ।

रघुपति—अब तुम बचकर नही जा सकते ! यह देवी की आज्ञा है, वह राजा के रक्त की प्यासी है ! वह राजमहल का रक्त चाहती है ! यदि तुम अपने भाई को जीवित रखना चाहते हो तो फिर अपना रक्त माँ के चरणो को दो।

नक्षत्रराय—धर्म पिता ! दया करो मुझ पर।

रघुपति—जब तक तुम देवी की आज्ञा का पालन नही करोगे, इस या उस

जीवन मे तुमको शाति नही मिल सकती !

नक्षत्रराय—तो आप चाहते क्या हैं ? ऐसा मैं कैसे कर सकता हूँ ?

रघुपति—तुम चुपचाप रहो, अब जाओ, जब समय आयेगा मै तुम्हे बुलवा लूंगा।

(नक्षत्रराय बाहर जाता है)

जैसिंह—यह मै क्या सुन रहा हूँ, यह मैंने क्या सुना ! हे माता ! क्या तेरी यही आज्ञा है ! भाई अपने भाई के प्राण ले। स्वामी ! तुमने क्यो कह दिया कि यह माता की आज्ञा है !

रघुपति—देवी की सेवा के लिए, इसके सिवाय और कर ही क्या सकता था मै ?

जैसिंह—माँ ! क्या तुम्हारे पास और कोई ढग नही है ? क्या तुम अपने हाथ से और कुछ नही कर सकती ? क्या चोरो की तरह रात के अन्धकार मे आप भी अपनी सेवा करवाती हैं ? कितना भारी पाप है ! उफ !

रघुपति—तुम पाप के बारे मे क्या जानते हो ?

जैसिंह—वही जो आपने मुझे सिखाया है !

रघुपति—तो फिर मेरे पास आओ ! मै एक बार फिर तुम्हे पाठ पढाऊँ। वास्तव मे पाप कोई चीज नही है। नर-सहार तो नर-सहार है, यह न कोई पाप हे और न और कुछ। क्या तुम नही जानते कि इस मिट्टी में लाखो शरीर मिले हुए हैं ? समय के पृष्ठ पलटो तो तुम्हे भी ज्ञात होगा कि मानव ने सदैव अपना इतिहास रक्त से लिखा है ! मरना जीवन का ही एक भाग है। जगल मे, मनुष्यो की आबादी मे, जगल में पक्षियो के घोसलो मे, कीडे-मकोडो के बिलो मे, समुद्र मे, आकाश में एक दूसरे को मार रहे हैं, किसी को भी बिना कारण के मार दिया जाता है। और इस दुनियाँ में हो ही क्या रहा है सिवाय एक दूसरे के प्राण हरण के ! और देखते हो यह काली देवी ! हजारो वर्षों से यह अपनी प्यासी जिह्वा निकाले और रक्त का प्याला लिये खडी है। पता नही कितने मनुष्यो का रक्त इस पर बहा है।

जैसिंह—गुरुजी बस-बस ! क्या प्रेम झूठ है ? क्या दया केवल दिखावा

मात्र है ? क्या इस जगत मे केवल मात्र एक ही बात सच्ची है और वह है तबाही और बरबादी की इच्छा। मेरे धर्म पिता ! तुम मेरे हृदय से खेल रहे हो, क्या तुम नही देखते कि देवी मेरी ओर देखकर ताने से हँस रही है ! ऐ मेरी खूनी माँ ! क्या तुझे मेरा खून स्वीकार है ? क्या मैं ये छुरा अपने वक्ष मे घुसेड लूँ, और सदैव के लिए तेरा बच्चा बन जाऊँ ? क्या इन नसो मे जो खून बह रहा है वह तुम्हे बहुत प्यारा है। माँ ! मेरी खूनी माँ ! धर्म पिता ! तुमने मुझे बुलाया। तुम चाहते हो कि मै अपने जीवन की सारी शृखलाएँ तोडकर स्वय को माता के अर्पण कर दूँ, यह एक सच्चा बलिदान होगा ! पर राजा का रक्त ·· माता ! तू हमारे प्रेम की भूखी है ! और तुम इस पर रक्त की प्यास का अपराध लगा रहे हो।

रघुपति—तो फिर मन्दिर मे बलि देनी बन्द कर दी जाय ?

जैसिंह—हाँ बन्द कर दी जाय ! पर तुम अच्छे-बुरे की पहचान जानते हो? हृदय का कानून पुस्तक के कानून से अलग होता है। आँखे अपने प्रकाश से कुछ नही देख पाती, उन्हे बाहर के प्रकाश की आवश्यकता होती है गुरुदेव ! मुझे क्षमा करो, मै मूर्ख हूँ। मुझे यह बता दो कि क्या देवी को राजा के रक्त की भी आवश्यकता है ?

रघुपति—तुम्हे देखकर मुझे कितना दुख होता है ! बेटा ! क्या मुझ पर तुम्हे विश्वास नही आ रहा ?

जैसिह—मेरा जगत तो आपके विश्वास पर ही स्थिर है ? यदि माता को राजा के रक्तकी आवश्यकता है, तो वह रक्त मै लाऊँगा। मै यह कदापि नही चाहता कि भाई, भाई का खून बहाए !

रघुपति—ईश्वर के न्याय के समक्ष हमे सर झुकाना पडेगा।

जैसिह—धर्म पिता ! यह काम मुझे मिलना चाहिये, शुभ-काम मै करना चाहता हूँ !

रघुपति—बेटा ! मैने तुम्हे बचपन से पाला है, अब मै तुम्हे अपने हाथ से नही खोना चाहता ! अब तुम मेरे हृदय के बहुत पास रहते हो।

जैसिह—मैं नही चाहता कि तुम मेरे शुद्ध प्रेम को पाप की गन्दगी से भ्रष्ट

करो । राजकुमार नक्षत्रराय को उसके वचन से मुक्ति दे दो !

रघुपति—मैं कल प्रात सोचकर जवाब दूँगा ।

(बाहर निकल जाता है ।)

जैसिंह—प्रयोग आखिर प्रयोग है, चाहे वह कितना ही बुरा क्यो न हो। मेरे गुरु ! तुमने सच कहा कि सर काटना कोई पाप नही, भाई का रक्त बहाना भी कोई पाप नही, राजा की गरदन पर छुरी चलाना भी कोई पाप नही ! कहाँ जाते हो मेरे भैया, हस्तीपुर के मेले पर ! वहाँ लडकियाँ नाच करेंगी ! अहा ! कितना अच्छा है यह जगत ! और नाचने वाली लडकियो की पिंडलियाँ कितनी अच्छी होती हैं गोरी !! यह जगत भी क्या स्वप्न है ! यह लोग नाचते-गाते सडक पर जा रहे हैं, मुझे इनके साथ ही जाना होगा ।

रघुपति प्रवेश करता है

रघुपति—जैसिंह !

जैसिंह—कौन हैं आप ? मैने आपको पहिचाना नही, मुझे इस भीड के साथ जाने दीजिये, मुझे रोकिए मत ! आप अपने मार्ग पर चले जाइये ।

रघुपति—जैसिंह !

जैसिंह—मेरे सामने एक सीधा मार्ग है । मेरे हाथ मे चम्बल होगा और मेरे साथ होगी भिखारिन की छोकरी ! मैं आगे को ही बढता जाऊँगा, कौन कहता है कि इस जगत का मार्ग कठिन है ! जहाँ मार्ग समाप्त होता है वहाँ कोई कानून नही है । वहाँ समस्त त्रुटियाँ क्षमाकर दी जाती हैं, जहाँ सुख और शाति के सिवाय और कुछ भी नही हैं । क्या आवश्यकता है धर्म ग्रन्थो की ? गुरु की और गुरु की शिक्षा की । गुरुजी, मैं बक रहा हूँ, पर अबतक मैं केवल स्वप्न देखता रहा था । वह रहा आपका मन्दिर जो उतना ही अत्याचारी है जितना कि सच ... क्या आज्ञा दी थी आपने ? मैं उसे भूला नही हूँ । (अपनी छुरी बाहर निकालता है) मैं आपकी बात के एक-एक अक्षर को इस छुरी की धार की तरह अपने मस्तिष्क मे पैना रहा हूँ । क्या कुछ और आज्ञा है ?

रघुपति—मेरे बेटे ! मैं तुम्हे किस प्रकार बताऊँ कि मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ ।

जैसिह—गुरुदेव ! मुझसे प्रेमकी बात मत कीजिये, मुझे अपना कर्त्तव्य पूर्ण करने दो, प्रेम तो हरीभरी दूब और पेडो की तरह है, यह तो जीवन का एक गीत है और फिर ये तो जगत के दिखाने के लिए होता है। इसके नीचे कर्तव्य है......ठोस कर्तव्य बिल्कुल पहाड की तरह अचल !

(दोनो बाहर चले जाते है।)

राजा और चाँदपाल प्रवेश करते है।

चॉदपाल—महाराज तनिक सचेत रहिये !

राजा—क्यो ? क्या बात है ?

चॉदपाल—मैंने सुना है कि आपके प्राण लेने का षड्यन्त्र हो रहा है।

राजा—भला मेरे प्राणो की किसे आवश्यकता आ पडी है ?

चॉदपाल—मुझे डर प्रतीत होता है कि कही मेरे शब्द ही खड्ग का काम न करे, सुना है नक्षत्रराय !

राजा—क्या कहा ! नक्षत्रराय ?

चॉदपाल—उसने रघुपति को वचन दिया है कि वह आपका रक्त लेकर देवी के चरणो मे जायेगा।

राज—देवी के चरणो मे ? तब मै उसे कोई दोष नही दे सकता, क्योकि जब मामला देवी और देवताओ का होता है तो मनुष्य अपनी मनुष्यता से बहुत दूर निकल जाता है। तुम जाओ, मेरी चिन्ता मत करो। मुझे अकेला ही छोड दो !

(चॉदपाल बाहर जाता है।)

राजा—देवी, मेरे यह पुष्प स्वीकार करो, जनता को सुख और शाति का जीवन व्यतीत करने दो माता ! जो लोग दुर्बल हैं, वह लाचार हैं, और जो लोग बलवान हैं, वह अत्याचारी हैं ! लालच मे दया नही होती। मूर्खता (अविद्या) अधी होती है, और जब दुर्बल को पैरो के नीचे कुचला जाता है तो उस समय घमड कुछ नही देखता। अपनी तलवार ऊँची न करो और अपने होठो से रक्त न पियो ! यह क्या है ? तुम भाई को भाई से लडा रही हो, पति को पत्नी से लडा रही हो। यदि तुम्हारी यह इच्छा है कि मै उस व्यक्ति के द्वारा मारा

जाऊँ जिससे मुझे अगाध प्रेम है तो अपनी इच्छा पूर्ण करो, क्योकि पाप आखिर एक दिन अपना भयानक चेहरा तो दिखायेगा ही। जब राजा का रक्त उसके भाई के हाथो बहाया जायेगा तो रक्त की प्रार्थना राक्षस के रूप में प्रकट होगी और फिर तू देवी के रूप मे, तो मैं सिर झुकाता हूँ तू अपनी इच्छा पूर्ण कर !

जैसिह भागा हुआ अन्दर प्रवेश होता है।

जैसिह—देवी मुझे बताओ कि क्या वास्तव मे तुम्हे राजा के रक्त की आवश्यकता है, यदि है तो मुझे आज्ञा दो ताकि मै वही रक्त लाकर तुम्हे दूँ !

एक स्वर—हाँ, मुझे राजा के रक्त की आवश्यकता है !

जैसिह—राजा, तुम्हारा समय पूर्ण हो गया, अब अपनी अन्तिम प्रार्थना पूर्ण करो।

राजा—तुम क्या कह रहे हो जैसिह !

जैसिह—क्या आपने देवी के शब्द नही सुने !

राजा—यह आवाज देवी की नही थी, यह तो जानी पहचानी रघुपति की आवाज थी।

जैसिह—रघुपति की आवाज ! नही-नही, खैर कुछ भी हो, है तो एक ही बात। आवाज चाहे देवी की ओर से आई हो चाहे गुरु की ओर से !

(छुरा निकालकर एक ओर फेकता है)

माता ! अपने बच्चो की पुकार सुनो ! तुम्हारी पूजा के लिए केवल सुन्दर पुष्प होने चाहिए थे, फिर यह रक्त क्यो ? यह फूल भी तो रक्त की तरह लाल लाल होते हैं और धरती माँ के वक्ष को फाडकर बाहर निकलते हैं। यही स्वीकार करो, तुम्हे ये स्वीकार करने ही होगे। मैं तुम्हारे क्रोध का मुकाबिला करूँगा। तुम्हे रक्त कभी नही दिया जायगा। भले ही तुम्हारी आँखे क्रोध से लाल हो जायँ, तुम्हारी तलवार ऊँची हो जाय, तुम्हारा क्रोध नष्ट करने की सामग्री पैदा कर दे, मैं तुमसे नही डरता। राजा ! यह मन्दिर देवी के लिए छोड दो, और अपनी जनता मे जाओ !

(राजा बाहर चला जाता है)

खेद ! पश्चात्ताप ! एक क्षण मे मैने सब कुछ खो दिया, गुरु और देवी

दोनो ही।

रघुपति प्रवेश करता है

रघुपति—मैंने सब-कुछ सुन लिया है, विश्वासघाती ! तुमने अपने गुरु मे भी छल किया।

जैसिह—गुरु जी ! आप मुझे दण्ड दीजिये !

रघुपति—तुम क्या दण्ड चाहते हो ?

जैसिह—मृत्यु !

रघुपति—नही, यह कुछ नही ! देवी के चरणो को छूकर शपथ उठाओ !

जैसिह—मै इसके चरण छूता हूँ।

रघुपति—कहो आधीरात के समय मै राजा का रक्त लाकर देवी के चरणो मे भेट करूँगा।

जैसिह—मै आधी रात से पूर्व राजा का रक्त लाकर देवी के चरणो मे भेट करूँगा।

(दोनो बाहर चले जाते हैं)

ज्ञानवती प्रवेश करती है।

ज्ञानवती—मै असफल रही, मेरा विचार था कि यदि मै कुछ दिन कड़ाई का व्यवहार करती रहूँगी तो वह झुक जायेगे। मै उनसे दूर भी रही, क्रोध भी दिखाया, पर मेरी सारी चेष्टाये व्यर्थ गईं। स्त्री का क्रोध हीरे के प्रकाश की तरह होता है, वह केवल प्रकाश देता है, भस्म नही कर सकता। काश ! यह बिजली की तरह राजा के महल पर गिरता और राजा उससे चौंककर स्वप्न से जाग उठता, उसका गर्व मिट्टी मे मिल जाता।

दरोदा प्रवेश करता है।

ज्ञानवती—कहाँ जा रहे हो ?

दरोदा—मुझे राजा ने बुलाया है !

(बाहर चला जाता है)

ज्ञानवती—यह राजा का प्रिय पुत्र जा रहा है, इसने राजा का प्रेम मुझसे छीन लिया है, मेरे कोई पुत्र नही है, इसीलिये राजा के हृदय मे इसके लिए प्रेम

पैदा हो गया। काली माँ ! तुम्हारी प्रजा बहुत है, तुम बड़े-बड़े काम कर सकती हो, क्या तुम मेरी गोद नही भर सकती ? तुम जो कुछ मागोगी मै दूँगी।

नक्षत्रराय का प्रवेश

(राजकुमार नक्षत्रराय) तुम क्यो जा रहे हो, मै केवल एक स्त्री हूँ, अबला ! मेरे पास कोई अस्त्र नही है। मुझसे क्यो डरते हो ?

नक्षत्रराय—मुझे मत बुलाओ।

ज्ञानवती—क्यो क्या हुआ ?

नक्षत्रराय—मै राजा बनना नही चाहता।

ज्ञानवती—पर तुम इतने घबराये हुए क्यो हो ?

नक्षत्रराय—राजा की उम्र लम्बी रहे, और मुझे मृत्यु आ जाय।

ज्ञानवती—तुम जब चाहो मृत्यु मिल सकती है, मैने इसके विरुद्ध तो कोई बात कही नही ?

नक्षत्रराय—तो मुझे बताइये आप क्या चाहती हैं ?

ज्ञानवती—जिस चोर ने मुकुट चुराया है, वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, उसको मार्ग से हटा दो। समझे !

नक्षत्रराय—समझा, पर चोर कौन है ?

ज्ञानवती—दरोदा ! उस लडके को क्या तुम नही जानते ? क्या तुम नहीं देखते कि वह राजा की दृष्टि मे कितना चढ गया है ? एक दिन उसका हाथ मुकुट तक पहुँच जायेगा !

नक्षत्रराय—हाँ ! मेरे मन मे भी कई बार ऐसा विचार पैदा हुआ, मैने देखा है कि मेरे भाई खेल कूद में बच्चे के सिर पर मुकुट रख दिया करते हैं।

ज्ञानवती—मुकुट से खेलना भयकर खेल है, यदि तुम खेलने वाले को मार्ग से नही हटाओगे तो अपनी समाप्ति समझो।

नक्षत्रराय—मुझे भी वह पसन्द नही हैं।

ज्ञानवती—बस काली माँ की भेट चढा दो। क्या तुमने नही सुना कि माँ खून की प्यासी है ?

नक्षत्रराय—बहिन ! पर यह काम मेरा नही हैं !

ज्ञानवती—मूर्ख ! जब तक माता प्रसन्न न हो, तुम अपने को सुरक्षित नही समझ सकते ! उसे खून की आवश्यकता है ! यदि हो सके तो स्वय की रक्षा करो !

नक्षत्रराय—पर माता को तो राजा के खून की आवश्यकता है ।

ज्ञानवती—तुम से किसने कहा !

नक्षत्रराय—मुझे उस आदमी ने बताया, जिसको माता स्वप्न में दिखायी दिया करती है ।

ज्ञानवती—नही, राजा के बदले इस लडके के प्राण लिये जाने चाहिये, इसका रक्त तुम्हारे भाई के रक्त से अधिक मूल्यवान है । और राजा को बचाया भी इसी मूल्य पर जा सकता है ।

नक्षत्रराय—अब समझ मे आई बात !

ज्ञानवती—समय नष्ट मत करो, समय के साथ-साथ दौडो, अभी वह बहुत दूर नही गया होगा, पर याद रखना मेरे नाम से इसे बलि देना ।

नक्षत्रराय—ऐसा ही होगा ।

ज्ञानवती—रानी की भेट को मन्दिर के दरवाजे से वापिस कर दिया गया था, काली माँ ! मुझे क्षमा करना ।

(वह बाहर निकल जाते हैं ।)

जयसिंह प्रवेश करता है ।

जैसिंह—माँ, समस्त जगत की कोई भी वस्तु तेरे पजे से नही बच सकती ! मेरी चीख पुकार का जबाब दो ! तुम्हारी आवाज धीमी होगी प्यास के कारण, पर क्या तुम यह भी नही कह सकती कि 'मैं यहाँ हूँ बेटा !'

नही वह कही भी नही है, वह कुछ भी नही हैं, क्या तू केवल छलना मात्र ही है ? जैसिंह पर तनिक तो दया करो और इसके लिये सचमुच की देवी बन जाओ । क्या तुम वास्तव मे इतनी छली हो कि मेरा अटूट और अगाध प्रेम भी तुम मे जीवन नही डाल सकता ? ऐ मूर्ख ! तुम किसके समक्ष अपने जीवन का प्याला उडेल रहे हो ! अरे पागल अब तो एक बूँद भी शेष नही रहा है । तमाम उल्ट दिया गया एक पत्थर के लिये, जो झूठी है, छलना मात्र है, पत्थर की तरह कडी है !

अपना प्रवेश करती है ।

तुमको कितनी ही वार मन्दिर से निकाला गया, लेकिन तुम फिर वार-बार आ जाती हो, क्योकि तुम सच्चाई हो, और सच्चाई को निर्वासित नहीं किया जा सकता। हमने अपने मन्दिर मे छल को गद्दी पर बिठा रखा है और उसकी पूजा करते है, पर फिर भी सचाई यह है कि यहाँ देवी कभी नही आई। अप्रना! तुम मुझे अकेला छोड दो! अरे तुम उदास क्यो हो? यहाँ आओ मेरे पास! क्या तुम से ऐसा कोई देवता छीन लिया गया है जो देवता था, पर अब नही। मुझे यह तो बताओ कि इस छोटे-से ससार में क्या हमे ईश्वर की आवश्यकता है? हमें देवताओ से निडर होकर पास-पास हो जाना चाहिये। वह तो हमारा रक्त चाहते हैं और इसीलिये वह आकाश की गद्दी छोड कर पृथ्वी पर उतरे हैं, क्यो कि उनके आकाश पर मनुष्य नही हैं जिनको वह कष्ट पहुँचा सके। ऐ लडकी! याद रख कि देवी कुछ भी नही है!

अप्रना—तो छोडो इस मन्दिर को · मैं और तुम इकट्ठे रहेगे!

जैसिह—मन्दिरको छोड़ूँ·· ? ठीक है मैं इसे छोड दूँगा ? खैर छोडो इन बातो को, मेरे हृदय की रानी! मेरे पास आओ, मेरे कान मे कोई ऐसी बात कहो, जिससे जीवन का झरना झर उठे!

अप्रना—जब हृदय भरा हुआ हो तो फिर शब्द नही मिला करते!

जैसिह—तो अपना सिर मेरे वक्ष से लगा दो, दो अभीष्ट वस्तुऐ जीवन और मृत्यु एक दूसरे को शान्ति से छुऐ! पर मुझे आवश्यकता नहीं, मुझे तो जाना है!

अप्रना—जैसिह! कठोर मत बनो। क्या तुम नही जानते कि मैंने कितने कष्ट उठाये हैं।

जैसिह—क्या मै कठोर हूँ? क्या तुम्हारी ओर से मुझे यही पुरस्कार मिलना था। क्या मै इस पत्थर के टुकडे की तरह कडा हूँ जिसे देवी कहा जाता है। अप्रना! यदि तुम देवी होती तो सम्भवत जान पाती कि मेरे वक्ष में कितनी आग भडक रही है। लेकिन तुम मेरी देवी हो, तुम्हे बताऊँ कि मैंने तुम्हे कैसे पहिचाना?

अप्रना—कहते जाओ!

जैसिह—तुम प्रति क्षण मेरे पास अपनी भेट लेकर आयी, जैसे एक माँ

अपने बच्चे के पास आती है। ईश्वर एक ऐसी शक्ति है जो अपनी दुनियाँ मे जीव-ही-जीव पैदा करता है।

अप्रना—जैसिह ! आओ मन्दिर को छोड दे और साथ-साथ बाहर चले।

जैसिह—अप्रना ! मुझे बचाओ, मुझ पर दया करो, मुझे अकेला छोड दो ! मेरे जीवन मे एक ही लक्ष्य था, तुम वह स्थान ग्रहण मत करो।

(भागकर बाहर चला जाता है।)

अप्रना—मैने बारम्बार कष्ट उठाये, मै दुर्बल हूँ, मेरा हृदय टूट गया है !

(बाहर जाती है।)

रघुपति और राजकुमार नक्षत्रराय प्रवेश करते है।

रघुपति—उस लडके को तुमने कहाँ छुपा दिया है ?

नक्षत्रराय—वह उस कमरे मे है, जहा पूजा के पात्र रखे है, और वह रोता रोता सो गया है, यदि वह दुबारा जाग गया तो फिर मैं अपना काम न कर सकूँगा।

रघुपति—जब जैसिह मेरे पास आया था, तो उसकी आयु भी इतनी ही थी। मुझे स्मरण है कि वह किस प्रकार रोता-रोता देवी के चरणों मे सो गया था। मन्दिर का दीप जल रहा था, और मध्यम प्रकाश उसके चेहरे पर पड रहा था। वह सन्ध्या भी वडी विद्रोही थी।

नक्षत्रराय—गुरु ! देर मत करो। मै चाहता हूँ कि सोते समय ही इसका काम कर दूँ। इसकी चीखे मेरे हृदय मे छुरियो की तरह चुभ रही हैं।

रघुपति—यदि जागा तो मै इसे फिर सुला दूँगा।

नक्षत्रराय—यदि आपने शीघ्रता न की तो राजा इधर ही आ निकलेगा, क्योकि आज सन्ध्या को राज्य गद्दी और मुकुट इस लडके को देने वाला है।

रघुपति—देवी पर विश्वास रखो। शिकार अब हमारे हाथ मे है, और अब वह बचकर नही जा सकता।

नक्षत्रराय—पर इसकी देखभाल चाँदपाल कर रहा है !

रघुपति—वह माता से अधिक देखभाल नही कर सकता !

नक्षत्रराय—मेरा विचार है कि कोई आदमी यहाँ होकर निकला है।

रघुपति—यह तुम्हारा भ्रम है।

नक्षत्रराय—क्या अभी आपने चीख की आवाज नही सुनी ?

रघुपति—वह तुम्हारे हृदय की आवाज थी। डर को अपने मन से निकाल दो। राजकुमार! आओ, साथ-साथ पवित्र सोमरस पीवे। जब तक कोई काम मस्तिष्क मे रहे वह बडा दिखायी दिया करता है, और जब हो जाय तो साधारण-सा दिखलाई दिया करता है। मेघ बहुत बडा और काला होता है, पर वर्षा के समय इसके छोटे-छोटे टुकडे बन जाया करते हैं। राजकुमार घबराओ नही, यह तो एक क्षण का कार्य होगा। बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार जलती मोमबत्ती का सारा जीवन एक ही फूँक मे नष्ट हो जाता है। बिजली एक क्षण मे गिरेगी, पर राजा के शरीर मे सदैव के लिए प्रभाव छोड देगी। राजकुमार! तुम चुप क्यो हो ?

नक्षत्रराय—मेरा विचार है कि हमें जल्दी न करनी चाहिये, कल रात तक प्रतीक्षा कीजिये!

रघुपति—आज की रात कल की रात की तरह है, बल्कि उससे भी सुन्दर!

नक्षत्रराय—पैरो की आहट क्या आपने सुनी है ?

रघुपति—मैंने तो कुछ भी नही सुना।

नक्षत्रराय—देखिये वह प्रकाश ?

रघुपति—लो राजा आ गया, तुमने बहुत देर लगा दी।

राजा दरबारियो सहित प्रवेश करता है।

राजा—इनको गिरफ्तार कर लो। (रघुपति से) क्या तुम्हे कुछ कहना है ?

रघुपति—कुछ नही।

राजा—अपना अपराध स्वीकार करते हो ?

रघुपति—अपराध! हाँ मेरा अपराध अपनी दुर्बलता है, मैंने माता की भेट चढाने में देर की। दण्ड तो देवी की दैन है आप तो केवल आज्ञा निभाने आये हैं।

राजा—राज्य कानून के अनुसार मेरे सिपाही तुम्हे निर्वासित करने जायेंगे, जहाँ तुम्हे आठ वर्ष व्यतीत करने होगे।

रघुपति—राजा! मैंने कभी किसी मनुष्य के आगे सिर नही झुकाया। मैं

मैं ब्राह्मण हूँ, मेरी जाति तुमसे भी बडी है, पर आज मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम मुझे एक दिन का अवकाश दे दो।

राजा—स्वीकार है!

रघुपति—तुम राजाओं के राजा हो, तुम्हारा राज्य, तुम्हारी दया बडी विस्तृत है और मैं तो मिट्टी मे मिले एक कीडे की नाई हूँ।

राजा—नक्षत्रराय! अपने अपराध को स्वीकार करो!

नक्षत्रराय—हाँ, मैं अपराधी हूँ, राजा! अब मुझमे हिम्मत नही कि मैं क्षमा मागूँ!

राजा—राजकुमार! मैं जानता हूँ कि तुम्हारा हृदय दया से भरा है, फिर भी मुझे बताओ कि इस गलत मार्ग पर चलने के लिए किसने तुम्हे बहकाया?

नक्षत्रराय—राजन्! मैं किसी और का नाम नही ले सकता। मेरा अपराध मेरा ही है, तुमने अपने मूर्ख भाई को कई बार क्षमा किया है, आज फिर एक बार वह तुम्हारे पैरो मे पडता है।

राजा—नक्षत्रराय, मेरे पैर छोड दो। न्याय को कानून की लाचारी झुका नही सकती।

दरबारी—महाराज! यह भाई हैं आप के, इन्हे क्षमा कर दो।

राजा—मुझे यह नही भूलना है कि मैं राजा हूँ, नक्षत्रराय को आठ वर्ष तक निर्वासित रहना ही होगा, और नदी के किनारे मैंने जो अपना प्रासाद बनाया है उसमे रहना होगा। भाई! यह दण्ड केवल तुम्हारे लिए ही नही, बल्कि मेरे लिए भी है। हाँ, शारीरिक ढग से मैं इसमे भाग नही ले रहा, पर तुम्हारी अनुपस्थिति मुझे आठ वर्ष तक बेचैन करती रहेगी। देवता तुम्हारी रक्षा करे।

(वह सब बाहर निकलते है।)

रघुपति और जैसिह प्रवेश करते है।

रघुपति—मेरा दर्प मिट्टी मे मिल गया, मैंने ब्राह्मणत्व के नाम पर कलक का टीका लगा दिया बेटा! अब मैं तुम्हारा गुरु नही रहा। कल तक मैं तुम पर करता था, पर आज मैं तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ। मेरा प्रकाश लुप्त

हो गया है। वह प्रकाश जिससे मैं राजा का मुकाबला किया करता था। मिट्टी का दीपक तो बार-बार जलाया और बुझाया जा सकता है, पर नक्षत्र जब बुझ जाता हे तो सदैव के लिए बुझ जाता है। जीवन की वास्तविकता ही क्या है ? यह जीवन हे ही क्या ? देवता की साधारण-सी वस्तु है ! और इस साधारण-सी वस्तु के लिए मैंने राजा के सामने घुटने टेक दिये। मैंने एक दिन का अवकाश माँग लिया। अब वह एक दिन नष्ट नही होना चाहिये। मेरा काला चेहरा अब राजा के रक्त से लाल होना ही चाहिये। बेटे ! क्यो नही बोलते तुम ! यह ठीक है कि मै अब तुम्हारा गुरु नही हूँ, पर तुम्हारा पिता तो हूँ ! तुम्हारे पिता से भी अधिक हूँ ! एक अनाथ बच्चे का पिता ! आह ! मनुष्य उस समय पतित हो जाता है जब वह प्रेम की भीख माँगता है। बेटा ! तुम अब भी चुप हो ! तो क्या मुझे अपने घुटने तुम्हारे सामने भी टेकने होगे ! बेटा जब तुम पहले-पहल यहाँ आये थे, और तुम बच्चे थे तब मै घुटने टेककर ही तुम्हे उठाया करता था।

जैसिंह—पिताजी दुखित मन को और दुखी मत कीजिए ! यदि देवी को राजा के रक्त की आवश्यकता है तो मै आज वह रक्त लाकर दूँगा ! मुझे आज सारे ऋण चुका देने हैं। एक-एक पाई ! मेरे लौटने की प्रतीक्षा करो पिताजी ! मै शीघ्र आऊँगा।

(बाहर भयकर तूफान की आवाजे)

रघुपति—माँ आखिर जाग तो पडी। इसका क्रोध सारे शहर पर उतर रहा है, विश्व के सारे पेड टूटकर गिर गये हैं, तारे भी किसी क्षण मे टूट जायेंगे। माता ! तुमने अपने पुजारी को अब तक क्यो प्रतीक्षा मे रखा। मैं किसी की आवाज सुन रहा हूँ।

अपर्णा प्रवेश होती है।

अपर्णा—जैसिंह कहाँ हैं ?

रघुपति—भाग जा बदशकुन लडकी !

अपर्णा—(जाते-जाते) यदि जैसिह वापिस न आया तो· · · ?

रघुपति—नही, वह अपना वचन नही तोडगा। काली माँ तुम्हारी जय हो ! यदि वह मार्ग मे ही किसी कारण रुक गया तो··· ··? यदि उसे राजा के सिपा-

हियो ने पकड लिया तो ···· ? माता तुम उसकी रक्षा करोगी ! तुम सब कुछ देख रही हो, तुम्हे कोई विजय नही कर सकता ! तुम्हारे नाम पर बट्टा नही लग सकता ! यदि तुम्हारे बच्चे अपना गर्व और अपना धर्म खो बैठे और विद्रोहियो के समक्ष अपना सिर झुका दे तो फिर तुम्हारा झण्डा कोन उठावेगा ! आह ! मैं उसके पैरो की आहट सुन रहा हूँ। क्या वह असफल रहा ? नही ऐसा नही हो सकता !

जैसिह भागकर भीतर आता है।

रघुपति—जैसिह! कहाँ है वह रक्त ?

जैसिह—वह मेरे पास है ! उसे मैं अपने हाथो से देवी की भेट चढाऊँगा ! माता क्या तू राजा का रक्त चाहती है ? जो तुम्हारे बच्चो को पाल रहा है ? मैं क्षत्री हूँ और·· और मेरे रक्त का सम्बन्ध राजा के रक्त से है। मेरे पुरखा भी राज्य के मालिक थे। मेरी नसो मे भी राजा का रक्त बह रहा है। तो फिर लो अपनी प्यास सदैव के लिए बुझा दो !

(छुरी अपने वक्ष मे मारता है और गिर पडता है)

रघुपति—जैसिह ! अत्याचारी ! तुमने यह क्या किया ? तुमने अपने पिता को मार डाला। जैसिह ! मेरे पुत्र अपने पिता को क्षमा करना ! आओ मेरे हृदय के पास ! मेरे हृदय के अपार कोप तुम ही थे। क्षमा करना पुत्र ! मुझे भी यह लीला अब समाप्त करने दो।

अप्रना प्रवेश करती है।

अप्रना—मैं तो पागल हो गई ! कहाँ है जैसिह, अरे ये क्या हो रहा है ?

रघुपति—इधर आओ बच्ची ! अपने प्रेम की सारी शक्ति लगाकर इसे वापिस बुलाओ। यदि तुम इसे अपने साथ रखना चाहती हो, तो रखो, पर इसे जीवित कर दो।

(अप्रना मूर्छित हो जाती है, उसका सिर मन्दिर की दीवार से लगा है)

मुझे वापिस दो, वापिस दो, मुझे वापिस दे दो।

रघुपति—(खडा हो जाता है और देवी को लक्ष्य करके कहता है।) देखो तो सही, ये देवी किस प्रकार खडी है ! मूर्ख, पत्थर ! बहरा गूंगा, अँधा, सारी

दुखित दुनिया इसके द्वार पर खडी रो रही है । शुद्ध और पवित्र इस देवी के चरणो मे नष्ट हो रहे हैं । मेरा जैसिंह मुझे वापस दे दो । आह ! यहाँ कोई नही सुनेगा ! हमारी हृदयविदारक चीखे यो ही गूँजती रह जाती हैं ! हम इस पत्थर के जाल मे क्या कुछ नही करते ! फेको ! फेक दो इस पत्थर को ! जिसने हमारी आत्माओ पर बोझ डाला हुआ है ।

(देवी को एक ओर फेक देता है और स्वय आगन मे आता हैं) ।

ज्ञानवती प्रवेश करती है ।

काली माता की जय ! हैं ! देवी कहाँ गई ?

रघुपति—देवी, देवी कोई नही हैं ।

ज्ञानवती—उसे वापिस लाओ ! मैं अपनी भेट लाई हूँ । मै अपने हृदय का रक्त इसकी प्यास बुझाने के लिए लाई हूँ । इसे प्रतीत होना चाहिये कि रानी का वचन पक्का होता है । मुझ पर दया करो । देवी को केवल आज रात के लिए वापस बुला दो !

रघुपति—वह कही भी नही हैं ।

ज्ञानवती—गुरु ! क्या वह मन्दिर मे नही थी ।

रघुपति—देवी ! यदि सचमुच की कोई देवी होती, तो क्या दुनिया मे ऐसा भी हो सकता था !

ज्ञानवती—मुझे और दुःख न पहुँचाओ, सच-सच बताओ क्या दुनियाँ मे कोई देवी नही है ?

रघुपति—कोई नही हैं ।

ज्ञानवती—तो यहाँ पहले कौन था ?

रघुपति—कोई भी नही !

(अपना मन्दिर से बाहर आती है ।)

अपना—पिता जी !

रघुपति—मेरी प्यारी बेटी ! क्या तुमने मुझे पिता के नाम से पुकारा ? क्या तुमने मुझे इस नाम से गाली दी ? मेरा पुत्र ! उसे मैंने ही मारा है ! वह इस नाम को तेरे होठो के लिए छोड गया है ।

अपर्णा—पिता जी ! आओ, हम यहाँ से दूर भाग चलें।

राजा प्रवेश करता है।

राजा—देवी कहाँ गई ?

रघुपति—अब देवी नही रही !

राजा—पर यह रक्त कैसा है ?

रघुपति—महाराज जैसिह ने स्वय को समाप्त कर दिया है, क्योंकि वह आपसे बहुत प्रेम करता था।

राजा—स्वय को समाप्त कर लिया। क्यो ?

रघुपति—उस चाल को समाप्त करने के लिए, जो मनुष्यो का रक्त चूस रही थी।

राजा—जैसिह एक बडा आदमी था। उसने मृत्यु पर विजय पा ली ! मेरे फूल उसी के लिए हैं !

ज्ञानवती—महाराज !

राजा—कहो रानी ?

ज्ञानवती—देवी नही है ?

राजा—वह पत्थर के बन्दीगृह से स्वतन्त्र होकर चली गई है, और स्त्री के हृदय मे वापिस आ गई है।

अपर्णा—पिताजी ! आइये !

रघुपति—आओ बेटी ! आओ माता ! मैंने तुम्हे पा लिया है, तुम जैसिह की अन्तिम निशानी हो !

चित्रा

पात्र-परिचय

देवता

मदन	प्रीत देवता
बसन्त	ऋतु देवता

मनुष्य

चित्रा	मनीपुर के राजा की लडकी
अर्जुन	कुरु वश का राजकुमार क्षत्री, जो कथा के समय जगल में गुप्त बनवास बिता रहा है।
कुछ देहाती	मनीपुर राज्य के एक जिले के निवासी।

प्रथम दृश्य

मन्दिर में राजकुमारी चित्रा

चित्रा—क्या तूही पाँच तीरो वाला देवता है, जो प्रीत राजा कहलाता है ?

मदन—मै ही हूँ, जो सर्व प्रथम भगवान के हृदय मे पैदा हुआ। मै पुरुषो और महिलाओ के जीवन को सुख और दु ख की जजीरो में कसा करता हूँ।

चित्रा—ऐ मेरे देवता, मैं जानती हूँ। मै जानती हूँ कि दुख क्या है ? वह जजीरें क्या हैं ? और तू कौन है ?

बसन्त—मैं इसका मित्र हूँ ऋतु देवता। मृत्यु और बुढापा दुनियाकी हड्डियो तक को पीस डालते हैं, यदि मै उन पर लगातार छाये न रहूँ। यौवन सदैव अस्थायी है।

चित्रा—वसन्त देवता मै तुम्हे प्रणाम करती हूँ।

मदन—ऐ श्रेष्ठ सुन्दरी, अनजान लडकी। वह कितनी कडी शपथ है जो तूने उठाई है। तू अपने फिर न आने वाले यौवन को क्यो नष्ट कर रही है योग और तपस्या के द्वारा ? प्रेम पूजा के लिये ऐसा बलिदान क्यो कर रही है। तू कौन है और तेरी इच्छा क्या है ?

चित्रा—मैं मनीपुर के राजवश की राजकुमारी चित्रा हूँ। देवताओ की अर्चना से देवो में श्रेष्ठ शिवजी महाराज ने मेरे दादा को वरदान दिया था कि उनके वश मे लडके ही पैदा होते रहेगे, पर मेरे जीवन की जो चिनगारी मेरी माता के गर्भ मे वर्तमान थी देवताओ का आशीर्वाद उसे बदल सकने मे असमर्थ रहा। फिर मै सब प्रकार से पुरुष ही दिखायी देती थी, जब कि मैं हर तरह से स्त्री हूँ।

मदन—तभी तो तेरे पिता ने तुझे पुत्र की तरह पाला, तीर चलाना सिखाया, और राजनीतिज्ञ की शिक्षा दी।

चित्रा—इसी कारण पुरुष के वस्त्र धारण करती हूँ, महिलाओ की तरह

पर्दा नही करती, और न मोहने की चालें जानती हूँ। मेरी भुजाओ मे तीर छोडने की शक्ति मौजूद है। मैने कामदेव की तरह किसी को आकर्षित करना नही सीखा जो कि केवल आँखो का खेल है।

मदन—श्रेष्ठ सुन्दरी लडकी ! यह खेल सीखने या सिखाने से नही आया करता, आँखे स्वत. अपना काम किया करती हैं। इसे तो वही जानता है जिसके हृदय ने चोट खा ली हो।

चित्रा—मैं एक दिन शिकार की तलाश मे नदी के किनारे भटकती फिरती थी कि एक हिरन दिखायी दिया। घोडे को पेड से बाँधा और उसकी टोह मे घनी झाडियो मे घुस गई। एक पगडन्डी थी जो उलझी हुई टहनियो मे बल खाती हुई कही जा रही थी। मै उस पगडन्डी पर: चली जा रही थी। सुहावने पेड, तरह-तरह के मुलायम पत्ते, झीगुरो की आवाज से काँप रहे थे। वहाँ मैंने देखा कि एक पुरुष मेरे मार्ग मे सूखे पत्तो पर लेटा हुआ है। मैंने उससे कहा कि मार्ग छोड दो, उसने मेरी बात पर ध्यान न दिया। मैंने घृणा से अपने धनुष की तीखी नोक उसके वक्ष मे चुभोदी। वह उठ खडा हुआ, मानो राख के ढेर में से लाल-लाल आग निकली हो। उसका शरीर सुडौल, और कसा हुआ था। मृदु मुस्कान उसके होठो पर खेल रही थी, शायद मेरी पुरुष पोषाक को देखकर। मैंने जीवन मे पहली बार अनुभव किया कि मैं पुरुष नही महिला हूँ, और मेरे सामने एक पुरुष खडा है।

मदन—मै ऐसी ही शुभ घडी मे पुरुष और महिला को यह शिक्षा देता हूँ, सच्ची और श्रेष्ठ शिक्षा—ताकि वह अपने आप को पहचाने। अच्छा फिर क्या हुआ ?

चित्रा—मै सहम गई ! फिर उससे पूछा—तुम कौन हो ? उसने उत्तर में कहा—'मैं प्रसिद्ध कुरुवश का राजकुमार अर्जुन हूँ।' मै उसके समक्ष पाषाण-प्रतिमा बनी खडी थी। चरण छूना तो दूर नमस्कार भी भूल गई। क्या सच-मुच वह अर्जुन था ? मेरी आशाओ का चमकता सितारा ! एक समय था जब मैंने सुना था कि उसने बारह वर्ष का बनवास स्वीकार किया है। मेरे हृदय की युवा उमगो ने बार-बार मुझे उकसाया कि मै उससे तीर चलाने की प्रतियोगिता

करूँ ? भेष बदलकर उसको अपने मुकाबले पर बुलाऊँ और अपने हाथो की शक्ति तथा चतुराई दिखाऊँ, जिसको वह कभी भी भूल नही सकता और न जिसकी उपेक्षा कर सकता है। मगर आह, अधूरे यौवन ? तेरे दावे क्या हुए। तेरा गर्व कहाँ गया ? आज तो मै इसे बडा गर्व समझती हूँ कि अपने यौवन के सारे अरमानो को अर्जुन के पैरो की मिट्टी से बदल लूँ। न जाने उस समय मैं अपने किन विचारो के भँवर मे फँस गई थी। अचानक मैंने देखा कि वह पेडो के झुरमुट मे लोप हो गया। आह ! ओ मूर्ख स्त्री तूने अर्जुन का अभिवादन भी न किया। अपनी बे-अदबी की उससे क्षमा भी न माँगी। अक्खड, गँवारो की तरह खडी रही। वह तुझे घृणा से देखता अपनी राह चला गया। दूसरे दिन से ही मैंने पुरुष के कपडे उतार फेंके। रेशम की बढिया साडी, चूडियाँ और पायजेब पहिन लिये। करधनी बाँध ली। इस नये पहिनावे से मुझे लज्जा लगने लगी। पर मै तेजी से उसे खोजने लगी और शिव देवता के मन्दिर मे उसे देख पाया।

मदन—तू मुझे पूरी गाथा सुना। मै ऐसी इच्छाओ का भेद खूब जानता हूँ।

चित्रा - मैंने क्या कहा और क्या जवाब पाया, केवल स्वप्न की तरह स्मरण है। पर ऐ देवता ! सारी कथा सुनाने के लिये आज्ञा न दे। लज्जा मुझ पर इस तरह छा गई थी जिस प्रकार बच्चे के हृदय पर बादलो की कडक छा जाती है। लज्जा मुझसे दूर नही हुई और यह बहुत कठिन था मेरी जैसी शक्ति के लिये। मैं उसकी अन्तिम बाते सुना सकती हूँ। जब मै चलने लगी तो उसकी ये बाते मेरे कानो मे गर्म तेल-सी लगी—'मैंने सन्यास का प्रण किया है, मैं तेरा पति बनने लायक नही हूँ।' अफसोस् पुरुषो की प्रतिज्ञा ! ऐ प्रेम के देवता ! तू अच्छी तरह जानता है कि अनगिनत ऋषियो और मुनियो ने अपनी लम्बी तपस्या को स्त्रियो के चरणो मे भेट कर दिया है। मैंने अपना धनुष तोड डाला, अपने तीरो को आग मे फेंक दिया। मुझे अपने मुलायम-लचकदार सुडोल बाजुओ की शक्ति से घृणा हो गई। ऐ प्रेम के देवता ! तूने मेरी पुरुष की ताकत का गर्व मिट्टी में मिला दिया। मेरी सारी पुरुष की-सी बातें तेरे कारण एक दिन मे नष्ट हो गई। ऐ देवता ! मैं तेरे मन्दिर की पुजा-

रिन वनूँगी । अपना जीवन तेरे चरणो मे बिता दूँगी । मेरी इच्छा पूर्ण कर दे । मै प्रेम के विछोह से नही डरती, उसके तीरो के लिये अपना उन्नत वक्ष खोल दूँगी, लेकिन यह अग्नि अधिक तेज हो सकती है, जव दो चिनगारियाँ, दो बारूद भरे हृदय एक स्थान पर हो ! ऐ मेरे देवता ! मुझे वह शक्ति प्रदान कर दे जिससे शक्तिहीन काम लेते है । वह हथियार दे जिससे निहत्थे लडते हैं ।

मदन—मैं तेरा सहायक रहूँगा । अर्जुन को वन्दी वनाकर तेरे सामने लाऊँगा ताकि वह तेरे हाथो अपनी घृणा का दण्ड पाये !

चित्रा—मै धीरे-धीरे उसका हृदय पा जाती और देवताओ से तनिक भी सहायता न माँगती, यदि मुझे अधिक समय मिल जाता । मै उसकी गोद मे मित्र बनकर रहती, उसके युद्ध के रथ के बहादुर घोडो को हाँकती, शिकार मे उसका हाथ वँटाती, रात्रि को उसके डेरे के दरवाजे का पहरा देती । एक क्षत्री के समस्त कर्तव्य मै जिम्मेदारी के साथ निभाती । 'शक्तिहीनो की सहायता करना और जब भी आवश्यकता हो दूध और पानी की तरह न्याय करना ।' अवश्य एक दिन ऐसा आता कि वह मेरी ओर देखता और विस्मय से कहता—'ये कौन है ? क्या मेरे भूत जीवन के अच्छे साथियो मे से अच्छे कर्मो के कारण इस जीवन मे भी मेरे साथ है ?' मै वह स्त्री नही हूँ जो अपने जन्मदिन से ही विधवा हो, जो अपनी निराशाओ को सन्नाटे भरी रात मे आँसुओ से धोती हो और दिल मे सन्तोप की शान्ति मे चुप रहे । मेरी इच्छाओ का फूल उस समय तक मिट्टी मे नही मिल सकता, जब तक वह पक कर फल न जाय । लेकिन इसके लिये समय चाहिये कि मै वास्तविकता को पूरी तरह बता सकूँ, और उसे मै इसके लिये लाचार कर दूँ कि वह मुझे साथ रख सके । ऐ दुनिया को वदल डालने वाले प्रेम के देवता मदन ! ऐ ऋतुओ को जवानी प्रदान करने वाले देवता बसन्त ! मै इसीलिये तुम्हारे द्वारे आई हूँ, कि तुम मेरे युवा शरीर से मुझको ही नष्ट करने वाली शान्ति और आकर्षणहीन सादगी को दूर कर दो । मुझे केवल एक दिन के लिये पूर्ण आकर्षक सुन्दरी बना दो, बिल्कुल उसी तरह की जैसी मेरे हृदय मे प्रेम की कली खिली है । मुझे असाधारण रूप से एक दिन के लिये पूर्ण सुन्दरी वना दो । उसके वाद जो भी, जैसे भी दिन आयेगे उनका

प्रबन्ध मैं स्वय कर लूँगी ।

मदन—कुमारी, जा तेरी इच्छा पूर्ण हुई !

बसन्त—केवल एक दिन के लिये नही, वरन् एक वर्ष तक बसन्त की कलियो की आकर्षक मुस्कराहट तुझसे लिपटी रहेगी ।

द्वितीय दृश्य

अर्जुन—वह स्वप्न था जो मैने झील के किनारे देखा, या वास्तविकता ? मै सन्ध्या की ढलती हुई परछाईं मे फैली हुई हरियाली पर बैठा भूतकाल की याद मे चुप था । पत्तो की घनी परछाई में से सुन्दरता का एक चित्र, स्त्री के पूर्ण रूप मे धीरे-धीरे निकला, और पानी के किनारे हरी-हरी दूब पर वह सर्व सुन्दरी खडी हो गई ! ऐसा प्रतीत होता था कि मारे प्रसन्नता के पृथ्वी का हृदय उसके पैरो के गोरे-गोरे मुलायम तलुओ के नीचे उछलने लगेगा, और दुनिया की तेज वायु से इसके बदन के वस्त्र उड जायेगे । जैसे प्रात. के सूर्य की सुनहली किरणे पहाडो की बर्फ पर पडकर धीरे-धीरे उसके रूप को परिवर्तित कर देती हैं, वैसे ही उसने झील के शान्त किनारे पर अपने को झुका दिया । अपने चेहरे का प्रति-विम्ब देखा, डरकर झिझकी और चुपचाप खडी हो गई, मुस्कराई और लापर-वाही से अपनी बाई बाँह को हिलाया, जूडा खोल दिया, बालो ने उसके चरण छुए, वक्ष को दिखाया और अपनी सुडौल बाँहो को देखा । जिनमें प्यार की वातो के सिवा गोद मे भरने की इच्छा अधिक थी । फिर उसने सिर झुका लिया, अपने बदन के हर उभरे भाग को देखा और एकदम विस्मय मे डाल देने वाले चेहरे पर प्रकाश हो गया, जिस प्रकार प्रात की कमल की कली अपने बन्द नेत्र खोलकर गर्दन झुकाकर अपनी परछाई पानी में देखती और दिनभर मस्त रहती है, और यदि तनिक भी दु ख इसे छू गया तो आँखो मे उदासी छा गई । जूडा बाँधा, दुपट्टा बाँहो पर डाला, ठण्डी साँसे लेती धीरे-धीरे चली गई, जैसे एक सुन्दर सन्ध्या का शान्त वातावरण रात्रि को आने से उदास हो जाय । मुझे ऐसा लगा मानो मेरी आशाओ की सफलताओ की कुन्जी दिखायी दी और गुम हो गई । पर यह कौन है जो मेरा दरवाजा खटखटा रहा है !

चित्रा स्त्री के पहनावे में प्रवेश करती है ।

आह ! यह तो वही है ! यह हृदय की शांति ! ऐ सर्व सुन्दरी ! मेरे हृदय की शांति को मुझसे न छीन ! मै क्षत्री हूँ, मेरी आँखो मे जवानी का नशा बनकर रह । मुझे विजय करले । जिस प्रकार एक स्त्री पुरुष को विजय करलेती है।

चित्रा—महाराज आप मेरे अतिथि हैं, मै इस मन्दिर मे रहती हूँ । मै नही जानती कि अपनी सेवाएँ किस तरह उपस्थित करूँ ।

अर्जुन—देवी, तेरा दर्शन देना ही सबसे बडी सेवा है, बुरा न मानो तो एक बात पूछूँ ?

चित्रा—पूछिये महाराज !

अर्जुन—समझ मे नही आता, किस कारण तुम्हे इस मन्दिर मे भेजा गया, जिससे दुनिया इतनी सुन्दरता से अछूती रह गई !

चित्रा—मेरे हृदय मे एक आशा है, जिसके लिये मैं शिवजी से प्रार्थना करती हूँ ।

अर्जुन—आह ! इस ससार की एक तुच्छ इच्छा ! तुम्हे किसकी आशा या इच्छा हो सकती है भला ? मेरा सारा ज्ञान तेरे लिये है। पूरब की इन पहाडियो से जहाँ से सूर्य जन्म लेकर ऊपर चढता है और ससार की परिक्रमा करके पश्चिम के उन पहाडो तक जहाँ सूर्य नित्य प्रति सन्ध्या को कफन ओढकर सो रहता है, मैंने यात्रा की है। दुनिया की तमाम सुन्दर और बहुमूल्य वस्तुएे मैंने देखी हैं, मुझे बता वह क्या है जिसकी तुझे इच्छा है ? इस सुन्दर महिला के मस्तिष्क मे किसकी तलाश है ?

चित्रा—जिसकी मुझे तलाश है उसे सब जानते हैं, मै इस प्रकार प्रसिद्ध नही, जिस प्रकार वह प्रसिद्ध है ।

अर्जुन—अच्छा बता वह कौन देवता का प्यारा है, जिसकी याद ने तेरा हृदय डावाँडोल कर दिया है ?

चित्रा—उसका वश दुनिया मे सबसे बडा राज्यवश है, और वह दुनिया के समस्त योधाओ से बडा योधा है !

अर्जुन—सबसे बडा राज्यवश, सबसे बड़ा योधा ·? ऐ रूप की देवी ! तू

अपनी बहादुरी की शिक्षा का आदर कर, रूप के इस विशाल कोप को जो तुझे प्राप्त है साधारण प्रसिद्ध पाये योधा के लिये वरबाद न कर। बनावटी नेक-नामी की हवा बनावटी गधे की तरह फैलती है। तू मुझे बता वह सबसे बडे राज्यवश का सबसे बडा योधा कौन है ?

चित्रा—ऐ वनवासी योगी ! तू दूसरो की प्रसिद्ध से क्यो डाह करता है ! क्या तू नही जानता कि सारी दुनिया मे कुरु राज्यवश अत्यधिक प्रसिद्ध और बडा है ?

अर्जुन—कौरवो का वश ?

चित्रा—हाँ कुरु वश ! और क्या तूने इस सबसे बडे वश के अति प्रसिद्ध योधा का नाम अभी तक नही सुना है ?

अर्जुन—मै उसका नाम तेरे मुह से ही सुनना पसन्द करूंगा।

चित्रा—वह अर्जुन है, दिग्विजयी अर्जुन ! मैने लोगो के मुँह से उसका प्रसिद्ध नाम सुन लिया है और अपने अछूते हृदय मे सँजो लिया है। सन्यासी, तुम सोच मे क्यो पड गये ? क्या यह नाम झूठ मूठ को ही प्रसिद्ध है ? यदि तू इस बात को सिद्ध कर सकता है तो बता ! मैं हृदय के पवित्र विचार को त्याग देने और इस नाम को मिट्टी मे मिला देने मे तनिक भी नही हिचकूंगी।

अर्जुन—उसका नाम और उसकी प्रसिद्ध, उसकी बहादुरी और उसका बल झूठा हो या सच्चा, पर तुम अपने हृदय की नगरी से उसे देश निकाला न देना। वह इस समय भी तुम्हारे चरणो मे झुक रहा है !

चित्रा—तुम अर्जुन हो ?

अर्जुन—हाँ, मैं ही हूँ, प्रेम का भूखा पुजारी, जो तुम्हारे द्वारे आया हूँ।

चित्रा—क्या यह सत्य नही कि अर्जुन ने बारह वर्ष के सन्यास की शपथ ली है ?

अर्जुन—हाँ, यह सच है, पर तुमने उसकी शपथ तोड दी, जिस प्रकार रात्रि के घोर अँधेरे के राज्य को चन्द्रमा तोड देता है।

चित्रा—बहादुर तुम्हे लजाना चाहिये। तुमने मुझ मे क्या चीज देखी, जिसके लिये स्वय को अपनी वास्तविकता से हेय करने के लिये तुल गये। तुम

को सन्यास के बन्धनो को नही तोडना चाहिये ! इन काली आँखो मे, दूध से अधिक श्वेत हाथो मे तुम्हे किस वस्तु की खोज है जो अपना धर्म बेच रहे हो ! क्या तुम इनके लिये अपना धर्म बेच दोगे ? मै जानती हूँ, मेरी वास्तविक आत्मा से आपको प्रेम नही हो सकता, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है, और यही पुरुष के लिये स्त्री की ओर से सबसे बडी सेवा प्रगट करता है। कितने दु.ख की बात है कि यह क्षणिक दिखावा, क्षण भर मे मिट जाने वाले हाड मास के शरीर के लिये अधा बना दे। हे अर्जुन ! मुझे अब ज्ञात हो गया कि तेरी बहादुरी और तेरा योधापन झूठ-मूठ ही प्रसिद्ध है।

अर्जुन—आह ! मुझे प्रतीत होता है कि बहादुरी और प्रसिद्ध की आन किस प्रकार बेमतलब है, हर वस्तु मुझे स्वप्न प्रतीत होती है। ऐ अकेली स्त्री ! केवल तू पूर्ण-ही-पूर्ण है; केवल तू ही विश्व की दौलत, सारे कष्टो का अन्त और समस्त इच्छाओ की पूर्ति है ! मन्दिर की इन मूर्तियो को बडे-बूढो ने बताया है कि देवता हैं, लेकिन तुझे हृदय ने पहिचाना है। ससार की तमाम वस्तु का वास्तविक रूप धीरे-धीरे पहिचाना जाता है, पर तुझे एक क्षण के लिये देख लेना, भगवान की सबसे बडी चतुराई का दर्शन और सदैव के लिये देख लेना है !

चित्रा—अफसोस अर्जुन ! यह मै नही हूँ ! यह तो देवता की करामात है, मेरे बहादुर झूठ को मत अपनाओ ! अपना विशाल हृदय बनावटी साधन पर मत सौपो।

तृतीय दृश्य

चित्रा—नही, असम्भव है, इन काली-काली बडी-बडी अर्थ-भरी आँखो की जो इस जगल की सुन्दरता को दबोच लेना चाहती है, यह महसूस कर लेना कि इसका हृदय इसके शरीर मे बेचैनी की लहर दौडाने और तमाम बन्धनो को तोड़कर स्वतन्त्र होने की कोशिश कर रहा है, उसे भिखारी की तरह घुडक कर निकाल देना बिल्कुल असम्भव है।

मदन और बसन्त प्रवेश करते है।

आह, हे प्रेम के देवता ! क्या यह भयकर आग है जिसमे तूने मुझे लपेट लिया है ! मैं जलती हूँ, और जो मुझ से छू जाय उसे जला देती हूँ ।

मदन—मैं जानना चाहता हूँ कि कल रात क्या बीती ?

चित्रा—कल सन्ध्या को फैली हुई हरियाली पर, जहाँ बसन्त की पत्तियाँ बिखरी हुई थी, मै लेटी थी । अपने रूप की विस्मयकारी प्रशसा स्मरण कर रही थी, जो मैंने अर्जुन से सुनी थी । अर्थात् मधुमक्खी की तरह दिन भर के श्रम से पैदा की गयी मेहनत का एक-एक कण पी रही थी और आनन्द प्राप्त कर रही थी । मै अपने पिछले जीवन की समस्त बाते पूर्व जन्म की तरह भूल गई थी । मै अपने आपको उस फूल की तरह देखती थी जो कुछ क्षणो के लिये चापलूस भौंरो की भन-भनाहट जो उनकी स्वार्थ-भरी चापलूसी है, सुनना, आकाश को देखते-देखते आँखें नीची करके, सर झुकाकर, एक साँस मे बिना प्रार्थना किए स्वय को मिट्टी को सौप देता और इस प्रकार एक निर्मल शुद्ध क्षण की कहानी जो अपना न कोई भविष्य रखता है न भूतकाल.. समाप्त कर देता है ।

बसन्त—मौसम की यह खिलती हुई कली एक ही रात के बाद कुम्हला सकती है !

मदन—जैसे सीमित सगीत मे असीमित लय !

चित्रा—पश्चिम से आने वाली ठन्डी हवा ने मुझे थपक-थपक कर सुला दिया, फूलो से लदी हुई मालती की छाँव थी, उसकी डालियों से शान्त प्रेम-चिन्ह—चुम्बन के हेतु चुपचाप मेरे ऊपर टूट रहे थे । फूलो ने जहाँ उनका जी चाहा .बालो पर, वक्ष पर, पैरो पर ..सोने को बिस्तर लगा दिया । मै गहरी नीद सो रही थी । अचानक मुझे लगा कि आग की नुकीली अगुलियाँ जैसी कोई तेज दृष्टि मुझे घूर रही है । मैं चौक पडी । सन्यासी मेरे सामने खडा था, चद्रमा पश्चिम को जा रहा था और पत्तियो के झुरमुट के बीच से परमात्मा की इस नई लीला के नये रूप को चोरी से देख रहा था जो उसने मनुष्य के कोमल हृदय में प्रगट की थी । रात का सन्नाटा झींगुरो की आवाज मे बोल रहा था । पेडो की परछाई झील में विस्मयकारी-सी थी और वह हाथ मे लाठी लिये जगल के पेडो की तरह शान्त और चुपचाप सीधा खडा

था। मुझे आँख खोलते ही अपने मन मे लगा कि तमाम वास्तविकता के प्रमाण से मै मर चुकी हूँ और परछाई की दुनिया मे स्वप्न का जन्म लिया है। लज्जा इस प्रकार दूर हो गई जैसे चादर बदन से उतर जाती है। उसने कहा—'मेरी रानी' और इसके साथ ही मेरे तमाम भूले-बिसरे जीवन सिमट कर सब एक हो गये ताकि उसकी आवाज का जवाब दे। मैंने अपनी बाहे उसकी ओर फैला दी और कहा—"मुझे स्वीकार कर, मेरा सर्वस्व स्वीकार कर।" चँद्रमा पेडो की ओट मे छिप गया। नीरवता ने सब कुछ ढक लिया, पृथ्वी और आकाश, घर और बाहर, खुशी और गम, मृत्यु और जीवन, सब मिलकर आनन्द के समुद्र मे डूब गये—प्रकाश की पहली किरण चिडियो की चहचहाट के साथ ही जागी और अपने बाये हाथ के सहारे बैठ गई। वह होठो पर गम्भीर प्यार की छाप लिये सो रहा था—दूज के चन्द्रमा की तरह जो प्रात के समय दिखाई देता है। प्रकाश बढा, प्रातः की गुलाबी छटा उसके लजीले माथे पर चमकी। मै एक ठडी सास लेकर उठी, मालती की घनी टहनियो को मिला कर सूर्य की फैलती किरणो से उसके चेहरे को ओट मे कर दिया। इधर-उधर देखने लगी, वही पुराना वातावरण-सा दिखाई दिया। मुझे याद आया कि मै क्या थी। मे लजा कर भागी, बिल्कुल उसी हिरण की तरह जो अपनी ही परछाई देखकर भागता है, मै भागती चली गई। पगडडी पर फूल बिखरे हुए थे, एक सुनसान स्थान मिला, वहा बैठ गई। चेहरे को दोनो हाथो से छुपा लिया, फूट-फूट कर रोने की चेष्टा की पर आँसू मेरी आँखो के सूख चुके थे।

मदन—अफसोस, ऐ मिट जानेवाले मनुष्यो की बेटी! मैंने भगवान के स्वर्ग से आनन्द को देने वाली नीरा तेरे लिये चुराई, और दुनियाँ की एक रात उससे लबालब भरदी, पर अब भी मैं तुझ से दुखियारी की सी बाते सुन रहा हूँ।

चित्रा—(दर्द भरी आवाज मे) लेकिन वह शराब पी किसने? मेरी आशाओ के स्वर्ग की एक झाँकी, प्रेम का पहला बदला मेरे सामने उपस्थित किया गया, पर तुरन्त मेरी बाँह मरोडकर मुझ से छीन लिया गया। यह माँगा हुआ रूप···यह धोखा देने वाली सुन्दरता जिसने मेरी वास्तविकता को

छिपा दिया है ''मुझ से अलग हो जायगी और इस रसीले मिलाप की यादगार को भी अपने साथ उडा ले जायगी, पूरी तरह खिले हुए फूल की उन पखुडियो की तरह जो हवा में उडकर विखर जाती हैं, और इस तरह अपनी असमर्थता पर असहाय दिन रात आँसू वहाया करेगी। ऐ प्रेमपति! यह कमवख्त सुन्दरता राक्षस की तरह दिन-रात मेरे साथ रहकर मुझ से प्रेम की सारी वहुमूल्य यादे लूटे लेती है और उन प्रेम-चुम्बनो से निराश किए देती है, जिनके लिये मेरा हृदय छटपटाता है।

मदन—खेद! तेरी एक रात कितनी सुन्दर रात रही, जिसमे आनन्द का किनारा भी दिखाई दिया, पर हिलोरो ने गोदी तक पहुँचने ही न दिया।

चित्रा—स्वर्ग मेरे इतने पास हो गया कि मै यह भूल गई कि वह मुझ तक पहुँचा नही था, पर प्रात को जव मैं स्वप्न देखकर जगी तो मुझे लगा, मेरा शरीर मेरा खून वन गया हे। यह कार्य कितना घृणित है कि मै नित्य अपने रूप को सजा सँवारकर प्रेमी के पास भेजू और अपनी आँखो से देखूँ कि वह उसे गले लगा रहा है। ऐ प्रेम के देवता! तू मुझसे अपना दान वापिस ले ले!

मदन—यदि मै तुझसे अपना दान वापिस ले लूँ तो फिर अपने प्रेमी के सामने तू किस तरह खडी होगी? क्या यह अन्याय न होगा कि प्रेम-रस का एक घूंट पीने के पश्चात् ही प्याले को उसके हाथ से छीन लिया जाय। वह तुझसे कितनी रुष्टता और तुनकमिजाजी का वर्ताव करेगा।

चित्रा—वास्तविक रूप मे उसके सामने जाना, वनावटी रूप में जाने से मेरे विचार से अच्छा रहेगा। मै अपना भेद उसके कान मे कह दूँगी, यह अधिक सभ्य काम है। यदि उसने स्वीकार न किया मुझे ठुकरा दिया तो मै स्वीकार कर लूगी।

वसन्त—तू मेरी वात सुन! जव मौसम के वदलने से फूलो की ऋतु बीत जाती है, तव फल फलाहार का मौसम आता है। ऐसा समय स्वय ही आयेगा जव गर्मी के थपेडो से यह यौवन कुम्हला जायेगा, उस समय अर्जुन वडी प्रसन्नता से तेरी वास्तविक सचाई को स्वीकार कर लेगा। लड़की, जा और अपनी जवानी की रग-रेलियो में जाकर खोजा!

चतुर्थ दृश्य

चित्रा—मेरे सिपाही, तुम मुझे इस प्रकार क्यो देख रहे हो ?

अर्जुन—मैं देख रहा हूँ कि तुम यह हार कितनी सुन्दरता से गूथ रही हो, ढग और अदा···

दोनो जुडवाँ बहिन भाई ··तुम्हारी अँगुलियो पर कितने मोहक और प्रसन्नता से नाच रहे हैं। मैं देख रहा हूँ और सोच रहा हूँ।

चित्रा—क्या सोच रहे हो ?

अर्जुन—यह सोच रहा हूँ कि तुम रस और मधु के मधुर मिलन की तरह मेरे वनवास के दिनो को एक अस्थायी हार मे गूँथ रही हो, ताकि जब मैं देश को जाऊँ तो तुम मुझे इसे पहना सको !

चित्रा—हैं, देश ? लेकिन यह प्रीति तो देश बनाने के लिये नही ?

अर्जुन—क्या यह प्रीति देश बनाने के लिये नही ?

चित्रा—नही, केवल वही वस्तु अपने देश वापिस ले जाओ जो शक्तिपूर्ण और दृढ हो, और जगल के नन्हे फूल को वही छोड दो, जहाँ वह खिला था। उसको वही छोड दो, ताकि जब दिन समाप्त हो जाय तो वह मुरझाने वाली कलियो और सूख जाने वाली पत्तियो के बीच अपने जीवन को समाप्त कर दे। उसे अपने महल के पत्थर के फर्श पर फेंक देने के लिये न ले जाओ, जो कुम्हला जानेवाली वस्तुओ पर तरस नही खाता।

अर्जुन—क्या हमारी प्रीति इसी तरह की है ?

चित्रा—जी हा, इसी प्रकार की है, इसके लिये अफसोस क्या ? जो चीज बेकार दिनो के लिये मन बहलाव थी उसको तो बाकी रहना ही न चाहिये। यदि वह दरवाजा बन्द कर दिया जाय जिससे प्रसन्नता बाहर निकल जाती है तो वह प्रसन्नता, प्रसन्नता न रह कर दुख बन जाती है। इसे समझो और स्वीकार करो, जब तक ये बाकी रहे अपने पास रखो। अपने जीवन की सध्या को उतना ही खर्चीला बनने दो जितना जीवन के प्रात मे कमाया था। दिन डूब चुका है, लो यह हार पहिन लो, मै थक गयी हूँ, मुझे अपनी गोद मे लो, और जो लालच

हृदयमें पैदा हो गया है, उसे अमृत पान द्वारा हृदय की प्यास बुझाकर भुला दो।

अर्जुन—तनिक चुप रहो, और उसे सुनो ! दूर गाव के मन्दिर से पूजा के घण्टो की आवाज सध्या की वायु मे मिलकर शान्त पेडो के इस पार आ रही है।

पांचवां दृश्य

वसन्त—मेरे मित्र, मैं तेरे साथ कदम मिलाकर नही चल सकता, मैं थक गया हूँ। तूने जो आग भडकाई है उसे बुझने न देना बडा कठिन है। नीद के बादल मँडरा रहे हैं। पखा मेरे हाथ से छूटा जाता है, ठण्डी राख आग की चिनगारी को छुपाये ले रही है। मैं चौक जाता हूँ और बुझी-सी चिनगारी को तेज करने लगता हूँ, पर यह काम अधिक देर तक नही हो सकेगा।

मदन—मैं जानता हूँ कि तू बच्चो की तरह चँचल है, धरती हो या आकाश हर जगह तू यही खेल खेलता है कि लम्बी-चौडी आशाएँ बँधाई और क्षण मात्र में समाप्त कर दी ! ठहर, अब हमारा काम समाप्त होने को है, वह दिन बहुत तेजी से समाप्त हुआ करते हैं जिनमे खुशी के पर लगे होते हैं और वर्ष अपने समाप्त होने पर स्वय ही आनन्द के प्रभाव मे मदहोश हो जाता है।

छठा दृश्य

अर्जुन—प्रात. को जब मैं जगा तो मुझे लगा कि मेरी, नीद ने एक मोती पैदा किया है, मेरे पास कोई डिबिया नही, जिसमे उसको सुरक्षित रख सकूं, कोई ताज नही जिसमे उसको लगा सकूं, कोई जजीर नही जिसमें उसको लटका लू, पर इन सबके न होने पर उसे फेंक भी तो नही सकता। एक क्षत्री का हाथ इसे व्यर्थ मे लिये हुए है, जिससे अपने वास्तविक कार्यों को वह भूला हुआ है।

चित्रा प्रवेश होती है।

चित्रा—किस सोच मे हो ?

अर्जुन—शिकार की धुन है, देखो कैसा मूसलाधार मेंह बरस रहा है, और कितने जोर से पहाडो के पत्थरो से टकरा रहा है, बादलो की नीरव परछायी जगल पर उमड़-उमड़ कर छा रही है। चढी हुई नदी, खिले हुए यौवन की

तरह अट्टहास करती, तमाम रुकावटों से उछलती-कूदती वह रही है। महावट की वर्षा मे हम पाँचो भाई, अचित्रक वन मे जगली जानवरो के शिकार को जाते थे। वह बडे मजे का समय था। बादलो की गर्जन पर हमारे हृदय ईर्ष्या करते थे। जगल मोरो की आवाज से गूज उठता। वर्पा और पानी के शोर से डरपोक हरिण हमारी आहट न पाते और गीली जमीन मे चीते के पजो के निशान के द्वारा हम उनकी खोहो तक आसानी से पहुँच जाते। शिकार के पश्चात् जब हम वापिस होते तो उफान लिये हुए नदियो की धार तैर कर पार करने मे अपनी शक्ति लगाते। मेरी आत्मा घुट-सी रही है, मै शिकार को जाना चाहता हूँ।

चित्रा—पहले इस शिकार को थकालो, जिसके द्वार पर हो, क्या तुम को भरोसा है कि चौकन्ना हरिण स्वय ही गिरफ्तार हो जायगा ? नही, अभी नही। वह स्वप्न की तरह बचकर निकल जायेगा, उस समय भी जब कि वह जान ले कि बस बालू मे फँसा जा रहा हूँ। देखो, दीवानी वर्पा हवा के द्वार पर है और तिस पर भी अपने तीर बरसा रही है, पर हवा इसके काबू मे नही आती, वह उसी तरह उडी जा रही है। तुम्हारा शिकार भी इसी तरह का है। तुम अपने हाथ के समस्त तीरो से चपल सुन्दरता की आत्मा को बेधना चाहते हो, लेकिन यह जादू का हरिण कभी काबू मे नही आ सकता, इस प्रकार तो सदैव वह तुमको काबू से बाहर ही दिखाई देगा।

अर्जुन—मेरे हृदय की रानी, क्या तुम्हारा कोई घर नही, जहाँ प्रेम भरे हृदय तुम्हारी बाट जोहते हो। क्या कोई घर नही जिसे तुमने अपनी मेहनत और प्रेम से सजाया हो और जब तुम ने उसे छोड कर इस जगल को प्रकाशित किया हो तब वह तुम्हारे बिना सूना और उदास हो गया हो।

चित्रा—इन बातो की आवश्यकता ? क्या निश्चिन्त सुरम्यता की घडियाँ बीत गई ? क्या तुम नही जानते कि जिसको तुम अपने साथ देख रहे हो वह उसके सिवाय कुछ नही और न इसके आगे और कोई लक्ष्य है। टेसू के फूल की पखुडी पर जो ओस के कण काँप रहे हैं, वह अपना कोई नाम, कोई लक्ष्य, कोई अर्थ नही रखते। वह किसी प्रश्न का उत्तर भी नही देते। जिस स्त्री से

तुम्हारा प्रेम है वह इसी ओस की बूद के सदृश्य है ।

अर्जुन—क्या वह दुनियाँ से कोई नाता नही रखती ? क्या वह आकाश का कोई टुकडा है जो किसी चचल देवता की गलती से पृथ्वी पर गिर गया है ?

चित्रा—हाँ !

अर्जुन—तभी यह डर, मेरे हृदय मे हर समय खटकता है कि शायद मैं शीघ्र ही तुझे खो दूंगा । इसीलिये मेरा हृदय बेचैन है और मेरी आत्मा को शान्ति नही मिलती । ऐ प्राप्त न हो सकने वाली ! मेरे पास आ ! अपने को स्थायी रखने के लिये किसी घर के हवाले करदे । मुझे आशा है कि मैं अपने चारो ओर तुझे ही देखूं और तेरे ही साथ प्रेम की गोद मे शान्ति के साथ जीवन पूरा कर दूं ।

चित्रा—बादलो के रग, हवा की चाल, और फूलो की गध को बेकार कैद करने की चेष्टा क्यो करते हो ?

अर्जुन—मेरी मोहिनी, केवल विचारो से प्रेम की आग ठण्डी करने की आशा त्याग दो, मुझे कोई ऐसी वस्तु दो जिसे मैं अपने हाथो मे थाम सकू । जो प्रसन्नता के सम्मुख अधिक मजबूत हो, जो कष्टो मे सहायक हो ।

चित्रा—मेरे बहादुर योधा ! अभी तो एक वर्ष भी पूरा नही हुआ, तुम अभी से थक गये ! अब मैं समझी कि यह परमात्मा की दया है जो उसने फूल को थोडा-सा ही जीवन दिया । यदि मेरा यह शरीर वसन्त के अन्तिम फूलो के साथ कुम्हलाकर मर जाय, तो निश्चय ही वह प्रतिष्ठा की मौत होगी । मेरे प्रेमी ! इसके दिन फिर भी गिनती के हैं, इसे जाने न दो, इसका समस्त मधु पीकर सुखा डालो ! मुझे डर है, तुम्हारा हृदय तुम्हारी प्यासी इच्छाओ के साथ-साथ बार-बार इसकी ओर आयेगा, उस भौरे की तरह जो फूलो के मुर्झाने के पश्चात् उनकी ओर आता है और उन्हे मुर्झाए देखकर बेचैन हो जाता है ।

सातवाँ दृश्य

मदन—आज की रात तेरी अन्तिम रात है ।

वसन्त—कल तेरे शरीर का यह रूप वसन्त के भरे-पूरे कोष की तरह लुट

जायेगा, तेरे होठो की यह हल्की-हल्की लाली अर्जुन के चुम्बनो के स्मरण से स्वतन्त्र होकर, अशोक के हरेताजे पत्तो की खुशवू मे मिल जायेगी और तेरी खाल की यह लचकीली सफेद चमक मालती के सैकडो फूलो मे जन्म लेगी।

चित्रा—मेरी एक प्रार्थना है कि आज रात की अन्तिम घडियो मे मेरे रूप को बुझती हुई चिनगारी की अन्तिम भडक की तरह चमका दो ?

मदन—जा, तेरी इच्छा पूर्ण होगी !

आठवाँ दृश्य

देहाती—अब हमें कौन बचायेगा ?

अर्जुन—तुम्हे डर किसका है ?

देहाती—डाकू हमारे गाँव को लूटने, उत्तर की पहाडियो से चढे हुए पहाडी नाले की तरह, बढे चले आ रहे हैं !

अर्जुन—क्या इस राज्य मे तुम्हारा कोई रखवाला नही ?

देहाती—राजकुमारी चित्रा से तमाम पापी काँपते थे, जब तक वह इस देश मे थी हमें प्रकृति के कष्टो के सिवा और किसी से डर न लगता था। आज-कल वह यात्रा को गई हुई हैं, कोई नही जानता कि वह हमे कहाँ मिलेगी ?

अर्जुन—क्या इस देश की रक्षा स्त्री करती हे ?

देहाती—हाँ वह अकेली ही, हमारी माँ भी है और पिता भी !

(देहाती चले जाते हैं)

चित्रा प्रवेश करती है।

चित्रा—अकेले बैठे क्या कर रहे हो ?

अर्जुन—समझने की चेष्टा कर रहा हूँ, कि राजकुमारी चित्रा किस तरह की स्त्री होगी। मैंने हर तरह के आदमियो से बहुत-सी कहानियाँ उसके बारे मे सुनी हैं।

चित्रा—लेकिन वह सुन्दर नही है। वह इतनी सुन्दर काली-काली तीर छोडने वाली आँखे नही रखती। वह जिस चीज को चाहे अपना शिकार बना [illegible]

अर्जुन—लोग कहते हैं वह बहादुरी में पुरुष और नम्रता तथा शील में स्त्री है।

चित्रा—यही उसके भाग्य का सबसे बडा खोट है। स्त्री का सबसे बडा सुख यह है कि वह केवल स्त्री रहे, अपनी मुस्कराहट, अपने हाव-भाव, अपने प्रेम और सेवा से पुरुष के चारो ओर लिपटी रहे। बडे-बडे प्रसिद्ध कार्य और विस्तृत विद्या उसके किसी काम की नही। कल तुम उसको शिव देवता के मन्दिर के पास जगल की पगडडी पर देखते तो उसके पास से चुपचाप निकल जाते, अनजान से। क्या तुमको स्त्री के सौंदर्य ने भरपूर कर दिया और तुम्हारी इच्छाएँ पूरी हो गई जो तुम उसमे पुरुष का-सा बल देखना चाहते हो? चलो, मैंने, दुपहरी बिताने के लिए अँधेरी गुफा मे जो रात की तरह सन्नाटे से भरपूर है, प्रेम के अमृत, फुआर से भीगी हुई हरी पत्तियो का बिस्तर बिछाया है। झरनेवाली काली चट्टानो पर जमी हुई हरी मुलायम काई की शीतलता तुम्हारी आँखो को छू छूकर सुला देगी। आओ, मैं तुम्हे वहाँ ले चलूँ।

अर्जुन—नही रानी! आज नही।

चित्रा—क्यो? भला आज क्यो नही?

अर्जुन—मैंने सुना है कि डाकुओ का एक झुण्ड मैदानो में उतरने वाला है। मै चाहता हूँ कि मैं अपने हथियार लगाकर वहाँ जाऊँ, और डाकुओ से डरे हुए देहातियो की रक्षा करूँ।

चित्रा—तुम्हे उनकी रक्षा के लिए जाने की आवश्यकता नही है। राजकुमारी चित्रा ने यात्रा को जाने से पहले सीमा के तमाम मार्गों पर मजबूत पहरे बिठा दिये थे।

अर्जुन—फिर भी मुझे आज्ञा दो कि एक क्षत्री का कर्तव्य पूरा करूँ। मैं इन बाँहो को युद्ध में सुदृढ करूँगा ताकि यह तुम्हारे लिए मजबूत तकिया बने।

चित्रा—यदि मैं न जाने दूँ और अपनी बाहे तुम्हारे गले में लिपटाकर तुम्हे रोकना चाहूँ तो क्या तुम हृदय पर पत्थर रखकर मेरी बाहो को झटक दोगे और मुझे छोड जाओगे? जाओ, पर इतना समझ लो कि बेल जब एक बार टूट जाती है तो दुबारा जुड नही सकती। तुम्हारी प्यास बुझ गई है तो प्रस-

न्नता से जाओ, पर याद रखो आनन्द की देवी बडी चचल है, वह किसी की चिन्ता नही करती। मेरे राजा ! तनिक ठहरो, मुझे बताओ कि किस विचार ने तुम्हे बेचैन कर रखा है। वह कौन है जो तुम्हारे मन मे समा गया है ? क्या वह चित्रा है ? या कोई और ?

अर्जुन—हाँ, वह चित्रा ही है। मैं सोच रहा हूँ कि वह किस वचन को पूरा करने यात्रा को गई है, उसको किस चीज की इच्छा हो सकती है ?

चित्रा—उसकी इच्छाएँ ! उस अभागिनी के भाग्य ही फूटे हैं ! उसके सारे गुण वन्दी-गृह की दीवार हैं, जिन्होने उसके हृदय को अपनी काली कोठरी मे बन्द कर रखा है। वह सन्नाटे मे है, वह उस वचन की तरह है जो पूरा न हुआ हो। उसका विशुद्ध प्रेम चीथडे पहनकर अपने मन मे मस्त रहता है, वह सौंदर्य-विहीन रखी गई है, वह एक पतझड की प्रात सदृश्य है जो पहाडी की चोटी पर बैठी हो और जिसका काला मुँह बादलो ने और बदसूरत बना दिया हो। तुम उसके जीवन की कला मुझसे न पूछो, यह कहानी पुरुष के कानो को प्रसन्न न कर सकेगी।

अर्जुन—मुझे उसकी दशा ज्ञात करने की बडी इच्छा है, उस मुसाफिर की तरह जो आधी रात को शहर मे पहुँचे, और गुम्बदो, मीनारो, बाग के पेडो के सन्नाटे को धुँधलके मे देखे। स्वप्न जैसी रात्रि मे नदियो का शोर मचाता सगीत सुने और चिन्ता तथा बेचैनी से इस विचित्र दृश्य का भेद खोलने वाली प्रात का मार्ग जोहे। मुझे उसकी कहानी अवश्य सुनाओ ?

चित्रा—क्या अभी कुछ और कहना शेष रह गया है ?

अर्जुन—मुझे ऐसा लगता है, मानो मैं उसे अपने मन की आखो से देख रहा हूँ। वह श्वेत अश्व पर सवार, बाएँ हाथ मे सावधानी से बागडोर थामे, दाएँ हाथ मे धनुप लिये जीत की देवी की तरह प्रसन्नता और आशाओ के पुष्प बरसाती जारही है, चतुर शेरनी की तरह, जो दहला देनेवाले प्रेम के साथ अपने बच्चे की रक्षा करती है। स्त्री की बाहे स्वतन्त्र शक्ति के सिवाय किसी और चीज से बँधी होने पर सुन्दर होती हैं। सदियो की लम्बी नीद से जागने वाले सर्प की तरह मेरा हृदय बेचैन है, आओ हम दोनो तेज चलने वाले घोडो पर

सवार होकर, साथ-साथ दौडे। मानो दो प्रकाशित नक्षत्र शीघ्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। चलो, हरियाली के इस स्वप्न सदृश्य जीवन से मस्त कर देने वाले सन्नाटे की रजाई के नीचे से निकलें, यहाँ तो दम घुटा जा रहा है।

चित्रा—सच कहना यदि मैं किसी जादू के प्रभाव से अपने इस दीखने वाले मोहक सौंदर्य को समाप्त कर दूं जो दुनिया की तीखी खूँखार दृष्टि से छिपाना पडता है, यदि माँगे के वस्त्रो की तरह इसे अपने शरीर से उतार फेंके तो क्या तुम मेरी इस आग को बुझाकर देख सकोगे ? यदि मैं हृदयो को लुभाने वाले और मन को आकर्षित करलेने वाले आकर्षण को छोडकर साहसी हृदय के साथ योधा वन कर खडी हो जाऊँ, यदि मैं बैल की तरह मिट्टी में लोटना छोड दू और स्वर्ग की चोटी की तरह अपने सर को ऊँचा रखू तो क्या मैं एक पुरुप की आँखो को अपनी ओर आर्कापित कर सकूँगी ? नही ! तुम किसी प्रकार भी इस दृश्य को सहन नही कर सकते। श्रेष्ठ यही है कि मै दिखावटी तरुणाई के वस्त्रो को अपने चारो ओर लपेटे रहूँ। सन्तोप और विश्वास के साथ तुम्हारा मार्ग ताकूँ, और जब तुम वापिस आओ तो उस पूर्ण सौन्दर्य के शरीर सदृश्य कटोरे मे तुम्हारे लिये आनन्ददायक सोमरस उपस्थित करूँ ! फिर जब मैं बूढी हो जाऊँ तो विनती और धन्यवाद के साथ उस रूप को स्वीकार करलूँ जो मुझे दिया जाय भगवान की ओर से। क्या तुम्हारी वहादुर आत्मा उससे प्रसन्न होगी कि रात का साथी दिन को वलवान वनने की इच्छा रखे और गर्व के साथ बाया हाथ दाहिने हाथ की सहायता मे हाथ बटा ले।

अर्जुन—मैं तुमको पूरी तरह समझ सकने में असमर्थ रहा हूँ, तुम मुझे उस देवी की तरह प्रतीत होती हो जो किसी सुनहरी मूर्ति में छिपी हुई हो। मैं तुम्हे छू नही सकता और न तुम्हारी अनमोल भेंटो का वदला ही चुका सकता हूँ। मेरा प्रेम अधूरा है, मुझे तुम्हारी कातर दृष्टि की गहराई मे, तुम्हारे चचल शब्दो मे जो अपने ही अर्थ पर हँसते हैं एक ऐसे जीवन की झलक स्पष्ट दिखाई देती है जो अपने सौंदर्य के आकर्षण को नष्ट कर देने और दिखावे के कल्पित 'नकाव' को उलट कर दर्द भरे भोले सगीत में उभरने की चेष्टा कर रहा है ! वह भेष वदल कर अपने चाहने वाले की ओर आता है। सच्चाई का पहला बयान केवल धोखा

है। एक समय आता है कि वह अपने सारे आभूषण एक दम उतार फेकती है और अपने घूंघट को हटा कर अपने वास्तविक रूप मे दिखाई देती है। मै सच्चाई की वास्तविकता को देखना अधिक पसद करता हूँ। मेरी प्रेमिका! अश्रु क्यो बहाने लगी। तुमने हाथो से अपने चेहरे को क्यो छिपा लिया? क्या मेरी बातो से ठेस लगी? जो कुछ मैंने कहा उसे भूल जाओ! मैं हर दशा मे प्रसन्न रहूँगा। सौदर्य के हर क्षण को मेरे पास आने दो, बिल्कुल उसी चहचहाते पक्षी की तरह जो कभी-कभी सन्नाटे को भी तोड कर हवा मे एक लहर दौडा देता है। मुझे अपनी आशाओ के साथ सौन्दर्य के सरोवर के किनारे आयु पर्यन्त बैठा रहने दो!

नवाँ दृश्य

चित्रा—मेरे पति! क्या प्याला अपनी अन्तिम बूँद खो चुका? क्या सचमुच सीमा समाप्त हो गई? नही! अभी कुछ और शेष है और वह तुम्हारे चरणो मे मेरी अन्तिम भेट है। मेरे हृदय के देवता! मै स्वर्ग की वाटिका से तुम्हारी पूजा के हेतु पुष्प लाई थी, जो पूजा मे चढा दिये गये। यदि वह पुष्प मुरझा गये हैं तो लाओ इन्हे मन्दिर के बाहर फेक दू!

(पुरुष के वस्त्रो को उतार देती है)

अब अपनी पुजारिन को दया की दृष्टि से देखो। मैं उतनी सुन्दर नही हूँ जितने वह पुष्प थे, जिनसे मैं पूजा करती थी। मुझ मे बहुत से चिन्ह हैं, काले-काले। मै ससार के लम्बे मार्ग की मुसाफिर हूँ, मेरे कपडे धूल से भरे हैं और तलुए काटो से लहूलुहान हैं। मैं उन पुष्पो का-सा सौन्दर्य और क्षण भर का विशुद्ध जीवन कहाँ से लाऊँ? बहादुर! जो भेट मैं तुम्हारे चरणो मे अर्पण कर सकती हूँ वह एक नारी का हृदय है, जिसमे एक लड़की के सारे सुख, सारे कष्ट, सारी प्रसन्नताएँ, सारी प्रार्थनाएँ, सारी आशाएँ, सारे अरमान एकत्रित हैं, जो प्रेमभरा स्थायी जीवन प्राप्त करने की इच्छा करती है। पर इसमे एक वडी भारी कमी छिपी है, और यह कमी है उसका सौन्दर्य। पुष्प अपने भाग की सेवा पूरी कर चुके! अब मेरे प्राणेश्वर! आने वाले समय के लिए मेरी स्वीकार करो।

मैं राजकुमारी चित्रा हूँ, सम्भव है, तुम्हे वह दिन याद हो जब एक नारी आभूषणो से लदी-फदी सौदर्य बिखेरे शिव देवता के मन्दिर मे सेवा के लिये उपस्थित हुई थी, वह लज्जाहीन नारी पुरुष की तरह तुम्हारे पास प्रेम करने आई थी, तुमने बहुत अच्छा किया कि उसे ठुकरा दिया। मेरे पति ! मैं वही नारी हूँ। वह मेरा स्वाग था। इसके बाद देवताओ की दया से मुझे सालभर के लिये ऐसी मोहिनी मूरत दी गई जो सम्भवतः किसी भाग्यवान को शायद ही मिली हो। इसी धोखे के रूप से मैंने योधा के हृदय पर विजय प्राप्त की। अब मैं, विश्वास करे, वह नारी नही हूँ।

मै चित्रा हूँ, देवी नहीं, जिसकी पूजा की जाय, लेकिन इतनी गिरी और दया की पात्र भी नही कि मुझे पतगे की तरह दूर झटक दिया जाय। मेरा मूल्य उस समय प्रगट होगा जब तुम भयानक, बीहड और डरावने मार्ग मे मुझे साथ रख सको और जीवन की आवश्यकताओ मे भाग लेने की आज्ञा दो। पर पूरी तरह मेरी वास्तविकता उस समय प्रगट होगी, जब मैं तुम्हारे बालक को जिसे मै अपने गर्भ मे पाल रही हूँ तुम्हारे पास भेजूगी, उसको मैं दूसरा अर्जुन बनाऊँगी। आज तो मै केवल एक ही वस्तु आपको दे सकती हूँ और वह है राजकुमारी चित्रा !

अर्जुन—मोहनी मेरा जीवन भरपूर है।

———

बैकुण्ठ का पोथा

पात्र परिचय

बैकुण्ठ	लेखक
अविनाश	बैकुण्ठ का छोटा भाई
ईशान	बैकुण्ठ का नौकर
केदार	अविनाश का सहपाठी
तीन कौड़ी	केदार का सहयोगी

प्रथम दृश्य

केदार और तीन कौड़ी

केदार—अविनाश तेरा नाम सुनते ही बाँसो उछलता है–तीन कौडी ?

तीन कौडी—वह आदमी को पहिचानता है, सम्भवतः मेरे जैसा मूर्ख वह नही है।

केदार—पर अब मुझ से इधर-उधर नही घूमा जाता। मैंने निश्चय कर लिया है कि अपनी साली के साथ उसका विवाह कराके ही इस जगह रहूँगा।

तीन कौडी—पर भाई साहब, तुम से एक जगह टिका भी तो नही जाता, तुम्हारे पैरो मे तो चक्कर है, जिसके कारण तुम हर समय घूमते रहते हो, और शायद अन्त तक घूमते रहोगे।

केदार—मै आया तो था अविनाश के भाई बैकुण्ठ को वश मे करने, पर तू ही बता यहाँ मेरी क्या दशा हुई ! कौन जानता था कि बुड्ढा लेखक है। देख तो इतना बडा पोथा मुझे पढने के लिये दे गया है।

तीन कौडी—अरे बाप रे ! तुम तो मूस की तरह चोरी का माल खाने आये थे, पर लगता है कि तुम स्वय ही चूहेदानी मे फँस गए हो, है ना !

केदार—पर तू मेरा बना-बनाया खेल चौपट न करना।

तीन कौडी—लेकिन जब तुम अकेले ही चौपट कर सकते हो तो इसकी आवश्यकता क्या पडेगी।

केदार—तू मेरी बात याद रख, ऐसे काम जल्दबाजी मे नही बना करते। जानता है गणेश जी को सिद्धदाता क्यो कहा गया है ? वे मोटे आदमी हैं, खूब जम के बैठते हैं, देखने से प्रतीत होता है कि उन्हे किसी से मतलब नही।

तीन कौडी—पर उनका मूस—

केदार—फिर मुँह बाद ! उजड्ड कोडिया, भाग अभागे यहाँ से।

पात्र परिचय

बैकुण्ठ	लेखक
अविनाश	बैकुण्ठ का छोटा भाई
ईशान	बैकुण्ठ का नौकर
केदार	अविनाश का सहपाठी
तीन कौड़ी	केदार का सहयोगी

प्रथम दृश्य

केदार और तीन कौड़ी

केदार—अविनाश तेरा नाम सुनते ही बाँसो उछलता है—तीन कौडी ?

तीन कौडी—वह आदमी को पहिचानता है, सम्भवतः मेरे जैसा मूर्ख वह नही है ।

केदार—पर अब मुझ से इधर-उधर नही घूमा जाता । मैंने निश्चय कर लिया है कि अपनी साली के साथ उसका विवाह कराके ही इस जगह रहूँगा ।

तीन कौडी—पर भाई साहब, तुम से एक जगह टिका भी तो नही जाता, तुम्हारे पैरो मे तो चक्कर है, जिसके कारण तुम हर समय घूमते रहते हो, और शायद अन्त तक घूमते रहोगे ।

केदार—मैं आया तो था अविनाश के भाई वैकुण्ठ को वश मे करने, पर तू ही बता यहाँ मेरी क्या दशा हुई ! कौन जानता था कि बुड्ढा लेखक है । देख तो इतना बडा पोथा मुझे पढने के लिये दे गया है ।

तीन कौडी—अरे बाप रे ! तुम तो मूस की तरह चोरी का माल खाने आये थे, पर लगता है कि तुम स्वय ही चूहेदानी मे फँस गए हो, है ना !

केदार—पर तू मेरा बना-बनाया खेल चौपट न करना ।

तीन कौड़ी—लेकिन जब तुम अकेले ही चौपट कर सकते हो तो इसकी आवश्यकता क्या पडेगी ।

केदार—तू मेरी बात याद रख, ऐसे काम जल्दबाजी मे नही बना करते । जानता है गणेश जी को सिद्धदाता क्यो कहा गया है ? वे मोटे आदमी हैं, खूब जम के बैठते हैं, देखने से प्रतीत होता है कि उन्हे किसी से मतलब नही ।

तीन कौडी—पर उनका मूस—

केदार—फिर मुँह बाद ! उजड्ड कोडिया, भाग अभागे यहाँ से ।

तीन कौडी—जाता हूँ भाई साहब, पर मुझे बिसरा मत देना, समय पर याद कर लेना, अच्छा !

बैकुण्ठ का प्रवेश

बैकुण्ठ—केदार बाबू देख रहे है, ना ?

केदार—जी, मन से देख रहा हूँ, पर मेरा विचार है, क्या नाम है भला, पुस्तक का नाम कुछ बडा हो गया है ।

बैकुण्ठ—इसकी चिन्ता न करनी चाहिये, वडा नाम होने से पुस्तक मे क्या है, यह साफ-साफ समझ मे उसके नाम से ही आ जाता है । 'पूर्वी और पश्चमी, नूतन और प्राचीन, सगीत शास्त्र की उत्पत्ति और इतिहास तथा नूतन सार्वभौमिक उच्चारण लिपि का लघु और सरल आदर्श ।' भला इसमे क्या बात छूट गयी ।

केदार—छूटा तो कुछ नही, बैकुण्ठ बाबू, पर पुस्तक का नाम, क्या नाम है भला ? सब कुछ छोडकर ही होना चाहिये । वैसे पुस्तक लिखी वहुत सुन्दर है, पढते-पढते रोमाच हो जाता है जी !

बैकुण्ठ—रोमाच ! ही-ही-ही-ही ! आप उपहास कर रहे है ?

केदार—भला आपसे मै हास्य कर सकता हूँ !

बैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही ! है तो हास्य का ही विपय । यह मेरा पागलपन है । सगीत की उत्पत्ति और इतिहास मिट्टी है मिट्टी । लाइये पाण्डु लिपि, मुझ बूढे को वनाइये मत !

केदार—हँसी ! भला हँसी क्या कोई दो-दो घण्टे तक कर सकता है । मैं कव से आपकी पुस्तक लेकर वैठा हूँ, सोचिये तो तनिक । इस तरह सो जो है सो राम के वनवास को भी क्या नाम भला उसका, कैकयी का हास्य कह सकते हैं !

बैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही ! आप वात वनाने में तो खूब कमाल करते हैं ?

केदार—लेकिन बैकुण्ठ वावू, मेरी वात हँसी की वात नही है, भला क्या नाम है उसका, कही-कही लिखा ही आपने ऐसा है कि वास्तव में रोमाच हो ता है । सो क्या नाम उसका आपके मुँह दर मुँह ही कहने की आदत है मेरी ।

वैकुण्ठ—अब मैं आपकी बात समझ गया। उस प्रकरण को लिखते समय मेरे नेत्र भी नम हो गये थे। यदि आपको कष्ट न हो तो मैं वहाँ का विवरण तनिक पढकर सुना दूँ।

केदार—कष्ट! खूब हैं साहब आप भी। क्या नाम उसका, मैं तो स्वय ही आप से इसके लिये प्रार्थना करने वाला था। (स्वगत) साली निकल जाय नेक घर से, हे ईश! मुझे तब तक धीरज दो। मेरा भी फिर शुभ दिन आयेगा।

वैकुण्ठ—क्या कहा भला आपने?

केदार—कोई खास बात नही, मैं कह रहा था—क्या नाम भला उसका, साहित्य को वही पकड सकता है जो कछुवे की पकड जानता हो, यदि एक बार भी दाँत गड जाँय तो बस फिर छुटकारा कहाँ?

वैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही। साहित्य की पकड और कछुवे की पकड! बडी मजेदार होती हैं आपकी बातें। ये बात रही, अच्छा, अब सुनिये—'हे जन्म-दात्री भारत भूमि, एक समय था जब तुम वीर्यवान् महापुरुषो की तपोभूमि थी। उस समय राजा का राज्य भी तप था और कवि का कवित्व भी तप का ही नामान्तर था। तपस्वी जनक राजा राज्य-शासक थे और तपस्वी बाल्मीकि रामायण गा-गाकर तप के प्रभाव का प्रचार करते थे। उस समय पूर्ण ज्ञान,पूर्ण विद्या, ससार का पूर्ण कर्तव्य और जीवन का पूर्ण आनन्द साधना की सामग्री थी। तब लोगो के निवास स्थान भी आश्रम थे और बन भी आश्रम थे। आज जो नाट्यशालाओ मे कुल त्यागिनी सगीत विद्या विदेशी-मुरली के फटे कण्ठ से आर्त-नाद कर रही है और क्लबो मे जाकर सुरा-सरोवर मे पाँव फिसला कर डूब मरना चाहती है, उसी सगीत ने किसी दिन भारत भूमि के उदर से जन्म लेकर उसे स्वर्ग बना दिया था। वही तो वह सगीत था जिसने नारद की वीणा की स्वर-लहरी से निकलकर वैकुण्ठाधिपति के चरण कमलो से निकले हुए जलश्रोत को मरु यमलोक में प्रवाहित कर दिया था। हे अभागिनी जन्मभूमि,आज तुम सूखे, गरीब और बीमार शिशुओ की माँ हो। आज तुम्हारे उसी पुण्य के नाम पर मूर्ख मिट्टी की पुतलियाँ बना रहे हैं, आज न साधना है, न सिद्धि, आज तो विद्या का स्थान बातो ने पौरुष का स्थान घमड ने और तपस्या का स्थान

चतुराई ने ले लिया है। पत्थर जितनी मजबूत नौका जो महा समुद्रो की उत्ताल तरगो मे होकर अडिग पार निकल जाया करती थी, आज तो उसका पता भी नही है। केवल हम कुछ बालक मिलकर उस नौका के पुरानी लकडी के टुकडो को लेकर छिछली और गन्दी तलैयाओ मे खेल रहे हैं, और शिशु-सुलभ मोह से अज्ञान सुलभ घमड मे सोच रहे हैं कि ये पुराने लकडी के टुकडे ही सागर पार करने वाली नौका हैं, हम ही वह श्रेष्ठ पुरुष हैं और हमारे गाँव की वह गन्दगी से भरी तलैया ही वह महा समुद्र है।'

ईशान का प्रवेश

ईशान—खाना आ गया, बाबू सा'ब।

बैकुण्ठ—थोडी प्रतीक्षा करे, कह दो जाकर।

ईशान—*भला बैठने और प्रतीक्षा के लिये किस से कहूँ, भोजन आ गया है।*

केदार—क्या नाम भला उसका, अब उठा जाय!

वैकुण्ठ—अरे! आप उठ क्यो रहे हैं?

ईशान—नही तो, उनके जाने की क्या आवश्यकता है! बस रातभर बैठे-बैठे तुम्हारी किताब सुनते रहे! (केदार से) बाबू सा'ब, जाओ, अपने घर जाओ। बेकार मे इनका माथा गरम होगा।

केदार—वैकुण्ठ बाबू! ये आपके कौन हैं?

वैकुण्ठ—अरे नौकर है अपना, इसना।

केदार—ठीक, क्या नाम भला इसका, बाते तो दो टूक करता है।

वैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही! उसका आप ख्याल न करे, पुराना आदमी है, बहुत दिन से है, इसलिए मुझे मानता-वानता बिल्कुल नही है।

केदार—आप तो पुराने हैं, पर मेरी तो जान पहिचान बिल्कुल नयी है, इसलिए मुझे भी मानता-वानता नही होगा। क्या नाम भला उसका, आपने शायद उसकी बात सुनी नही, वह भोजन लाया है आपके लिये।

वैकुण्ठ—तनिक बैठिये तो, अभी अधिक रात नही गयी, बस यह अध्याय समाप्त करे देता हूँ।

केदार—वैकुण्ठ बाबू मुझ मे और आप मे कितना अन्तर है? खाना

आपके घर आकर बैठा रहता है,पर,क्या नाम भला उसका,हमारे यहाँ तो उसका व्यवहार कुछ और ही ढग का होता है। जब मैं कालेज मे पढता था तब मैंने, क्या नाम भला उसका, तब मैंने एक ऊँचे टाड पर अपनी आशाओ की बेल चढाई थी, उसमे बडी-बडी लौकियाँ एक-एक दो-दो हाथ के फल सदृश्य लगी भी थी। मगर क्या नाम भला उसका, जड को पानी नही मिला, इससे उसके भीतर तो रस पहुँचा ही नही, सो भीतर से सब पोले के पोले ही रह गये। अब जो है सो रात-दिन हाय पैसा हाय अन्न यही चीखना काम रह गया है। भीतर जो कुछ सार था क्या नाम भला उसका, सूख कर काँटा हो गया है, बाबू वैकुण्ठ जी !

वैकुण्ठ—ओह ! बाप रे, इससे बडा दुख तो अन्य कुछ हो ही नही सकता, तिस पर भी मजे की बात है कि आपको हर समय प्रसन्न देखता हूँ। सचमुच आप महा मानव हैं।(केदार का हाथ पकडकर) देखिये, यदि मैं अपनी छोटी ताकत से तनिक भी आपकी सेवा कर सकूँ तो आप स्पष्ट कहिये, तनिक भी संकोच आदि ·

केदार—क्या नाम भला उसका, वैकुण्ठ बाबू ! क्षमा कीजिए, मुझे आप रुपये पैसे या लक्ष्मी का लालची बिल्कुल मत समझियेगा। आपके सत्सग मे आज जो मुझे सुख मिला है, उसे मैं सोच भी नही सकता ! उसके आगे धन-दौलत, रुपया पैसा, जो है सो भला, कुछ भी नही।

तीनकौड़ी का प्रवेश

तीनकौडी—(स्वगत) जब प्रसन्न होकर दे रहे हैं, तो ले लेना चाहिये।

केदार—(स्वगत) सब धूल कर दिया करा धरा, मूर्ख कही का !

वैकुण्ठ—भला केदार बाबू, यह लडका कौन है ?

केदार—जिस तरह क्या नाम भला उसका, मूल के पीछे ब्याज लगा रहता है, यह मेरा वही है—यहाँ अपना ही बोझ नही उठता, क्या नाम भला उसका, भगवान ने यह और बला ऊपर से लाद दी।

तीनकौडी—बाबू जी, यह बैल हैं और मैं इनकी पूँछ हूँ, जब ये घास चरते हैं तो मैं इनकी मक्खिया उड़ाया करता हूँ और जब काम में सुस्ती लाने पर

किसान का डडा चलता है तो पूँछ मरोडने की ताकत मुझ पर ही अजमाई जाती है।

वैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही ! यह लडका तो आपको खूब मिला है केदार जी ! यह अकेला वात नही करता, इसके आँख, कान, नाक, सभी तो वाते करते हैं ! केदार वावू तनिक सुनिये, समय अधिक हो गया। यदि यही खा-पी ले तो बडा ठीक रहे।

केदार—नही-नही क्या नाम भला उसका, इतनी परेशानी आप न उठावे !

तीनकौडी—वाह जी वाह ! भला इसमें परेशानी और झझट क्या है भला ? शुभ काम जितनी जल्दी हो जाय उतना ही अच्छा। खिलाने पिलाने मे बस वावू सा'व को थोडी-सी परेशानी उठानी पडेगी। और यदि हमने खाया-पिया नही तो पूरी मुसीबत उठानी पडेगी हमे ! साफ बात है बाबू सा'ब भूख का समय काफी हो गया है।

वैकुण्ठ—ठीक वात है लल्ला जी, आज तुम ठीक से भोजन करो ! जब कोई आराम से पेट भर भोजन पाता है तो मुझे बडा सुख मिलता है।

केदार—अरे वैकुण्ठ बावू इस छोकरे की भगवान ने क्या नाम भला उसकी आत्मा मे बस एक जठराग्नि को ही पैदा किया है ! आपके इस आश्रम मे आने के पश्चात् पेट नाम के गढ्डे की वात मैं तो कतई भूल ही जाता हूँ। बस ऐसा लगता है जैसे ज्ञान के भडार मे मेरा दिमाग जल्दी-जल्दी ज्ञान बटोरना चाह रहा है।

वैकुण्ठ—आपकी वाते बडी रसीली और मजेदार होती हैं—ही-ही-ही-ही ! बस-बस सब वात छोड कर आपकी दुनिया की तारीफ करनी पडती है।

तीनकौडी—बातो मे डूब कर वास्तविक काम को न भूल जाइयेगा वैकुण्ठ बाबू ! भूख ने अपना काम बहुत देर से आरम्भ कर दिया है !

वैकुण्ठ—वहुत अच्छा जी, बहुत अच्छा। ओ रे, कहा गया रे इसनिया, ओ इसनिया ! कहाँ गया रे !

ईशान का प्रवेश

ईशान—जी, एक थे अव दो हो गये !

तीनकौडी—रुष्ट नही हुआ करते, भैया तुमको भी हिस्सा दूँगा, समझे !

ईशान—शायद अभी किताव सुनाई जा रही होगी !

वैकुण्ठ—(लज्जित होकर कापी छिपाते हुए) अरे भाई, किताव कहा है भला। देख इसनिया, समझदार है ना तू । ये दो बाबू हैं ना, इनके लिये भोजन ले आ, अच्छा, जा जल्दी कर !

ईशान—अब भोजन मैं कहा से लाऊं ?

तीनकौडी—हे भगवान !

वैकुण्ठ—अरे बात को समझकर भीतर जाकर नीरु से कह आ कि···

ईशान—ये नही कर सकता बाबू सा'ब, अब मैं जाकर चूल्हा सुलगाने के लिये उनसे नही कह सकता । तुम्हारा भोजन लिये वह अभी तक बैठी हुई है !

वैकुण्ठ—मेरा खाना लिये बैठी हुई है अभी तक, पर सोच तो सही, इनको बिना भोजन कराये मैं कैसे भोजन पा सकता हूँ । तू एक बार जाकर उससे कह तो सही ! कहने से···

ईशान—ये तो मै खूब जानता हूँ कि कहने से वो तुरत चूल्हा जलाना आरम्भ कर देगी । पर क्या आपको नही मालूम कि आज एकादशी है, व्रत में क्यो उनको कष्ट देते हो बाबू सा'ब ! (केदार के प्रति) बाबू साहब आज उनका व्रत है इसलिये आज तो क्षमा कीजिये, और घर जाकर खा-पीकर आराम से सो जाइये ।

तीन कौड़ी—अरे भैया, किसी भी मामले मे राय देना एक बात है, पर बिना खाने के खाया क्या जायेगा इस बात को समझना बडी टेडी खीर है, तुम्हारा क्या तुमने तो राय दे डाली ।

केदार—अरे तीन कौडी तू चुप रह तनिक देर भई ··वैकुण्ठ बाबू अब परेशान न हो, आज आप रहने दीजिये ।

वैकुण्ठ—ओरे इसना, देख तो भले आदमी, क्या तेरे कारण मुझे घर-बार त्यागकर जगल की शरण लेनी पडेगी । घर पर कोई अतिथि आये तो तू उनको खाने-पीने भी नही देगा भले आदमी, यह कहाँ की सभ्यता है ? अरे मूर्ख कही के, चल-चल काला मुँह कर, दफा हो यहाँ से !

(ईशान का प्रस्थान)

तीन कौडी—आप तो बाबू साहब नाराज हो गये। मैंने सोचा था कि खिलाने-पिलाने मे आपको कोई परेशानी न होगी, तभी तो ··पर अब देखता हूँ कि आपको परेशानी और दिक्कत दोनो ही हैं। और फिर ··

वैकुण्ठ—दिक्कत बिल्कुल नहीं, और न परेशानी! आज एकादशी है ना, सो निरुपमा का उपवास है!

तीनकौडी—निरुपमा ··

वैकुण्ठ—निरुपमा मेरी विधवा बेटी है, सो उसने उपवास किया है आज।

केदार—वैकुण्ठ बाबू, आज क्या नाम है भला उसका, आज्ञा दीजिये, फिर कभी देखा जायेगा।

तीनकौडी—अरे भाई तनिक ठहरो तो जा कहाँ रहे हो! वैकुण्ठ बाबू, तनिक सुनिये इसमें लजाने की कोई बात नहीं। तमाम बगाल के तीन कौडी अभागे हैं, अगर अन्नपूर्णा के भण्डार पर भी पहुँच जायँ तो वहाँ भी मामला गोल हो जाय। खैर कोई बात नही, आप ये बात मेरे ऊपर छोड दीजिये, मैं बडा बाजार जाकर पूरी-साग आदि लिये आता हूँ। परेशान होने की कोई ऐसी बात नही है।

केदार—(बनावटी क्रोध से) अरे तीनकौडी, जो है सो भला—इतने दिन तूने मेरा सत्सग किया, पर क्या नाम है भला, तेरा लालची स्वभाव दूर नही हुआ रे! (कुत्ते की पूँछ बारह साल नलकी मे रही पर टेढी की टेढी!) आज से मैं तुम्हारा मुह भी देखना पसन्द नही करता।

(प्रस्थान)

वैकुण्ठ—ओह, सुनिये-सुनिये, ऐसी कोई बात नही, आप तो नाराज हो गये केदार बाबू, बैठिये तो तनिक!

तीनकौडी—अभी आप उनकी चिन्ता न कीजिये, मैं खूब अच्छी तरह से इन्हे जानता हूँ। सैकिण्डो मे उनका क्रोध शान्त करके अभी आपके सामने लाता हूँ। आप समझे नही, जब पेट मे आग जलने लगती है तो मुह से बाते भी गर्म निकलने लगती हैं।

वैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही—! अरे भई वाह ! तुम्हारी बाते बडी मजेदार होती हैं। लो सुनो (जोर देते हुए) यह लो, तुम प्रवन्ध कर लाओ, कुछ विचार मन मे मत लाना, समझे, ना !

तीनकौडी—कुछ नही, कुछ नही। अगर आप इससे अधिक भी दे देते तब भी मै विल्कुल विचार न करता। मेरा स्वभाव वैसा बिल्कुल नही है।

(प्रस्थान)

ईशान का प्रवेश

ईशान—वावू ! (वैकुण्ठ चुप) वावू ! (फिर चुप) वावू सा'ब ! (फिर चुप) आपका सारा भोजन ठण्डा हो गया है।

वैकुण्ठ—(क्रोध से) चल भाग यहाँ से, मै भोजन-वोजन नही करता !

ईशान—मुझे क्षमा कर दो वावू सा'व ! भोजन ठण्डा हुआ जा रहा है !

वैकुण्ठ—नही, मै नही खा सकता।

ईशान—वावू, तुम्हारे पैर पकडता हूँ, क्रोध न करो, भोजन करने उठो।

वैकुण्ठ—मैने एक वार कह दिया, दफा हो यहाँ से, तग मत कर मुझे, मै नही खाऊँगा।

ईशान—अगर गलती हो गई है तो मेरे कान उमेठ दो अच्छी तरह वावू !

अविनाश का प्रवेश

अविनाश—भाई साहव ! यहाँ वैठकर क्या लिखा जा रहा है भला ?

वैकुण्ठ—नही-नही, भला यहाँ वैठकर क्यो लिखने लगा ? इसना के साथ थोडी वाते कर रहा था। इसना जा मै अभी थोडी देर मे आया।

अविनाश—भाई सा'व आज पगार के रुपये लाया हूँ—ये लो दस-दस के दस नोट और सौ का पाँच।

वैकुण्ठ—पाँच सौ को तुम अपने पास ही रखो अव।

अविनाश—क्यो भाई साहव भला ?

वैकुण्ठ—खर्चा-वर्चा की आवश्यकता भी हो सकती है न तुम्हे ?

अविनाश—जव आवश्यकता होगी तो आप से माँग लूगा।

वैकुण्ठ—तो यही रख दो। तुम्हारे हाथ में रुपये देने से भी तो वचते नहीं

हैं। जो आता है उसी पर तुम विश्वास कर बैठते हो। अगर रुपया बचाना है तो सबसे पहले आदमियो से बचना चाहिये, आदमी पहिचानना बडा जरूरी होता है।

अविनाश—(हँसता हुआ) इसीलिए तो पगार तुम्हारे हाथ सौंपकर मैं निश्चित हो जाता हूँ, भाई साहब !

बैकुण्ठ—अरे तू हँसता क्यो है, भला मुझे आज तक कोई ठग सका है। तुम समझते हो, उस दिन जो मैंने 'स्वर सूत्रसार' पुस्तक खरीदी थी सो उसने मुझे ठग लिया, पर मैं एक बात साफ कह दूँ कि सगीत के सम्बन्ध मे ऐसी प्राचीन पोथी कोई कही से ला दे तो मैं उसे मुँह माँगा इनाम दे सकता हूँ। हीरो से सारी पोथी तोली जाय तब भी उसके मूल्य के बराबर नही हो सकती ! तीन सौ रुपये मे तो एक तरह से मुफ्त ही मिल गई समझो।

अविनाश—मैंने उस पुस्तक के सम्बन्ध मे आपसे कुछ कहा तो है नही।

बैकुण्ठ—तभी तो मैंने तुम्हारे मन की बात जानली, अन्यथा कम-से-कम एकादिवार अवश्य उसके सम्बन्ध मे पूछते-पाछते, या उसे देखते-दाखते। तुमने तो बस समझ लिया बुड्ढे को ठग लिया गया है।

अविनाश—भाई साहब, उसमे है ही क्या, अगर उल्टा पल्टा जाता तो मिट्टी हो जाती उसकी।

बैकुण्ठ—और बात क्या है, कीमत ही इस बात की है उसकी ! उसकी मिट्टी क्या आज की मिट्टी है ? वह ऐसी मिट्टी है कि लाख रुपये देकर भी यदि माथे से लगाने को मिल जाय तो भाग्य जग जाय !

अविनाश—भाई साहब, पिचत्तर रुपये इस महीने मे मुझे देने होगे ?

बैकुण्ठ—भला तू पिचत्तर रुपयो का क्या करेगा ? (अविनाश चुप) समझ गया, नीलाम मे जाकर विलायती पौधे खरीदेगा, है ना ! अरे बडी वाहियात आदत पड गई है तुझ को। दिन-रात मालियो का मेला-सा लगा रहता है। न जाने कितने ही पौधो के लोग-बाग झूठे-झूठे नाम बताकर तुझे ठग ले जाते हैं, अरे हद भी तो कोई होती है ! फिर भी तू ब्याह नही करता है !

अविनाश—ब्याह से तो भाई साहब, पौधो की आदत अच्छी। उमर तो

मेरी चालीस की हो गई, भला व्याह किस तरह करलूँ।

वैकुण्ठ—क्या कहा, अरे अभी से तेरी उमर चालीस की हो गई रे !

अविनाश—अभी से कैसे भला ? समय तो ठीक पूरा ही लगा है, जैसे दूसरों को पूरा समय लगता है।

वैकुण्ठ—असल में ये सब लापरवाही मेरी ही ओर से हुई है, अरे भाई लोग मुझे स्वार्थी समझेंगे ! छी-छी कितनी बुरी बात है। अब व्याह के लिये और देर करना ठीक नही है।

अविनाश—एक आदमी मेरी प्रतीक्षा में बैठा है, मै तो अब चला भाई सा' ब !

(प्रस्थान)

वैकुण्ठ—अवश्य वही माली होगा, मानिक तल्ला वाला ! पौधो का लडके को एक तरह का नशा हो गया है।

केदार का प्रवेश

वैकुण्ठ—ओह ! आप लौट आये, मुझे बडी प्रसन्नता हुई। अच्छा अब आपकी क्या···

केदार—वैकुण्ठ बाबू, क्या नाम है भला उसका, आपके पुस्तकालय में सगीत के सम्बन्ध में शायद सब प्रकार की पुस्तके हो, पर मेरा विचार है, चीन देश का सगीत-शास्त्र सम्भवत. आपके यहाँ न हो ?

वैकुण्ठ—(अत्यन्त चचल मन से) नहीं तो भाई, मेरे पुस्तकालय में तो नही है. क्या कही उसका पता मिला है ?

केदार—पता क्या निकालता, एक हाथ की लिखी पुस्तक का ही जुगाड लगा लाया हूँ। यह पुस्तक, जो है सो भला है बडी अमूल्य। यह देखिये (स्वगत) एक चीनी जूता वाले से उसका पुराना वही-खाता माँग लाया हूँ।

वैकुण्ठ—अरे, भाई ये तो खास चीनी भाषा में लिखी हुई अत्यन्त पुरानी पोथी प्रतीत होती है ! कुछ समझा नही जा सकता, विस्मय की बात है ! अक्षर भी बडे मोती से जडे हैं, कितनी स्पष्ट लिखाई है। वाह, वाह, बडे काम की चीज दिखाई देती है। भला केदार बाबू, इसका मूल्य कितना है ?

केदार—क्षमा कीजिये, क्या नाम भला उसका, मूल्य-वूल्य का नाम... ..

वैकुण्ठ—भला ये कैसे हो सकता है केदार बाबू ! आप मेरे लिये इतना कष्ट उठाकर चीन देश की भाषा मे लिखी पोथी तलाश लावे यह बात क्या कम है। आपने सदैव-सदैव के लिए मुझे खरीद लिया है। उस पर और अधिक भार मत चढाइये, सह न सकूगा।

केदार—(लम्बी साँस लेकर)—पर क्या कहूँ, शायद मूल्य मे मै ठग लिया गया हूँ।

वैकुण्ठ—जी नही, केवल ठगने का आपको वहम हो गया है। इन सब चीजो का मूल्य मै जानता हूँ। बडा भारी मूल्य देने के बाद ऐसी चीजे मिल पाती हैं।

केदार—लेकिन वह तो क्या नाम है भला उसका, सौ रुपया माँग बैठा था। मैने अस्सी कह दिया शायद पचासी मे मामला निपट जाय !

बैकुण्ठ—पचासी ! अरे फिर तो धूल की कीमत मे मिल रही है, धूल की कीमत मे ! अभी जाकर उसे रुपये दे आओ, नही तो पीछे अगर मुकर गया तो कठिनाई होगी। लगता है कोई सकट आ गया है तभी तो इसे बेच रहा है, अन्यथा तो···।

केदार—पूरे सकट मे। नही तो आप जानते हैं कि क्या नाम भला उसका, वह कोई भला ऐसी चीज बेच सकता है। सुना है देश मे उसकी तीन सालियाँ हैं, तीनो का ही एक खानदानी चीनी से विवाह कर देना पडेगा। कन्यादान भी एक दान है, पर सालीदान तो दान नही है। बडे भारी सकट मे फँसा हुआ है, बिचारा।

वैकुण्ठ—(हँसते हुए) ओहो .. ! आप तो बडे रसिक मालूम होते हैं केदार बाबू।

केदार—वैकुण्ठ बाबू, रसिक बनना पडा है मुझे, रसिक। स्वय भोगी हूँ न मै। क्या नाम भला उसका, ससुराल मे सालियाँ कितनी सुन्दर होती हैं। सालियाँ जैसी वस्तु संसार मे मिलना कठिन ही नही महा कठिन है, लेकिन यदि वहाँ से हटाकर एकदम सिर पर आ जायँ तो क्या नाम भला उसका, बोझा

सम्हालना वडा कठिन हो जाता है ।

वैकुण्ठ—वोझा सम्हालना वडा कठिन हो जाय—ही-ही-ही-ही, क्या कहने आपके !

केदार—श्रीमान् जी मुझसे तो वोझा वास्तव मे नही सम्हलता, एक तो साली फिर उसकी सुन्दरता विना किसी दोष के, यानी सम्पूर्ण-सुन्दर। किसी भी काम के लिए आँख उठाता हूँ तो पत्नी सोचती है, साली को तलाश कर रहा हूँ और आँखे बन्द करता हूँ तो क्या नाम भला उसका, पत्नी सोचती है साली का ध्यान कर रहा हूँ। सोचिये तो तनिक ! और यदि खाँसता हूँ तो घर की मालकिन सोचती है, अवश्य इसमे कोई न कोई रहस्य छिपा है, और क्या नाम भला उसका, यदि खाँसी दवाता हूँ तो और भी अधिक न जाने क्या क्या सन्देह किया जाता है ! भला आप ही वताइये कि अव ·····

अविनाश का प्रवेश

अविनाश—भाईसा'व ईशान कह रहा है, उधर आपका भोजन ठण्डा हो रहा है और आप हैं कि इतिहास की चर्चा कर रहे हैं अभी तक।

वैकुण्ठ—इतिहास, वितिहास कुछ नही, यो ही तनिक केदार वावू से गप-शप कर रहा हूँ।

अविनाश—ओह केदार जी, आप यहाँ कैसे ? क्या भाई साहव पर कोई चक्कर चला रहे हो ?

केदार—हा-हा-हा-हा ! अरे अविनाश तुम तो सदैव वच्चे ही रहे हो भाई !

अविनाश—अरे भाई साहव आपको इतिहास सुनाने के लिए अन्य कोई आदमी नही मिला क्या जो केदार को पकडकर बैठ गये ? यह ऐसे हजरत हैं कि यदि किसी को पकडकर बैठ जाते हैं, तो फिर छोडने का नाम नही लिया करते !

वैकुण्ठ—छी · छी ! अविनाश, तुम्हे ऐसी वातें शोभा नही देती।

केदार—ओह वैकुण्ठ वावू आप तो परेशान हो गये तनिक-सी वात से ! अविनाश मेरा स्कूल का सहपाठी रहा है न, सो जव मिला तभी हँसी-मजाक की वात आरम्भ कर देता है, भला इसमे बुरा क्या है वैकुण्ठ वावू।

अविनाश—पर भैया, मेरा मजाक फिर भी तुम्हारे मजाक से वहुत हल्का

होता है । अभी उस दिन तुम रुपये ले गये थे, लगता है आज फिर तुम्हे रुपयो की आवश्यकता आ पड़ी है, सो भाई साहब को नया इतिहास सुनाने लगे हो ।

केदार—भाई वाह अविनाश भैया ! कभी-कभी तो तुम्हारी बातें बावन तोले पाव रत्ती सही उतरती हैं, पता नही वैकुण्ठ बाबू क्या सोचते होगे ··!

बैकुण्ठ—(चंचल होकर) अरे केदार बाबू बडी बात कही तुमने, मैं कुछ भी ख्याल नही करता ! पर अविनाश तुम्हारा हास्य बडा नीरस होता है, कम-से-कम मित्र के साथ तो•••!

अविनाश—भाई साहब, मैं हास्य इनसे बिल्कुल नही करता ।

बैकुण्ठ—अरे अवि कही के, अच्छा हास्य नही, केदार बाबू मेरे घर आए हैं यह मेरे लिये सौभाग्य की बात है रे । तू मेरे सामने इनका अपमान करता है !

केदार—ह-ह-ह-ह ! आप तो रुष्ट हो गये वैकुण्ठ बाबू !

अविनाश—आप तो रुष्ट हो गये भाई सा'ब ! केदार का किस बात का अपमान !

बैकुण्ठ—चुप फिर बोले अवि ! जाओ यहाँ से, मैं तुमसे बात नही करना चाहता !

अविनाश—कसूर हुआ, भाई साहब, क्षमा करो । (बैकुण्ठ चुप) क्षमा करो भाई साहब त्रुटि हो गई । (बैकुण्ठ चुप) भाई साहब आप नाराज न होइये, क्षमा कर दीजिये !

बैकुण्ठ—अगर क्षमा चाहता है तो सुन । केदार बाबू की एक विवाह योग्य साली है, अतीव सुन्दरी, और तेरा विवाह भी अभी तक नही हुआ है, समझा ना मेरी बात !

केदार—योग्य है सब ओर से, और आप भी योग्य हैं, इसलिये मना करने की कोई बात ही नही उठती ।

बैकुण्ठ—आप उचित कहते हैं, मेरे मन की एक ही बात कही आपने केदार बाबू ।

अविनाश—पर भाई साहब मेरा मन कुछ और ही कहता है, मेरा मन विवाह करना नही चाहता है, पता नही क्या बात है ।

केदार—भाई वाह, अविनाश भाई ! तुम्हारा हास्य खूब रहता है । ब्याह करने से पहले ही मना, क्या कहने तुम्हारे ! क्या नाम भला उसका, [illegible] करने के पश्चात् यदि मना करते तो कुछ अर्थ भी लगाया जाता ।

वैकुण्ठ—लडकी तो रूपवती है !

अविनाश—आपने उसे देखा है क्या ?

वैकुण्ठ—जब केदार बाबू स्वय कह रहे हैं, तब देखने की आवश्यकता ?

(अविनाश चुप रहता है)

केदार—कैसे विश्वास दिलाऊँ भई ! क्या नाम है भला उसका, वह मेरे परिवार की नही, मेरी साली है, मेरी पत्नी की छोटी बहिन ! भला तुम मेरा चेहरा देखकर डर क्यो गये, यकीन रखो मेरी कोई नही, केवल साली है । एक बार चल कर अपनी आँखो से देख आओ न !

वैकुण्ठ—इससे अच्छा और क्या हो सकता है, अवि ? तुम जाकर स्वय देख आओ ।

अविनाश—जब घर में मैं बाहर के किसी अन्य आदमी को लाना ही नही चाहता, तब देख कर क्या करूँगा !

केदार—ये बात बिल्कुल ठीक है, लेकिन क्या नाम है भला उसका, बाहर की किसी की ओर देखने में भला हर्ज भी क्या है ? एक बार यदि देख आओ तो न घर का कोई नुकसान होगा न बाहर वाले किसी का कुछ घिस जायेगा ।

अविनाश—यदि यही बात है तो फिर देख आऊँगा । भाई साहब अब, तुम उठो, भोजन करलो । नीरु ने मुझे भेजा है ।

वैकुण्ठ—पर पहले केदार बाबू के लिये प्रबन्ध होना आवश्यक है ।

केदार—आप भी खूब हैं वैकुण्ठ बाबू !

अविनाश—बिना कहे भोजन स्वय तो आ नही सकता, ईशान को बुलाकर तनिक कहना ····· ।

केदार—अरे भाई, नही, नही ! ईशान, नैऋत की कोई आवश्यकता नही, उससे पहले ही बात हो चुकी है भाई ।

पूड़ी मिठाई का दोना हाथ में लिए तीन कौड़ी का प्रवेश

तीन कौडी—यह लो ले आया भोज्य सामग्री, बैठ जाओ मै परसता हूँ।

वैकुण्ठ—अर भई तीन कौड़ी, तुम भी बैठ जाओ, परोसने का प्रवन्ध मै कराये देता हूँ।

तीन कौडी—आप परेशान क्यो होते हैं बाबू सा'व ! मै तो पहले ही जीम आया हूँ।

केदार—अरे तू बड़ा बेअदब है, पेटू कही का !

तीन कौड़ी—लाचारी है भाई सा'व। पैदा होते ही माँ मर गई, दूध के लिये रोया, पर देता कौन ! जहाँ जाता हूँ पहले ही चौपट हो जाता है। चाहे काम कितना ही अच्छा करूँ पर बाधा अवश्य आयेगी। आप ही अब कहो सन्तोष करूँ तो किसके लिये !

अविनाश—अरे केदार भाई, इस छोकरे को कहाँ से पकड लाये तुम ?

केदार—भला क्या नाम उसका, इसके लिये देश-देशान्तर तो घूमना पड़ा नही, अपने आप ही सयोग से आगया है। अब इसे छोड़ू भी तो कहाँ छोडूँ। क्या नाम भला उसका मैं तो इसी चिन्ता में घुला जा रहा हूँ।

अविनाश—भाई सा'व आप भोजन करने चले।

वैकुण्ठ—सो ऐसा कैसे हो सकता है, पहले इसे तो चुकवा ले।

केदार—सो किसी तरह नही हो सकता, आप जाइये भोजन पाने, हम लोग तो······

वैकुण्ठ—आप लजाइये मत, खिलाने-पिलाने मे मुझे बडा आनद आता है।

तीन कौडी—अरे इसमे क्या है, आप कल भी देख सकते हैं, हम लोग कही भागे थोडे ही जा रहे हैं !

केदार—अरे तीन कौडी—भला क्या नाम है उसका, अरे तू ऐसा कर, दौने को लेकर घर चला चल ! वही हम लोग खा-पी लेंगे, बेकार मे इन को कष्ट हो रहा है, अभी तक खाना भी नही खाया है इन्होने !

तीन कौडी—अरे भाई अब कष्ट किस बात का, कल की कल देखी जायगी।

(अविनाश हँस देता है)

वैकुण्ठ—केदार बाबू, आपका यह लडका खूब बाते करता है,आपको खाना-पीना तो यही करना पडेगा, मुझे छोकरा बहुत प्यारा लगता है !

ईशान का प्रवेश

ईशान—बाबू सा'ब !

वैकुण्ठ—अभी आया भैया, अभी आया। ओह तो आप लोग जाने पर तुले हैं, अच्छा जाइये, कल .....

तीन कौडी—कल नही, आपको व्यर्थ मे कष्ट उठाना पडेगा।

(वैकुण्ठ अविनाश और ईशान का प्रस्थान)

तीन कौडी—(केदार से) भाई सा'ब यह लो बाकी के रुपये सम्हालो। मेरे पास ऐसी चीज ठहरती ही नही है।

केदार—पता नही क्या समझ कर तेरे बाप ने तेरा नाम तीन कौडी रख दिया, पर है तो हीरालाल। समझा न मेरी बात।

(दोनो का प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

केदार और अविनाश

केदार—अरे तो, आज चल दिया, क्या नाम भला उसका, बडा तग किया तुम्हे।

अविनाश—बैठो न तनिक, तग की क्या बात है। सुनो तो, जब मै चला आया था उसके पश्चात् मनोरमा क्या कुछ मेरे बारे में कह रही थी ?

केदार—अरे क्या नाम है भला उसका, वह क्या कहेगी ? जब तुम्हारा नाम सुनती है तो उसके कपोल विलायती टमाटर जैसे लाल हो जाते हैं।

अविनाश—(हँसते-हँसते) ओहो ! इतनी लाज !

केदार—जी हाँ ! क्या नाम है भला उसका, खराब लक्षण तो यही हैं !

अविनाश—(केदार को धक्का देकर)—अच्छा ! मालूम होता है तुम्हारा माथा खराब हो गया है, सुनूँ तो भला, इसमें कौन से खराब लक्षण हो गये !

केदार—अरे भाई, क्या नाम भला उसका, यह नियम तो स्वाभाविक है।

जैसे तीर छूटता है ना, पहले पीछे की ओर खूब खिचाव होता है, उसके पश्चात् क्या नाम है उसका भला, जब चुटकी से छूट जाता है तो सांप की तरह हवा में दौड जाता है। आरम्भ में जहां लाज अधिक दिखाई दे, समझ लो प्रेम की दौड़ तीर से कम नही है।

अविनाश—मालूम पडता है केदार, तुमने मेरा नाम लेकर उससे हास्य किया होगा, तभी तो…? अच्छा यह बताओ कैसी लाज देखी तुमने ? हो तो तुम भी गुरू न !

केदार—कोई एक बात हो तो, क्या नाम भला उसका, बताई जाय। आज मेरे पास काम तनिक ज्यादा है, मुझे जाने दो।

अविनाश—हा-हा-हा तनिक बैठो तो ! सुनो भी तनिक, एक काम की बात करनी है मुझे तुमसे। मैंने एक अँगूठी खरीदी है, समझ गये न !

केदार—अरे ये तो मामूली बात है, इसमें समझने को क्या धरा है ?

अविनाश—मामूली बात है ? अच्छा, तो भला क्या समझे, तनिक बताओ तो ?

केदार—अरे जब हाथ में रुपये हो, तो क्या नाम भला उसका, अँगूठी खरीदने मे क्या लगता है, यही समझा और समझता ही क्या ?

अविनाश—तो तुमने समझा धूल। मैं उस अँगूठी को तुम्हारे द्वारा मनोरमा को भेंट देना चाहता हूँ। तुम समझदार आदमी हो, कोई दोष की बात तो नही।

केदार—भाई, मुझे तो इसमें कोई दोष दीखता नही है। और अगर कोई दोष है भी तो भी क्या नाम है भला उसका, तो दोष को त्यागकर अँगूठी ले लेने से भी काम चल जायेगा।

अविनाश—भई तुम बडा हास्य करते हो मेरे साथ। मै जो कहता हूँ तुम उसे सुनो, अगर अँगूठी के साथ एक चिट्ठी भी लिखकर भेज दूँ तो कैसा रहे ?

केदार—इससे क्या हुआ ?

अविनाश—तो लो, अँगूठी पकडो, मै तुरत चिट्ठी लिखे देता हूँ।

(चिट्ठी लिखता है)

केदार—(स्वगत) चलो अँगूठी तो मिल गई। पर दोनो भाइयो के साथ

महनत भी खूब करनी पड रही है । अब यदि व्याह जल्दी हो जाय तो आराम का समय मिले ।

वैकुण्ठ का प्रवेश

वैकुण्ठ—(भीतर झाँककर—स्वगत) अच्छा अब तो केदार बाबू से घुटने लगी है । जबसे लडकी देखी है तब से तो अवि इसका पिंड ही नही छोडता है । इसका स्वभाव है सनकी, बस जिधर झुक गया तो बस झुक गया । पर लगता है केदार बाबू परेशान हैं, इनका उद्धार अवश्य करना चाहिये । (कमरे मे घुसकर) ओह, केदार बाबू हैं । कहिये क्या समाचार हैं, सुनाइये तो तनिक ! मैंने भी इधर एक नया परिच्छेद लिख डाला है, सुनाने की इच्छा भी है ।

केदार—अजी क्या पूछते हो, क्या नाम भला उसका, मेरा तो हाल बडा बेहाल है ।

अविनाश—(चिट्ठी छिपाकर) भाई सा'ब, केदार बाबू से एक आवश्यक काम की बात करनी थी।

वैकुण्ठ—(स्वगत) काम का तो ठिकाना ही कोई नही । लगता है लडके का दिमाग चल गया है । (प्रगट में) पर अवि, केदार बाबू के बिना मेरा काम भी तो रुका हुआ पडा है ।

नौकर का प्रवेश

नौकर—बाबू सा'ब, मानिक तल्ला से एक माली आया है ।

अविनाश—उससे कह दे अभी वह चला जाय ।

(नौकर का प्रस्थान

वैकुण्ठ—अरे जाके तनिक सुन तो आ, भला क्या कहता है माली, इतनी दूर से आया है । तब तक केदार बाबू के पास मैं बैठा हूँ ।

केदार—आप मेरे लिये चिन्ता न करे, क्या नाम भला उसका, मैं तो चल दिया, मुझे काम बहुत है आज ।

अविनाश—नही-नही, केदार बाबू तनिक देर और बैठे रहो ।

वैकुण्ठ—आप बैठे रहिये । देखो अवि, पेड पौधो के बारें मे जो तुम अध्ययन कर रहे हो, उसमें लापरवाही बिल्कुल मत कर बैठना । तुम्हारा यह का

स्वास्थ्य के लिये वडा लाभदायक है, और आनन्दजनक भी।

अविनाश—भाई सा'व, मैं बडी सावधानी से अध्ययन करता हूँ, आज तनिक एक आवश्यक कार्य आ गया है, इसीसे···

वैकुण्ठ—अच्छा तो फिर तुम लोग वैठो। केदार बावू बडे भले आदमी हैं वेचारे। इन्हे ज्यादा तंग करना ठीक नही है। (स्वगत) तनिक भी विचार नही इसको, असल मे दोष इसका नही, इसकी उम्र का है!

तीन कौडी का प्रवेश

केदार—भला तुम यहाँ किसलिये?

तीनकौडी—डरने की वात कोई नही है भाई सा'व! दो हैं—एक को मुझे दे दो, एक को तुम ले लो!

वैकुण्ठ—हाँ भाई, यह वात बिल्कु ठीक है। चलो, तुम मेरे कमरे में चलो।

केदार—अरे तीनकौड़ी, क्या नाम भला तेरा, तू मुझे किसी दीन का नही छोडेगा।

तीनकौडी—पर और सव तो कहते हैं कि तुम मुझे किसी दीन का नही छोडोगे। (पास जाकर) भाई साहव, रुष्ट क्यो होते हो। जिस दिन से तुम्हे देखा है, उसी दिन से अपने तई भाई और चाचा तक मुझे अच्छे नही लगते, मैं तुम्हे इतना चाहता हूँ।

केदार—अरे वक-वक क्यो कर रहा है, क्या नाम है भला, तेरे वाप, भाई और चाचा हैं भी कही?

तीन कौडी—तुम तो विश्वास नही करोगे भाई सा'व, पर हैं सव। उसमें न तो कुछ व्यय है न कोई महात्म्य। तीन कौड़ी अगर स्वय वना लेता तो शायद न होते, पर मेरे भी वाप-भाई-चाचा सव कुछ हो सकते हैं!

वैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही! लड़का ये सव वातें कैसी अच्छी करता है। आओ भाई चलो, मेरे कमरे में। (प्रस्थान)

अविनाश—केदारभाई, वहुत छोटा-सा लिख दिया है, समझ गये न! केवल एक सतर—"देवी के चरण कमलो में पुजारी का पूजोपहार।"

केदार—हाँ, ठीक है, वडा अच्छा लिखा है। कोई वात छूटी भी नहीं,

अच्छा तो अब चलता हूँ।

अविनाश—पर 'चरण कमल' शब्द यहाँ जँचा कहाँ भाई साहब, अँगूठी ही तो है।

केदार—हाँ तो क्या नाम उसका—'करकमलों' में लिख दो।

अविनाश—भाई साहब, पर करकमलों में प्रेमोपहार कुछ···· 'कैसा लगता है।

केदार—तो फिर 'पूजा का उपहार' न करके, क्या नाम भला उसका······

अविनाश—केवल 'उपहार' लिखने से पढने में सूनापन आ जाता है। पूजोपहार रहने दिया जाये।

केदार—जैसी इच्छा।

अविनाश—तो फिर कर कमलों का क्या किया जाय?

केदार—तो फिर चरण कमल ही रहने दो ठीक है, क्या नाम भला उसका, मुझे काम है जाने दो अब।

अविनाश—तनिक ठहरो भाई सा'ब, अँगूठी के बारे में चरणकमल ऊटपटाँग-सा लगता है।

केदार—अरे वाह! ऊटपटाग-सा क्यों लगेगा! तुम तो 'चरण कमलों' में अर्पण करके छुट्टी माँगो न, उसके बाद, क्या नाम है भला उसका, वह करकमलों में उठायेगी कैसे, यही बात रह जाती है न, सो अगर वह अपने आप न उठा सकी तो और कोई उठा देगा।

अविनाश—अच्छा अगर पूजोपहार न लिखकर प्रणयोपहार लिखा जाय तो कैसा रहे?

केदार—अगर वह तुरन्त लिख जाय तो सबसे बहतर।

अविनाश—पर ठहरो केदार बाबू, तनिक विचार कर लू।

ईशान का प्रवेश

ईशान—उधर खाना जो ठडा हो रहा है!

अविनाश—सुन लिया, तुम जाओ मैं खा लूँगा।

ईशान—आखिर दीदी बैठी कब तक रहेगी?

अविनाश—सुन लिया भाई, सुन लिया, तुम यहाँ से जाओ भी तो !

ईशान—(केदार से) आपने बडे बाबू का तो खाना-पीना सब कुछ छुडा दिया, अब क्या छोटे बाबू का भी माथा खराब करना चाहते हो ?

केदार—ईशान भाई, ये ठीक है कि तुम मेरा दिया नही खाते, फिर भी क्या नाम भला उसका, तुम मेरी दशा के बारे मे भी तो सोचो। तुम्हारे बडे बाबू खूब खुला-सा लिखा करते हैं, और छोटे बाबू क्या नाम है भला उनका, बड़े सक्षेप में लिखते हैं। पर मेरे दुर्भाग्य से दोनो की लिखावट समान ही हो जाती है। अविनाश बाबू, तुम्हारा भोजन जब तैयार है, क्या नाम भला उसका, तो तुम भोजन करने जाओ, मैं भी चल दिया।

अविनाश—क्यो, चले क्यो जाओगे ? तुम भी भोजन यही करलो न ! जा रे इसना, बाबू के लिये भी भोजन की तैयारी कर।

ईशान—जब पहले से आपने सूचित नही किया, तब अब मै कैसे तैयारी करूँ।

अविनाश—अरे तू तो पूरा मूर्ख है, कहता है कैसे करूँ। जा-जा जल्दी तैयारी कर।

ईशान—बडे बाबू तो बडे बाबू थे ही, अब यह भी वैसे ही हुए जा रहे हैं, मेरा तो अब इस घर मे टिकना मुश्किल है !

(प्रस्थान)

अविनाश—यहाँ देवी शब्द उस समय बदलना पडेगा यदि प्रणयोपहार लिखा जाय ! देवी के साथ प्रणय कसे किया जायेगा ?

केदार—भला ऐसा क्यो नही होगा ? क्या नाम भला उसका, तो फिर स्वर्ग की देवियाँ जीती किस प्रकार हैं। स्त्री जाति जहाँ भी रहे स्वर्ग मे या पृथ्वी पर अथवा पाताल मे, क्या नाम भला उसका, उसके साथ प्रणय हो सकता है, होता है ! तुम इसकी चिन्ता न करो। (स्वगत) अब मेरा पिण्ड तो छोड़ो, देवता !

तीन कौडी का प्रवेश

तीन कौडी—अरे बडे भाई साहब, केदार बाबू ! आप अपना स्थान बदल

लें, मैं यहाँ रहूँगा और आप वहाँ चले जायँ !

केदार—भला क्या बात हुई ऐसी ?

तीन कौडी—हे भगवान् ! पोथा है या आफत ! मैं अगर उसमें घुस गया तो बस कितनी ही तलाश क्यो न की जाय मिल नही सकता किसी को। मुझे पोथा पढने को देकर बुड्ढा कही चला गया तो मै भाग आया वहाँ से !

वैकुण्ठ का प्रवेश

वैकुण्ठ—अरे तीन कौडी, मेरे पास से क्यो भाग आये तुम ?

तीन कौडी—आपने पोथा तो इतना बडा लिख दिया, पर तनिक-सी बात भी आपकी समझ में नही आई कि मैं क्यो भाग आया ?

वैकुण्ठ—अच्छा एक बार आप चले केदार बाबू !

केदार—चलिये। (स्वगत) राम के हाथ से मर जाता तो भी मर जाता और रावण के हाथ से मर जाता तो भी मर जाता। बात एक ही है, मरना मरना है, पर अविनाश की एक-एक लाइन से तो मैं उकता ही गया।

अविनाश—केदार बाबू आखिर तुम जा कहाँ रहे हो ? भाई सा'ब मेरा काम अभी

वैकुण्ठ—(क्रोधित होकर) जब देखो दिन और रात तेरा तो काम ही बाकी रहता है ! केदार बाबू सीधे आदमी हैं, थोडा बहुत इनको आराम भी करने दोगे या नही, इतना विचार तो किया होता। आओ केदार बाबू चला जाय !

(दोनो का प्रस्थान

केदार—क्या नाम भला उसका, आओ चले।

अविनाश—अरे तीन कौडी, मनोरमा तुम्हारी कौन लगती है रिश्ते में।

तीन कौडी—दूर का एक रिश्ता है, जिससे वह मेरी बहिन लगती है, पर एक बात ध्यान में रखियेगा कि आप उससे इस बारे में कहे कुछ नही, क्योंकि उसे लजाना पडेगा ऐसी बात सुनकर।

अविनाश—तो क्या वह लजाती बहुत है, तीन कौडी बाबू ?

तीन कौडी—मेरे प्रसग से बहुत लजाती है वह।

अविनाश—मैं तुम्हारे बारे मे कुछ नही पूछ रहा, मैं तो अपने विषय मे पूछ रहा हूँ, क्योंकि उनकी सगाई मेरे साथ···क्या तुम्हे यह बात मालूम है ?

तीन कौडी—हाँ-हाँ समझ गया, सो तो होगी ही। मेरी भी एक लडकी से सगाई हुई थी सो व्याह से पहले ही वह लाज के मारे मृत्यु लोक चली गई।

अविनाश—क्या कहा, मर गई वह ?

तीन कौडी—केवल लाज से ही नही, यकृत की शिकायत भी उसे थी।

अविनाश—और मनोरमा के··

तीन कौडी—ऐसी कोई शिकायत नही।

अविनाश—भई, मै ऐसी कोई बात नही पूछ रहा, मै तो उसके मन की बात पूछ रहा हूँ।

तीन कौड़ी—बाबू साहब, आपकी ये बडी-बडी बाते मेरे दिमाग मे घुसती ही नही हैं, समझू कैसे ? क्योंकि स्त्री का मन इस अभागे को कभी मिला ही नही है, और न कभी इसकी इच्छा ही हुई है। मै तो इसी तरह बडे आनन्द मे हूँ।

अविनाश—छोडो इन बातो को। मेरी बात सुनो, मेरी इच्छा है मनोरमा को एक अगूँठी उपहार देने की और सोचता हूँ उसके साथ एक लाइन की एक चिट्ठी भी दे दू !

तीन कौडी—एक लाइन ही तो लिखेंगे, चट से लिख दीजिये, हर्ज ही क्या है !

अविनाश—लो सुनो, मैंने लिखा है—'देवी के चरण कमलो मे विमुग्ध भक्त का पूजोपहार।' क्या राय है तुम्हारी इस बारे मे।

तीन कौडी—आप चाहे जो लिखिये, आपकी अपनी बात है। मै कुछ कहूँ, ये बात ठीक नही है, क्योंकि मेरी तो वह बहन लगती है।

अविनाश—अरे भाई, समझो तो, मै यह बात नही कह रहा। अँगूठी क्या चरणो मे दी जाती है ? शायद 'कर कमलो में' लिखने से···

तीन कौडी—हाँ-हॉ-हॉ, तनिक-सी बात, केवल चिट्ठी ही तो है सो चरण-कमल हो या कर कमल, कुछ भी हो काम चल जायेगा। कौन अदालत मे जाकर

जवाव देना पडेगा।

अविनाश—अरे भाई, मेरी इच्छा है जो कुछ भी लिखा जाये, उसका अर्थ सीधी तरह से समझ मे आ जाना चाहिये।

तीनकौडी—अरे साहब, अगूठी ही तो है, इसमें अर्थ वर्थ की क्या आवश्यकता है !

अविनाश—अरे अँगूठी से ज्यादा बातो की कीमत होती है, क्या यह भी तुम नही जानते।

तीनकौडी—अगर वावू साहव वातो का कोई मूल्य होता, तो मेरी दशा ऐसी न होती, जैसी आप देख रहे हैं।

अविनाश—भाई तुम क्या कह रहे हो, मेरी समझ से वाहर की बात है तुम्हारी। तनिक ध्यान से मेरी वात सुनो तो पता चले। मेरी इच्छा है अगर मै उस चिट्ठी वाली लाइन को इस तरह लिख दूं—प्रेमिका के कर-कमलो में अनुरक्तदास का प्रणयोपहार। तो शायद अधिक ठीक रहे।

तीनकौडी—हाँ ठीक रहेगा।

अविनाश—ठीक रहेगा ! मुँह से कह देने भर से ही काम नही हो जायगा, कि 'ठीक रहेगा।' भले आदमी ! तनिक दिमाग पर जोर डालकर सोचकर तो बताया होता।

तीनकौडी (स्वगत) हे भगवान् इसमें तो क्रोध भी है, बुड्ढे मे कम से कम इतना क्रोध तो नही है। (प्रगट मे) अगर सोचने की वात है तो मुझे तो पहले की लाइन अच्छी लगी थी।

अविनाश—ऐसा भला क्या अवगुण है इसमें ?

तीनकौडी—(स्वगत) अवगुण नही तो फिर क्यो सोचो इसके वारे में। वेकार मे चक्कर मे डाल दिया मुझे ! (प्रगट) अविनाश वावू सच तो यह है कि किसी भी वात के वारे मे सोचिये, कोई न कोई अवगुण अवश्य निकल ही आता है। और अगर किसी वात के वारे मे सोचा न जाय, तो कोई वात होती ही नही हैं, मेरी समझ तो वस इतनी है।

अविनाश—हाँ यह हुई पते की वात ! तुम्हारी वात अव समझ मे आई।

तुम्हारा कहना है कि विवाह से पहले ही 'प्रेमिका' कहने से लोग कुछ सोचने लगेंगे !

तीनकौडी—(स्वगत) लाज रखली भगवान् ने (प्रगट) बात तो यही है। अविनाश बाबू एक बात और भी है, आपस की बात है, यदि आपने प्रेमिका लिख भी दिया तो होता क्या है, काई गैर थोडे ही लिख रहा है यही रहने दीजिये !

अविनाश—नही, कोई आवश्यकता नही—पहले की लाइन ही ठीक जँचती है !

तीनकौडी—राय तो मेरी भी यही है !

अविनाश—पर तनिक सोचकर देखो तो सही, कही वाक्य खटकता तो नही है ?

तीनकोडी—(स्वगत) हे भगवान् लाज रख। ये तो फिर कह रहा है सोचने के लिये। (प्रगट) स्पष्ट बात यह है अविनाश बाबू कि बचपन से ही मैने कभी किसी के लिए कुछ नही सोचा है। इसलिये सोचने की मेरी आदत बिल्कुल ही नही है।

अविनाश—उफ ! अरे तुम जरा चुप भी रहोगे या नही, अपनी ही बात बक रहे हो, मुझे भी कुछ सोचने दोगे या नही।

तीनकौडी—आप खूब सोचिये, मुझसे क्यो कहते हैं आप सोचने के लिए। तनिक रुकिये मैं केदार बाबू को बुलाकर ला रहा हूँ। वह मुझसे अधिक सोचते भी हैं और आपकी समस्या भी हल हो जायगी। (स्वगत) मेरे लिए तो वह बुड्ढा ही अच्छा !

(प्रस्थान)

केदार और बैकुण्ठ के साथ तीन कौड़ी का पुनः प्रवेश

बैकुण्ठ—केदार बाबू से तुम्हे फिर क्या आवश्यकता पड गई अवि ? मै इन को अपनी पुस्तक का नया परिच्छेद सुना रहा था। तीन कौडी इनके पीछे पड गया, और जब पैरो से लिपट गया तो...

अविनाश—मेरा वह काम अभी समाप्त नही हुआ, इसीलिये...

बैकुण्ठ—(क्रोधित होकर) तुम्हारा काम समाप्त नही हुआ तो मेरा

परिच्छेद ही कहाँ समाप्त हुआ था ? बस तुम··

अविनाश—तो आप इनको ले जायँ।

केदार—क्या नाम भला उसका, तुम्हारा भी तो वह काम आवश्यक है अविनाश, अब और देर करना ठीक भी तो नही हैं, भाई !

वैकुण्ठ—(केदार से) वाह ! आप इसकी चिन्ता क्यो करते हैं (अविनाश से) अविनाश अपने काम के लिये इन्हे इस तरह से तग और परेशान मत किया करो भाई। अगर तुम्हारे बर्ताव से तग आकर इन्होने यहाँ आना बन्द कर दिया तो ?

तीन कौडी—बाबू सा'ब आप इस बात की चिन्ता बिल्कुल न करें ! भगवान ने हमको वह ताकत दी है कि विना बुलाये अथवा दुत्कारने पर भी हम सयम से काम लेते हैं और आना जाना पूर्ववत् चालू रखते हैं। बाज-बाज तो हमारे बारे मे हँसकर कहते हैं कि अगर ये मर भी गये तब भी मित्रता रखेगे और आना-जाना बन्द न करेंगे !

केदार—ओरे मूर्ख ! चुप नही होता तू !

तीन कौडी—पहले से कह देना ठीक है भाई सा'ब ! ताकि बाद में ये कुछ ख्याल न करे।

ईशान का प्रवेश

ईशान—(केदार और अविनाश से) आप दोनो के लिये थाल लग गये हैं बाबू सा'ब !

तीन कौडी—और मेरे लिये रास्ता बन्द है,क्यो ना? जन्मते ही जिसकी माँ धोखा देकर मर गई, भला मित्र लोग ही उसकी क्या भलाई कर सकते हैं। पर भाई सा'ब इस बात पर विचार तो करो कि तुम्हारा तीन कौडी कभी बिना तुम्हे भाग दिये कोई चीज कभी नही खाता है !

केदार—तो फिर !

तीन कौडी—खैर चट से जाकर तुम खा आओ। देर करने से शायद मैं भूख न सम्हाल सकूँ। देर होने से समझूँगा कि छत्तीस व्यजन उड रहे हैं।

वैकुण्ठ—ऐसी क्या बात है भाई तीन कौडी, तुम क्या बिना भोजन के रह

जाओगे ! ऐसा कभी हो नही सकता है। ओ इसना !

ईशा-—मै जाता हूँ, मुझे कुछ नही मालूम !

(प्रस्थान)

अविनाश—चलो भाई तीन कौडी प्रवन्ध तो हो ही जायेगा !

तीन कौडी—आप लोग चलिये, खीचातानी से लाभ ? खिलाने का मार्ग बैकुण्ठ बाबू जानते हैं, उस दिन की बात भूला थोडे ही हूँ।

(तीन कौडी और बैकुण्ठ का प्रस्थान)

अनिवाश—अच्छा उस लाइन के बारे मे ?

केदार—जी, क्या नाम भला इसका, भोजन के पश्चात् ठीक करेगे।

तीसरा दृश्य

केदार

केदार—हे भगवान् साली का विवाह तो बिना किसी रुकावट के पूर्ण हो गया। पर बैकुण्ठ के होते हुए मैं बिना खटके नही रह सकूँगा। उपद्रव कितने किये गये, पर बूढा है कि कान पर जूँ भी नही रेगती !

बैकुण्ठ का प्रवेश

बैकुण्ठ—ओह ! केदार बाबू कहिये क्या समाचार हैं ? आपका चेहरा रोना-सा प्रतीत होता है, कहिए कोई शिकायत तो नही आपको ?

केदार—जी, क्या नाम भला उसका—डाक्टर कहता था कि तुम मानसिक परिश्रम बिल्कुल मत करो।

बैकुण्ठ—भई बात तो पूरी फिकर की है, ऐसा करो कुछ दिन घर त्यागकर यही विश्राम करो, मेरे विचार से यही ठीक रहेगा !

केदार—सोच तो मैं भी ऐसा ही रहा हूँ।

बैकुण्ठ—हाँ, यही ठीक है वेणी बाबू।

केदार—वेणी बाबू नही, विपिन बाबू—

वैकुण्ठ—हाँ विपिन बाबू ! आपकी जो बहूरानी है उसके क्या लगते हैं वह ?

केदार—विपिन बाबू उसके चाचा लगते हैं ।

वैकुण्ठ—हाँ, शायद चाचा ही लगते हो, सो उनके लिए किसी ने रहने को मेरा यह कमरा ही बता दिया । सो—

केदार—क्या नाम भला उनका—उन्हे इसमे तो आराम ही रहेगा !

वैकुण्ठ—आप बात समझे नही, इसी कमरे मे तो मै लिखा-पढा करता हूँ ।

केदार—सो बात आपकी ठीक है, क्या नाम भला उनका—उन्हे इसमे क्या हानि है जो वह आपके लिखने पढने के लिए आपत्ति करेगे ! क्या नाम भला—आप बडे आराम से लिखिये, वह मना नही करेगे ।

वैकुण्ठ—भला वह आपत्ति या मना क्यो करने लगे । बेचारे बडे भले आदमी हैं वे, पर एक बात उनमें बडी खराब है, बिस्तर पर लेटे लेटे वह प्राय गीत गुनगुनाया करते है, इससे लिखने मे · ···

केदार—भला इसमे चिन्ता की क्या बात है, क्या नाम भला उनका—उन्हे बुलाकर आप कह क्यो नही देते !

वैकुण्ठ—ना भाई ना—वे भले आदमी हैं, इसकी आवश्यकता नही है ।

केदार—तो मैं ही, उन्हे बुलाकर क्या नाम भला—डाटे देता हूँ ।

वैकुण्ठ—अरे नही केदार बाबू ! ऐसा मत कीजिये ! लिखते समय गाना तो खैर मुझे भी अच्छा लगता है, पर बात यह है कि मैं सोचता हूँ यदि कोई और कमरा होता तो अच्छा होता ! मैं भी ठीक से काम कर लेता और वह भी जी भरकर गा लेते ।

केदार—वाह वैकुण्ठ—वाह वैकुण्ठ बाबू ! तब तो—क्या नाम भला उसका—उन्हे सदैव एक आदमी की आवश्यकता रहती ।

वैकुण्ठ—ये तो आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, हैं आदमी बडे मिलन सार ! या तो हर समय गपशप करेगे, या गाते रहेगे ! ऐसी बात नही, मै उनका आदर करता हूँ ! पर आपसे छिपाना क्या केदारबाबू—आप कुछ विचार मत कीजियेगा मेरे 'स्वर-सूत्रगार' पोथी का कही पता ही नही चल रहा है ।

केदार—अरे ! भला आपने वह रखी कहाँ थी, बतलाइये तो सही ?

वैकुण्ठ—आप तो जानते ही है, अलमारी के ऊपर इसी कमरे में रखी थी। इधर इस कमरे मे आजकल लोग बरावर आते जाते रहते हैं मै किसी से कह भी क्या सकता हूँ, पर जब कभी मेरी दृष्टि अलमारी के उस स्थान पर जाती है तो उसे सूनी देखकर इतना दुख होता है मानो किसी ने मेरी पसली की एक हड्डी निकाल ली हो !

केदार—हाँ ध्यान आया, सुनिये तो तनिक क्या नाम भला उसका–मैंने देखा है अविनाश आपकी किताबे प्राय ले जाया करता है।

वैकुण्ठ—अरे क्या कहते हो ? अविनाश तो मेरी पुस्तके पढता ही नहीं हैं।

केदार—पढता नही–क्या नाम भला उसका—बेच दिया करता है।

वैकुण्ठ—बेच दिया करता है ?

केदार—तो आपको पता नही—क्या नाम भला उसका–नया प्रेम ठहरा, नया शौक है खर्चा काफी अधिक है न ! मैंने कई वार उससे कहा, अगर ऐसी ही बात है—तो क्या नाम भला उसका–तनुख्वाह के रुपयो मे से कुछ अपने पास रख लिया करो। पर इसमें उसे लाज आती है, ऐसा ही कहता था !

बैकुण्ठ—लडका है अभी। प्रेम की उपेक्षा भी नही कर सकता, और फिर बडे भाई के सम्मान का ध्यान भी उसे पूरा रखना पडता है।

केदार—अच्छा जी—क्या नाम भला उसका—जैसे भी होगा मै आपकी पोथी का उद्धार करूँगा ! चाहे किसी मूल्य पर हो।

वैकुण्ठ—हाँ,—रुपये-पैसे का ख्याल मत करना, उसका उद्धार अवश्य करना, मै आजीवन ऋणी रहूँगा।

केदार—(स्वगत) बाजार मे तो उसे कोई चार पैसे में भी न पूछेगा। सौदा ठीक है, धर्म रक्षा भी होगी और रुपया भी थोड़ा बहुत हाथ आयेगा ही।

(प्रस्थान)

अविनाश का प्रवेश

अविनाश—भाई सा'ब !

वैकुण्ठ—क्या बात है अवि ?

अविनाश—मुझे थोडे रुपयो की एक आवश्यकता आ गई है !

वैकुण्ठ—इसमें लजाने की कौन सी बात है, भैया ! मै तो कहता हूँ कि अपनी पगार के रुपये अपने पास ही रखा करो। मै तो हो गया बूढा, इधर-उधर कही रुपये रख दिये और बस भूल गया, न कोई हिसाब न किताब। मुझे तो याद ही कुछ नही रहता।

अविनाश—भाई साहब ! यह आज नयी बात कैसे कह रहे हो।

वैकुण्ठ—इसमें नई बात कैसे ? तुम्हारा विवाह हो गया, गृहस्थी आदमी बन गये और मै बन गया अब सन्यासी ! समझे ना।

अविनाश—ब्याह ! भाई साहब ब्याह आपने ही तो मेरा करा दिया, यदि उस ब्याह के कारण ही मुझे दूसरा समझने लगे हो तो जाने दो, अब इधर कहा तो कहा फिर कभी रुपये पैसे के बारे मे कुछ नही कहूँगा।

वैकुण्ठ—ओ-ओ. .अरे...अरे सुन तो मेरी बात, बडी जल्दी क्रोध हो आया, तनिक बात तो सुन जा।

'दूसरो की बातें सहन करूँ कैसे' गाते हुये
विपिन का प्रवेश

वैकुण्ठ—सुनाओ बैणी बाबू ?

विपिन—विपिनविहारी है मेरा नाम।

वैकुण्ठ—ओ हाँ, विपिन बाबू। आपके बिस्तर पर जो ये पुस्तके पडी हैं, उन्हे क्या आप पढा करते हैं ?

विपिन—भला इन्हे पढने क्यो लगा, बजाया करता हूं !

वैकुण्ठ—बजाते हैं। तो आपके लिये तबला या मृदग...

विपिन—ये सब, मैं बजाना जानता ही नही, मै पुस्तक ही बजाया करता हूँ। हाँ बात याद आ गयी वैकुण्ठ बाबू ! कई दिन से कहने की सोचता हूँ, पर समय पर बात याद नही रहती, मेरे कमरे मे जो आपकी अल्मारी और टेबिलें पडी रहती हैं आज उन्हे हटवा ले, क्योकि मेरे मिलने वाले बहुत से आदमी आते हैं इनसे उनको कष्ट होता है ! यानी उसमें बैठने के लिये जगह ही नही रहती।

वैकुण्ठ—पर ले कहाँ जाऊँ ? और कोई कमरा भी तो नही हैं। बराबर

के उधर के कमरे मे केशर बाबू हैं। डाक्टर ने उनको विश्राम करने को कहा है, और इधर जो ये कमरा है उसमें पता नही कौन-कौन हैं। मै तो जानता भी नही, मेरे कहने का अर्थ है वैणी बाव. . .

विपिन—वैणी बाबू नही, विपिन बाबू।

वैकुण्ठ—अच्छा जी विपिन बाबू। अगर इन्हे एक कोने मे चिपटा कर रख दिया जाय तो मेरा विचार है आपकी परेशानी बिल्कुल दूर हो जाय।

विपिन—परेशानी तो खर दूर हो जायगी, पर कष्ट तो रहेगा ही...खामकर मैं किचर-पिचर वाली जगह पसन्द नही करता, खुली जगह पसन्द करता हूँ।—'सहन करूँ कैसे, मैं बाते दूसरो की।'

ईशान का प्रवेश

वैकुण्ठ—अरे बडा अच्छा हुआ, तू आ गया। जरा मेरी बात सुनना—इस कमरे में वैणी बाबू को—

विपिन—वैणी नही, विपिन बाबू।

वैकुण्ठ—हाँ, विपिन बाबू को बडी तकलीफ है!

ईशान—तो फिर तकलीफ उठाने की आवश्यकता भी क्या है? इनके पुरखे मेरा मतलब है बाप दादो से, उनका घर भी तो कही न कही होगा ही, वही क्यो नही चले जाते!

वैकुण्ठ—अरे फिर वही छोटे मुँह बडी बात! मूर्ख कही का!

विपिन—कैसा काठ का उल्लू है, बात करने की तमीज भी नही है।

ईशान—पहले से आगाह करता हूँ अगर गाली बकी तो .

वैकुण्ठ—अरे इसना, तनिक चुप भी रह।

विपिन—तू जानता नही शायद कि मै कौन हूँ। इस घर मे मेरे पाँव की धूल भी नही रहना चाहती, समझे! मैं तो चला।

वैकुण्ठ—वैणी बाबू मत जाइये, मैं हाथ जोडकर क्षमा मागता हूँ।

(वैकुण्ठ को धक्का देते हुये प्रस्थान)

वैकुण्ठ—अरे इसना! देख तू बहुत सर पर चढ गया है मगर बता तो तूने ऐसा क्यो किया, मालूम होता है तू मुझे घर में टिकने ही नही देगा।

ईशान—क्या कहते हैं आप ? मै नही टिकने दूंगा।

वैकुण्ठ—देख तू हमारे यहाँ काफी दिनो से है सो हम तो तेरी बाते सुनने के आदी हो गये हैं, पर वाहर वाले तेरी वात कैसे सह लेगे, वता तो तू। अरे तनिक ठडे मिजाज से वाते किया कर भाई!

ईशान—मै ठडे मिजाज रखू तो रखूं कैसे, इन लोगो के हाल-चाल और रग-ढग देखकर तन-वदन में आग लग जाती है।

वैकुण्ठ—अरे देख तो ये हमारे नये रिश्तेदार हैं, अगर इनका अपमान करोगे तो अविनाश वावू का दिल दुखेगा, वह मुँह से कुछ कह भी न पायेगा, और भीतर ही भीतर घुलता रहेगा।

ईशान—इस वात को मै न समझूँ, ऐसी वात नही है वावू साहव! इसीलिये तो मै छोटी उमर मे व्याह करने की वात कहा करता था, अगर ठीक उमर मे व्याह होगया होता तो ऐसी हालत पैदा ही कभी नही होती।

वैकुण्ठ—अच्छा तू खिसक यहाँ से, ज्यादा वाते मत वना। मै अकेले मे ये सव वाते सोच समझ लूँ पहले।

ईशान—हाँ आप खूव सोच समझ लीजिये, हाँ और मै जो वात कहने आया हूँ उसे भी सुन लीजिये। वह रानी की न चाची न मामी न बुआ, पर एक बुढिया आई है सो वह नीरू दीदी को इतने कष्ट दे रही है कि कुछ कहते वनता ही नही, और मै अव और अधिक सह नही सकता।

वैकुण्ठ—अरे क्या अपनी नीरू को! वह तो ऐसे किसी वखेडे मे पडती ही नही थी, फिर क्या वात हो गई कि—

ईशान—वह खूसट बुढिया दिन भर नौकरानी की तरह उन्हे काम मे घसीटे रहती है, और कमीनी काले मुँह की ऊपर से कहती क्या है कि तुम छोटे भैया की कमाई पर रईसी किया करते हो। अगर बुढिया के दाँत होते तो वावू सा'व सच कहता हूँ सारे के सारे झाड देता।

वैकुण्ठ—नीरू भी तो कुछ कहती है कि नही ?

ईशान—आखिर वह है तो अपने ही वाप की वेटी। फूल-सा चेहरा सूखकर मुर्झा गया, पर फूटे मुँह से उसने एक भी वात नही कही, सीधी है न वेचारी।

बैंकुण्ठ—ऐसे समय की एक कहावत है—'साच को कही आच नही', जो सहता है, अन्त मे उसी की जीत होती है—

ईशान—मैं ये सब बडी-बड़ी ज्ञान की बातें तो जानता नही हूँ बाबू सा'ब। मै एक बार छोटे बाबू से—

बैंकुण्ठ—खबरदार इसना ! तुझे मेरे सर की कसम है, अगर अविनाश से तूनें कुछ भी कहा तो ?

ईशान—तो फिर क्या मैं चुपचाप बैठा रहूँ ?

बैंकुण्ठ—मैंने एक बात सोच निकाली है, और मैं समझता हूँ कि ये रास्ता ठीक भी रहेगा। यहाँ जगह भी कम है, इन लोगो को काफी तकलीफ रहती है। दूसरे अविनाश अब घर गृहस्थी हो गया है। उसका खर्च भी बढ गया है, इसलिये मैं अब और अधिक उस पर भार नही डालना चाहता। सोचता हूँ यहाँ से चला जाऊँ तो ठीक रहेगा।

ईशान—आपकी ये बात है तो ठीक, पर—

बैंकुण्ठ—पर वर की कोई बात नही है इसना, जब जैसा समय आता है, वैसा करना ही पड़ता है।

ईशान—फिर आपका लिखना-पढना कैसे चलेगा बाबू सा'ब।

बैंकुण्ठ—(हँसकर) अरे मेरा पढना-लिखना ! लिखना-पढना भी कोई काम है। मेरे इस काम से सभी हँसा करते हैं। मैं क्या इस बात को जानता नही हूँ। पोथी पत्रा सब यही पडा रहने दो। ससार में किसी को लिखने-लिखाने की क्या आवश्यकता ? तू तो समझदार है, सब समझ जाता है न।

ईशान—लेकिन छोटे बाबू से तो कह सुनकर जाना ही चाहिये।

बैंकुण्ठ—अगर उससे कहा तो वह कभी नही जाने देगा। वह तो मेरे जाने के लिए कभी भी 'हाँ' कर ही नही सकता। यहा से तो मुझे छिपकर बिना किसी को बताये ही जाना पडेगा। बाद में उसको चिट्ठी लिखकर बता दूँगा। तनिक नीरू से भी मिल आऊँ।

(दोनों का प्रस्थान)

तीनकौड़ी और केदार का प्रवेश

तीनकौडी—वाह भाई साहब ! तुमने तो मुझे खूब चकमा देकर अस्पताल भिजवाया। पर मैं भी पूरा गुरू हूँ। तुमने मुझे चकमा दिया मैं अस्पताल वालो को चकमा दे आया। आपने सोचा होगा अस्पताल मे मर जाऊँगा मैं, पर यह हस्ती यो ही नही मिट जायेगी भाई साहब !

केदार—कहने की आवश्यकता ही क्या है ? सामने देख रहा हूँ आपको स-शरीर मौजूद हैं।

तीनकौडी—बडा अच्छा किया जो आप एक दिन भी मुझे देखने नही गये, अन्यथा—

केदार—अन्यथा क्या हो जाता ?

तीनकौडी—यमराज ने सोच लिया जब इसका दुनियाँ में ही कोई नही तो मैं ही क्यो इसकी कदर करूँ, इसलिये उसने भी पूछा तक नही। साधारण जीव समझकर जिसे दुनियाँ मे कोई नही पूछता उसने भी घृणा से छोड़ दिया। भाई-साहब क्या बताऊँ आपको इस तीनकौडी के भीतर कितनी सार वस्तु है, यह देखने के लिये मैडीकल कालेज के तमाम लौंडे छुरियाँ ताने खडे थे—मुझे भी उन्हे देखकर अपने ऊपर गर्व होता था। खैर मेरी बात तो समाप्त हो गई अब तुम अपनी सुनाओ। लगता है कि अबकी बार तो खूब जमकर बैठे हो गणेशजी की तरह !

केदार—चल-चल अधिक बक-बक मत कर ! यह मेरे रिश्तेदारो का घर है, क्या तुझे इस बारे मे बिल्कुल पता नही है।

तीनकौडी—पता क्यो नही, क्या मुझसे कुछ छिपा है ! पर हाँ, बूढे बैकुण्ठ बाबू कही दिखाई नही पडते, बात क्या है ? क्या उन्हे कही चलता कर दिया ? यही तुममें सबसे बडा दोष है, मतलब निकला कि बस ··

केदार—ओरे तीन कौडिया ! अगर फिर तूने कभी ऐसी बात कही तो याद रख ऐसे कान मलूँगा कि क्या किसी ने मले होगे !

तीनकौडी—पर बिना सच बात कहे मैं चुप भी नही रह सकता। तुम मेरे कान ही तो ऐंठ सकते हो सो खूब ऐंठ दो, पर मै तो सच बात कहूँगा ही।

समझे । अगर वैकुण्ठ बाबू को तुमने धोका दिया तो बडा अधर्म होगा ! मेरे साथ तुमने जो कुछ किया वह बात अलग है ।

केदार—ओह ! भला इतनी धर्म की बाते कहाँ से सीख आया रे !

तीनकौडी—तुम कुछ भी कह सकते हो, और यह बात भी है कि दुनियाँ मे हम और तुम जैसे भी जिन्दा हैं, पर धर्म खतम हो गया हो ऐसी बात नही है। अभी धर्म है । जब मै अस्पताल मे था तो हर समय मुझे वैकुण्ठ बाबू की बात याद रहती थी, भूल भी कैसे जाऊँ ? अस्पताल में पडा-पडा सोचता था—'अब तीनकौडी तो है नही, केदार के हाथ से उन्हे कौन बचायेगा ? मुझे उस समय बडा दुख होता था ।

केदार—सुन कान खोलकर तीनकौडी, तू अगर मुझे यहाँ फिर जलाने आया तो बस समझ ले—

तीनकौडी—तुम तो बेकार डरते हो भाई साहब ! अब मुझे अस्पताल भेजने की आवश्यकता नही पडेगी । मैं यहाँ दो दिन से अधिक ठहर भी नही सकता, फिर यह स्थान मेरे लिये इतना असह्य है कि…

केदार—तो तू मुझे जलाता क्यो है, अगर जाना हो तो दो दिन बाद ही क्यो, दो दिन पहले ही सही—

तीनकौडी—तुम चार सौ बीस करे जाओ, पर मै यहाँ से तब तक टस-से-मस नही हो सकता जब तक वैकुण्ठ बाबू का पूरा पोथा न सुन लूं ? मैं जानता हूँ कि तुम उन्हे धोका अवश्य दोगे । भाग्य के लिखे को मैट तो कोई नही सकता, लेकिन मुझे उनका पूरा पोथा सुनना ही चाहिये !

केदार—(स्वत) इस नमकहरामी को चाहे मारो चाहे गाली दो, पर यह यहाँ से जाने का नाम नही लेता । (प्रगट मे) अरे मुझसे कुछ पैसे ले जाओ और बाजार मे जाकर खा पी आओ !

तीनकौडी—अरे भाई सा'ब खाने की तो तुम्हे याद ही नही दिलानी चाहिये।

केदार—तो क्या नाम भला उसका—जब भूख लगी है तो तू खायेगा क्यो नही !

तीनकौडी—अरे ये अचानक परिवर्तन कैसे हो गया, जो तुम भी धर्म की

वाते करने लगे। क्या कुछ भला वुरा होने वाला है, तुरत ही।

केदार—चल तुझे वाजार लिये चलता हूँ।

(दोनो का प्रस्थान)

ईशान और बैकुण्ठ का प्रवेश

वैकुण्ठ—मैं तो सोच रहा था, इन पोथी पत्रो को साथ नही ले जाऊँगा, पर नीरू तो सुनकर रोने लगी। सोचा विचारी ने अपने वुढापे के खिलौनो को वावूजी यो किसलिए छोडे जाते है। चल उठा किसी में वाँध ले। अरे जल्दी कर इसना।

ईशान— क्या कहा वावू सा'व ?

वैकुण्ठ—वडो का छोटो पर जितना मोह होता है, क्या कभी छोटो का वड़ो पर उतना मोह हुआ है, या हो सकता है, क्यो रे मैं ठीक कह रहा हूँ न।

ईशान—देख तो यही रहा हू मै।

वैकुण्ठ—जव मैं चला जाऊँ तो अविनाश को कोई खास दुख तो नही होगा रे।

ईशान—मेरे ख्याल से कोई नही, मालूम तो ऐसा ही होता है। हॉ ··

वैकुण्ठ—हॉ, चूँकि उसकी नई गृहस्थी है, फिर नाते रिश्तेदारो की भी कमी नही हैं—क्यो मेरी वात ठीक है न इसना ?

ईशान—हाँ वावू सा'व मैं भी यही वात सोचता हूँ।

वैकुण्ठ—मेरे ख्याल से नीरू के लिये उसके हृदय मे, नीरू को तो वह वहुत प्यार करता है ?

ईशान—पहले तो वह वहुत प्यार करते थे, पर अव·· ?

वैकुण्ठ—तो क्या अवि को सव कुछ मालूम हो गया है ?

ईशान—अगर ये वात न होती तो क्या वुढिया को इतनी हिम्मत हो सकती थी, हो सकता है वह सह दे रहे हो ?

वैकुण्ठ—भाई तेरी वातें वडी रूखी होती है इसना। तू वात क्या करता है लट्ठ मारता है। अरे क्या तू मीठी वात करना भी नही जानता ? छोटेपन से तू हमारे साथ है, तुझे पालपोस कर वडा आदमी वनाया है, एक दिन के लिये

भी तुझे अपने से अलग नही होने दिया। और तू···तू ही है, ऐसी बात करता है कि बस···अरे क्या मेरे जाने पर अविनाश को दुख नही होगा। जा · जा··· जायगा नही क्या यहाँ से मूर्ख कही का ! ले जा अपनी शक्ल यहाँ से, मैं देखना नही चाहता इसे। कहता है उसने जानबूझ कर मेरी नीरू को कष्ट दिया है। ओ पाजी हरामजादे कही के। तेरी बातें सुनकर तो कलेजा मुँह को आता है। चल तू मेरे सामने से, मुँह काला कर—

'सहन करूँ कैसे मे दूसरो की बातें' गाते हुए विपिन का प्रवेश

विपिन—(स्वगत) सोचा था बूढा शायद वापिस बुलाये, पर ये है भी एक नम्बर ! वापिस बुलाने का नाम तक नही लिया। अरे बूढा तो यही हैं (प्रगट में) बैकुण्ठ बाबू मैं अपना सामान लेने आया हूँ। अपनी गुडगुडी और बैग भूल गया था यही। अरे ओ इसना जल्दी से कोई मजूर तो ले आ रे !

बैकुण्ठ—अरे आप जा क्यो रहे हैं, आप यहीं रहे, कहीं न जायें !

विपिन—बैणी नही, विपिन बाबू कहिये ना ?

बैकुण्ठ—जी हाँ विपिन बाबू ! आप नाराज मत हुइये। हम इस कमरे को खाली किये देते हैं, आप ही रहिये यहाँ पर !

विपिन—फिर इन पुस्तको का क्या होगा यहाँ ?

बैकुण्ठ—रुष्ट न हो विपिन बाबू। अभी सब कुछ हटाये लेते हैं।

(बैकुण्ठ बाबू अलमारी से पुस्तकें उतारने लगते हैं।)

ईशान—(स्वगत) भगवन् ! यह वही किताबे हैं, जिन्हे हमारे बाबू प्राणो से भी अधिक प्यार करते थे। बिल्कुल विधवा के बच्चो की तरह इन्हे झाड पोछ कर धूल से बचाया करते थे, पर आज वह स्वय अपने हाथो से धूल मे इनको फेक रहे हैं। हे भगवान !

(आँसू पोछता है)

विपिन—मैं केदार के कमरे मे अपनी जो है सो अफीम की डिबिया भूल आया हूँ, तनिक उसे लेने जा रहा हूँ।

(सहन करूँ कैसे गाते हुए प्रस्थान)

तीनकौड़ी का प्रवेश

तीनकौडी—ओह् धन्य भाग ! आप मिल गये बडे बाबू !! अच्छे तो हैं न।

वैकुण्ठ—अरे वाह भैया तीन कौडी, तुम खूब समय पर मिले। बडे दिनों बाद आज दिखाई दिये, कही चले गये थे क्या ? हो तो मजे मे ?

तीनकौडी—फिकर छोडिये पुरानी बात की। अब बहुत दिन तक देखा करेंगे। आज मैं उस दिन की बात की क्षमा माँगने आया हूँ, अपनी पोथी निकालिये और मुझे खूब सुनाइये जीभर कर !

वैकुण्ठ—अरे भाई तीनकौडी पोथी-ओथी सब मैंने छोड छाड दी। अब तुम को यह बूढा और कभी तग न करेगा तुम आराम से यहाँ रहो।

तीनकौडी—तो क्या अब आप बिल्कुल नही लिखा करेंगे ?

वैकुण्ठ—अरे हाँ भाई यह लिखने विखने का तो मैंने विचार बिल्कुल ही त्याग दिया अब।

तीन कौडी—क्या यह बात बिल्कुल सत्य है ?

वैकुण्ठ—हाँ भाई शौक ही गिर गया।

तीन कौडी—ओ-फ् तब तो मेरी जान बच गई ! अच्छा अब तो मुझे छुट्टी मिल गई न, अब मैं जा सकता हूँ न ?

वकुण्ठ—अच्छा तुम जाओगे कहाँ, तीन कौडी ?

तीन कौडी—दुर्भाग्य जहाँ खदेड कर ले जाय अभागे तीन कौडी को। सोचा था, खदेडने का समय अभी नही आया। आपकी पोथी बहुत सुनती है, सब सुनके ही जाऊँगा। खैर 'आपने अच्छा ही किया मेरे लिये—अच्छा बिदा दीजिये'' प्रणाम !

वैकुण्ठ—जहाँ जाओ सुखी रहो बेटा, भगवान तुम्हारा भला करे !

तीन कौडी—(स्वगत) अन्दर ही अन्दर कुछ गडबड-सी दीख रही है। कुछ समझ मे बात नही आती ! (प्रगट) भाई ईशान आज तुम से बडे दिन बाद, भेंट हुई, पर हमेशा की तरह तुम डडा लेकर मेरे पीछे क्यो नही पड़े ? क्या कोई क्रान्ति हो गयी है ?

अविनाश का प्रवेश

अविनाश—भाई सा'ब । न जाने ऐरे गैरे पचकल्यानी कहाँ से आपने घर मे इकट्ठे कर लिये हैं, मेरी तो नाक मे दम आ गया है । घर मे रहना इन्होंने दूभर कर दिया है।

वैकुण्ठ—अरे अवि क्या कहते हो ? वह क्या मेरे अपने है कुछ, सब के सब तुम्हारे ही तो अपने···

अविनाश—वह मेरे कौन है ? सब के सब केदार के अपने रिश्तेदार या मिलने वाले है, और आपने ही उन सब को घर मे स्थान दिया है । यही कारण है कि मै उनसे कुछ भी नही कह पाता । अगर आप से हो सके तो घर सम्हाले मै तो घर छोड रहा हू। मुझ से तो घर सम्हाले नही सम्हला है। मै तो चला···

वैकुण्ठ—पर घर छोडने की बात तो मै ही सोच रहा हू !

तीन कौडी—इससे तो अच्छा यह है कि वही लोग घर छोड जाय, जिनके कारण आपको घर छोडना पड रहा है ! फिर वह लोग होते ही कौन हैं घर मे रहने वाले ।

अविनाश—पता नही घर मे एक बुढिया कहाँ से आ गई है, उसने सारा घर आस्मान पर उठा रखा है । मेरी तो नाक मे दम कर दिया है । एक भी नौकरानी घर मे नही टिक सकी । मैने सब कुछ सह लिया पर सहने की हद होती है । आज मेरे सामने उस खूसट ने नीरु पर हाथ उठाया है । अभी-अभी मै उसे गगा के पार पहुँचा के आ रहा हू । मुझ से नही देखा गया यह सब !

ईशान—बने रहो छोटे बाबू ! भगवान तुम्हे हजार वर्ष की उमर और दे !

वैकुण्ठ—पर मैने सुना था कि वह बुढिया बहू की कुछ लगती थी । उनको तुमने ··

तीन कौडी—लगती वगती कुछ नही है । बुढिया केदार की बूआ है । उस डायन से तो ब्याह करके केदार के फूफा ही न जी सके, औरो की क्या कही जायं ! जब विधवा होकर माँ के यहाँ गई तो भाई को खा गई । और जब आखिर मै केदार ने देखा कि उसके भी जान के लाले पड गये है तो उस खूसट को उसने तुम्हारे घर मे ठूस दिया !

अविनाश—भाई सा'व । आप अपनी पुस्तकें नीचे क्यो डाल रहे हैं, टेबिल कहाँ गई , जिम पर वह रखी जाती थी ।

ईशान—इस कमरे में जो साहव रहते हैं न, उनको इन कितावो से और वडे वावू से तकलीफ पहुँचती है, सो उन्होने वडे वावू को कमरा खाली करने का नोटिम दे दिया है ।

अविनाश—तो क्या भाई साहव कमरा छोडेगे ?

विपिन का प्रवेश

विपिन—'पराई वातें मै कैसे सहूँ'—

अविनाश—(धक्का देते हुये) वाहर हो, वाहर । अभी चले जाओ यहाँ से अभी । इसी मिनट, इसी सैकिंड चलो···चलो···चलो यहाँ से । निकल जाओ !

वैकुण्ठ—अरे···रे···ओ मूर्ख तू क्या करता है । वैणी वावू से···

विपिन—वैणी वावू नही, विपिन वावू ।

वैकण्ठ—हाँ रे तू विपिन वावू की आवरू ले रहा है । अरे तुझे हो क्या गया ?

तीन कौडी—केदार को इस समय वुलाना ठीक होगा, ताकि अपनी आँखों से सब कुछ देख ले ।

(प्रस्थान)

ईशान विपिन को जवरन बाहर कर देता है

विपिन—ओ रे भाई इसना, कम से कम एक मजदूर तो वुला देता । मेरा हुक्का और कैवनेस का वेग···

(प्रस्थान)

वैकुण्ठ—इतना हराम जादा पन—ओ हरामजादे । पाजी कही के । तू ने एक शरीफ आदमी का · तुझे आज···

ईशान—आपकी इच्छा वडे वावू । आज में वहुत खुश हूँ । चाहे मुझे मारो, चाहे गाली दो, जो कुछ जी में आवे करो । मै वहुत प्रसन्न हूँ ।

केदार के साथ तीनकौड़ी का प्रवेश

केदार—क्या नाम भला उसका, अविनाश वावू मुझे वुलाया था आपने ?

अविनाश—हूँ ! हाँ मैंने आपको बुलाया था। काठी तैयार है आपके लिये, पधारिये तो सही यहाँ !

केदार—अरे भैया तुम्हारा हास्य—क्या नाम भला।उसका—औरो से बडा कडा होता है।

बैकुण्ठ—ओरे···अविनाश ! तुझे आज हो क्या गया है। केदार बाबू आप बुरा न माने आज इसको पता नही क्या हो गया है ! भला कही अपने रिश्ते-दारो के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है रे ! मेरी समझ मे तो कुछ भी आता नही है !

अविनाश—मुझे सबकुछ मालूम है, आज सबको घर से निकालकर दम लूँगा।

तीनकौडी—अरे साहब आप इनको पहचानते ही नही, आप इन्हे सामने के दरवाजे से निकालेंगे तो यह पीछे के दरवाजे से घुस अवश्य आयेंगे, किसी न किसी तरह !

अविनाश—घबराओ मत तुम्हारा नम्बर भी आनेवाला है अब !

तीनकौडी—हा-हा-हा-हा ! सबको एक मार्ग से मत भगाना भूलकर भी। सारे ग्रह यदि फिर इकट्ठे हो गए तो बस बना बनाया काम फिर बिगड गया ही समझो !

केदार—अविनाश बाबू ! क्या नाम भला उसका—तो मेरे लिए कर-कमलो के बजाय चरणतले ही निश्चय हुआ तुम्हारा।

अविनाश—जी हाँ, जो जिस लायक होता है, उसे वही स्थान मिला करता है। कर्म गति—

केदार—अगर यही बात है इसनू तो जाओ एक बढिया सा तांगा ले आओ जिसमे सामान रखा जा सके !

तीनकौडी—मै तो सोच रहा था, 'शायद अबकी बार अकेला ही जाना पडेगा यहाँ से ! आखिर मसल मशहूर है—'जे न मित्र दुख होय दुखारी।' तुम सब ने भी साथ दिया। मै बराबर देखता आ रहा हूँ कि इस तीनकौडिया को सब लोग छोड देते हैं, पर तुम लोग अन्त तक साथ निभाते हो। मैं तो तुमसे

परिचित हूँ इसलिये बेफिक्र रहता हूँ।

केदार—अरे तीनकौडिया ! आखिर तू कहना क्या चाहता है ?

वैकुण्ठ—तो केदार बाबू आप जा रहे हैं, लेकिन इस तरह नही जाने दूंगा ! अरे इसना जा जलपान ला ! विना जलपान कराये थोडे ही जाने दूंगा आपको।

तीनकौडी—हमें कौन जल्दी है, ऐसे ही सही !

वैकुण्ठ—अरे इसना !

राजा रानी

पात्र-परिचय

राजा विक्रम	इसकी रानी सुमित्रा
देवदत्त	राजा का ब्राह्मण
मंत्री	
सेनापति	
राजकुमार सैन	रानी का भाई
शंकर	राजकुमार सैन का कर्मचारी
चन्द्रसैन	राजकुमार सैन का चाचा
रेवती	चन्द्रसैन की पत्नी
अमाला	पहाडी राज्य का एक सरदार
ईला	सरदार की पुत्री

इनके सिवाय सिपाही कर्मचारी आदि

प्रथम दृश्य

(राज्य-महल की वाटिका—राजा विक्रम और उसकी रानी सुमित्रा)

राजा—रानी ! क्या बात हुई ? तुम्हे देर हो गई ।

रानी—मेरे राजा ! क्या तुम यह नही जानते कि मै जहाँ भी हूँ केवल तुम्हारे लिए हूँ । तुम्हारे घर के काम-काज के कारण ही मै रुकी रही, लेकिन तुमसे दूर नही थी ।

राजा—छोडो इस काम-काज को । मेरा हृदय नही चाहता कि ससार का कोई कार्य मुझे तुमसे पृथक रक्खे । तुम केवल मेरे लिए हो ।

रानी—नही राजा ! मै तुम्हारे हृदय मे तुम्हारी प्रिय पत्नी की तरह हूँ । परन्तु तुम्हारे ससार की रानी की तरह हूँ ।

राजा—मेरी प्यारी रानी ! कहाँ गए वे दिन जब हमारी तुम्हारी पहली भेंट हुई थी, और हमारी प्रसन्नताएँ केवल हमारे लिए ही थी । उस समय हमारा ससार हमारे हृदय मे नही जागा था । एक दीर्घ शाति मे हमारा प्रात हुआ था । तुम्हारी आँखो मे विचित्र लज्जा थी । ऐसा ज्ञात होता था मानो ओस की एक बूँद फूल की पत्तियो से लिपटी हुई थी । तुम्हारे होठो पर मुस्कान इस प्रकार खिलती थी मानो एक नन्हा-सा दीपक हलकी फुलकी हवा मे जल रहा हो । तुमने मुझे हृदय से लगा लिया था । जब हम दोनो अलग होने लगे तो तुम्हारे बोझल चरण उठते ही नही थे । तुम जाना ही नही चाहती थी । उस वक्त कहाँ था घर का काम-काज ? कहाँ था ससार का जजाल ?

रानी—राजा ! क्या बातें कर रहे हो ? उस समय हम लडका और लडकी थे और इस समय हम राजा और रानी हैं ।

राजा—राजा और रानी केवल नाम के है । हम इससे कुछ अधिक हैं । हम एक दूसरे से प्रेम करते हैं ।

रानी—तुम मेरे राजा भी हो और पति भी । मुझे तुम्हारे पीछे चलने

से वडी शान्ति मिलती है । तुम पहले राजा हो और फिर कुछ और ।

राजा—क्या तुम्हे मेरे प्यार की आवश्यकता नही ?

रानी—मुझसे प्रेम करो, परन्तु मेरे प्रेम को नष्ट न करो ।

राजा—यदि मै स्त्री के हृदय को समझ सकता ?

रानी—राजा ! अगर तुम सारा प्रेम मुझ पर व्यय कर दोगे तो एक दिन मुझसे हाथ धोना पडेगा ।

राजा—इन व्यर्थ की बातो को छोडो । पक्षियो के नीड प्रेम से शान्त है । होठो को होठो की रक्षा करनी चाहिए । शब्द तो वहुधा व्यर्थ होते हैं ।

एक सेवक का प्रवेश

सेवक—महाराज ! मत्री जी दर्शन के लिए उपस्थित होना चाहते हैं । किसी आवश्यक विषय पर आपकी आज्ञा लेना चाहते हैं ।

राजा—नही इस समय नही ।

(सेवक का प्रस्थान)

रानी—राजा ! उसे भीतर आने दो ।

राजा—राजकाज तो होते ही रहेगे । रसीला समय कभी-कभी आता है वह फूल की पत्ती की तरह कोमल होता है । कर्त्तव्य को अवकाश दे देना भी कर्त्तव्य है ।

रानी—महाराज ! मै प्रार्थना करती हूँ कि आप राज-काज की तरफ अधिक ध्यान दिया करे ।

राजा—तुम वडी कठोर हृदय स्त्री हो । क्या तुम सोचती हो कि मै सर्वथा तथा सर्वदा तुम्हारे कहने मे चलता रहूँगा । लो मै जा रहा हूँ ।

(प्रस्थान)

राजा का पुरोहित देवदत्त आता है ।

रानी—गुरूजी ! यह तो बताइये कि फाटक पर कोलाहल क्यो हो रहा है ?

देवदत्त—वह कोलाहल ! मुझे आज्ञा दीजिए ताकि मै सैनिको को लेकर उस कोलाहल को दूर कर दूँ । पाजी ! भूखे लोग ।

रानी—हास्य न कीजिए । मुझे वताइए कि बात क्या है ?

देवदत्त—कुछ भी नही । केवल भूख है । पाजी लोग भूखे हैं, लोग कोला-

हल कर रहे हैं और तुम्हारी वाटिका के कोमल पक्षियो को भयभीत कर रहे हैं।

रानी—गुरूजी ! मुझे बताओ कि कौन भूखे हैं।

देवदत्त—उन पाजियो की प्रारब्ध ही भ्रष्ट है। राजा की दीन-हीन प्रजा दीर्घकाल से एक जून दो रोटी खाकर जीवित रही है। परन्तु अब उन गधो को भूख सहन ही नही होती है। यह कितने आश्चर्य की बात है ?

रानी—शोक ! राजा की पृथ्वी अन्न से भरी पडी है, परन्तु उसकी प्रजा दाने-दाने को तरस रही है।

देवदत्त—अन्न तो उसका है, जिसकी पृथ्वी है। वह दीनो के लिए नही होता। जब राजा भोजन करता है तब भूखे किसान फाटक के कौने मे खड़े हो जाते हैं। उनको या तो जूठे टुकडे मिल जाते हैं या धक्के।

रानी—इसका अभिप्राय है कि यहाँ का कोई राजा नही है।

देवदत्त—एक नही, सैकडो राजा हैं। राजा का प्रत्येक कर्मचारी राजा बना फिरता है।

रानी—क्या राजा के अधिकारी लोग देखभाल नही करते।

देवदत्त—आपके अधिकारियो पर कोई दोष नही लगाया जा सकता। वह परदेश से खाली हाथ आए थे और अब राजा की प्रजा खाली हाथ है।

रानी—परदेश से ? क्या वह लोग हम लोगो के सम्बन्धी हैं।

देवदत्त—जी हाँ ! सम्बन्धी हैं, मित्र हैं और मित्र के मित्र है।

रानी—जयसेन के सम्बन्ध मे तुम क्या कहते हो ?

देवदत्त—वह सघर प्रान्त पर राज्य करता है। और सब वस्तुएँ समेटकर अपने घर भेज देता है। केवल हड्डियाँ शेप रह जाती हैं।

रानी—और शीलसेन ?

देवदत्त—वह व्यापार का मत्री है। समस्त व्यापारियो का आधा लाभ स्वय समेट लेता है।

रानी—और अजीत ?

देवदत्त—वह विजयकोट का सूबेदार है, और हर समय हँसता रहता है। वह जो कुछ चाहता है, प्राप्त कर लेता है। फिर हँसे क्यो नही।

रानी—कितनी लज्जा की बात है ? मै अपने पिता के राज्य से ये कूडा कर्कट अवश्य बाहर निकालूंगी और अपनी प्रजा को बचाऊँगी। अब तुम जाओ। राजा आ रहा है।

राजा आते हैं।

रानी—मै अपनी प्रजा की माता हूँ। मै उनकी ठडी साँसे नही सुन सकती। राजा ! उन्हे बचाओ।

राजा—तुम क्या चाहती हो ?

रानी—जो अधिकारी लोग प्रजा पर अत्याचार कर रहे है, उन्हे बाहर निकाल दो।

राजा—तुम जानती हो कि वह कौन है ?

रानी—हाँ, मैं जानती हूँ।

राजा—वह तुम्हारे सम्बन्धी के सम्बन्धी है ?

रानी—मेरा कोई सम्बन्धी नही, वे डाकू हैं और मै प्रजा की माता हूँ। वे डाकू लोग तुम्हारे सिंहासन के पीछे खडे होकर अपना आखेट खोजा करते हैं।

राजा—जयसेन शीलसेन और अजीतसेन।

रानी—उन तीनो की सफाई कर दो।

राजा—परन्तु वह बिना युद्ध किए नही भागेगे ?

रानी—तो फिर उनसे सग्राम करो।

राजा—सग्राम ? पहले मै तुम्हे विजय कर लू फिर दूसरो को विजय करने की बारी आएगी।

रानी—राजा ! मै तुम्हारी रानी हूँ। मै तुम्हारी प्रजा को बचाऊँगी।

(रानी का प्रस्थान)

राजा—तुम इसी तरह मुझे निराश कर दिया करती हो। तुम पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर बैठी हो, जहाँ मै पहुँच नही सकता। तुम अपने ईश्वर को ढूँढने निकल जाती हो मै तुम्हारे पीछे-पीछे मारा-मारा फिरा करता हूँ।

देवदत्त का प्रवेश

देवदत्त—महाराज ! महारानी कहाँ है ? आप अकेले क्यो हैं ?

राजा—ब्राह्मण ! यह तुम्हारी ही करतूत है। तुम यहाँ आया करते हो और यहाँ महारानी को राजकाज की सूचना दे जाया करते हो।

देवदत्त—महाराज ! प्रजा चिल्ला रही है और उसके चिल्लाने का उच्च स्वर रानी के कानो में भी घुसता जाता है। वह हाहाकारी स्वर बहुत ऊँचा हो चुका है। वही स्वर आपके विश्राम मे धक्का लगा रहा है। महाराज मुझसे भय करने की आवश्यकता नही है। मै तो रानी जी से वेतन लेने आया था। घर मे अनाज नही है और ब्राह्मणी कोलाहल कर रही है ?

(देवदत्त बाहर जाता है।)

राजा—मैं अपनी प्रजा के लिए प्रसन्नता चाहता हूँ। यह अन्याय और अत्याचार क्यो है ? ये बलवान लोग निर्बलो का रक्त क्यो चूस रहे हैं ?

प्रधान मन्त्री आता है।

राजा—समस्त प्रदेशी डाकुओ को मेरे राज्य की सीमा से बाहर निकाल दो। मै पीडितो के आँसू अधिक समय तक नही देख सकता।

मन्त्री—महाराज ! जो बुराई दीर्घकालीन होने के कारण जड पकड चुकी है, वह एक दिन मे कैसे जा सकती है ?

राजा—जड पर जोर से कुल्हाडी चला दो। सौ साल का पुराना पेड भी एक क्षण मे गिराया जा सकता है।

मन्त्री—उसके लिए हमे अस्त्र-शस्त्र और सैनिको की आवश्यकता है।

राजा—सेनापति कहाँ हैं ?

मन्त्री—वह भी विदेशी हैं।

राजा—तो उस भूखी प्रजा को भीतर बुला लो। मेरा कोप खोल दो। भूखो की ठडी साँसे बन्द होनी चाहिएँ। उनको रुपया दो, उनको अनाज दो और अगर वे राज्य चाहे तो उनको राज्य भी दे दो। परन्तु, उनसे कह दो कि कोलाहल न करे। जो करना हो शान्ति से करे।

(राजा बाहर जाता है)

रानी और देवदत्त आते हैं।

मन्त्री—महारानी ! मै आपके चरण-स्पर्श करता हूँ।

रानी—यह क्या है ? हमारे देश मे कितना अँधेर मचा हुआ है ?

मन्त्री—आपकी क्या आज्ञा है—महारानी?

रानी—समस्त विदेशी अधिकारियो को इकट्ठा करो।

मन्त्री—मैंने सबके पास निमन्त्रण-पत्र भेज दिए है।

रानी—कब दूत भेजे ?

मन्त्री—एक महीना हो गया। मै उनके उत्तरो की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मुझे भय है कि वे उत्तर नही देगे।

रानी—राजा के पत्र का उत्तर नही देगे।

देवदत्त—राजा तो उनके लिए एक समाचार की तरह है, चाहे वे माने या न माने।

रानी—मन्त्री ! तम अपने सैनिक जमा करो मै स्वय उनसे उत्तर लेना चाहूँगी।

(मन्त्री बाहर जाता है।)

देवदत्त—महारानी ! वे आयेगे नही !

रानी—तो फिर राजा उनसे लडेगा।

देवदत्त—राजा नही लडेगा।

रानी—तो फिर मै लडूँगी।

देवदत्त—तुम ?

रानी—मै अपने भाई कश्मीर के राजा कुमारसेन के पास जाऊँगी। और उनकी सहायता से विद्रोहियो का सिर कुचलूँगी। गुरुजी ! तुम मुझे यहा से भागने मे सहायता देना। यह तुम्हारा कर्तव्य है।

देवदत्त—प्रजा की माता ! मै तुम्हारे चरण-स्पर्श करता हूँ।

(देवदत्त जाता है)

राजा आता है।

राजा—रानी तुम क्यो जा रही हो ? मेरी समस्त अभिलाषाएँ प्रकट हो चुकी हैं। क्या इसी कारण तुम्हे मुझपर घृणा हो गई है।

रानी—मुझे लज्जा आती है। मै अकेली तुम्हारे हृदय की स्वामिनी नही

वनना चाहती, तुम्हारे हृदय पर प्रजा का भी अधिकार है ।

राजा—क्यो रानी ! क्या यह वात सत्य है कि तुम बहुत ऊँचाई पर खडी हो और मैं रेत मे भटक रहा हूँ । मै अपनी शक्ति को पहचानता हूँ । परन्तु मैंने अपनी शक्ति को तुम्हारे प्रेम में परिवर्तित कर दिया हे ।

रानी—राजा ! मुझ से घृणा करो ! मुझे भूल जाओ । मैं तुम्हारे विरह के दु ख को भूल जाऊँगी । एक स्त्री के सौंदर्य के सामने अपनी शक्ति नष्ट न करो ।

राजा—इतना प्रेम और इतना त्याग ! तुम्हारे त्याग ने मेरे हृदय पर एक चोट लगाई है । मेरे वक्ष में एक घाव हो गया है और वह घाव विल्कुल नगा है, पर तुम मुझे धूल में फेकना चाहती हो ।

रानी—मै तुम्हारे चरणो में गिरती हूँ । तुम्हारी रानी ने सदा ही त्रुटियाँ की हैं, और आप सदा ही उसे क्षमा करते रहे हैं । जव मेरा कोई दोप नही है तो मुझ पर रुष्ट क्यो हो ?

राजा—उठो, मेरी हृदयेश्वरी । मेरे पास आओ । अपनी सुडौल वाहे मेरे गले में डाल दो । ताकि मेरे जीवन के समस्त मार्ग अन्यो के लिए वन्द हो जाए और ये विश्व केवल तुम्हारा विश्व वनकर रह जाए ।

(वाहर की एक आवाज)

रानी—यह तो देवदत्त है । हाँ गुरुजी ! क्या सूचना है ?

देवदत्त का आगमन

देवदत्त—समस्त विदेशी हाकिमो ने राजाज्ञा को ठुकरा दिया है और वह विद्रोह के लिए तैयार हो रहे हैं ।

रानी—सुन लिया राजन् तुमने ?

राजा—ब्राह्मण ! राजा की वाटिका खुला न्यायालय नही है ।

देवदत्त—महाराज ! हम राजा से खुले न्यायालय मे तो मिल नही सकते क्योकि वह वाटिका नही है ।

रानी—ओ नीच कुत्ते ! जो राजा के टुकडो पर पलकर मोटे हुए हैं वो अपने स्वामी के सामने भौंकने की हिम्मत कर रहे हैं ।

देवदत्त—महाराज ! अब खुले न्यायालय मे तर्क की आवश्यकता नही रही ।

क्या अब भी आपको मार्ग स्पष्ट प्रतीत नही होता ? अपने सिपाही लेकर जाइये और इन नीचो का सिर कुचल दीजिए ।

राजा—पर हमारा सेनापति भी तो विदेशी है ।

रानी—तो आप स्वय चले जाइए ।

राजा—रानी ! मैं एक बात नही समझता । क्या मै तुम्हारे लिए घृणा का पात्र हूँ या एक स्वप्नमात्र अथवा तुम्हारे हृदय मे एक चुभता हुआ काँटा । मै कभी भी यहाँ से एक पग नही हिलूँगा । मै उनसे सन्धि करूँगा । उनका इसमें कोई दोष नही । एक ब्राह्मण और एक महिला ने मिलकर साजिश की, कि साँप को उसके बिल से जगाया जाय । वे लोग जो इतने दुर्बल हैं कि अपनी रक्षा भी नही कर सकते, वे सदैव दूसरो के लिए कष्ट पैदा किया करते है ।

रानी—आह ! यह देश कितना दुर्भाग्यशाली है ? और वह महिला कितनी दुर्भागिनी है जो इस देश की रानी है ।

राजा—कहाँ जा रही हो ?

रानी—मै तुम्हे छोड रही हूँ ।

राजा—मुझे छोड रही हो ?

रानी—हाँ, विद्रोहियो से मैं स्वय लडूँगी ।

राजा—स्त्री ! मुझसे हास्य कर रही हो ।

रानी—मै विदा लेने आई हूँ ।

राजा—तुम मुझे त्यागकर नही जा सकती ?

रानी—मै जानती हूँ कि मै तुम्हे निर्बल बना रही हूँ । इसलिए तुम्हारे पास नही रहना चाहती हूँ ।

राजा—ऐ घमण्डी स्त्री ! जाओ, मै तुमसे वापिस आने के लिए कभी नही कहूँगा । लेकिन याद रखना ! मुझसे सहायता की आशा बिल्कुल नही रखना !

(रानी जाती है ।)

देवदत्त—महाराज ! आपने रानी को अकेले ही जाने दिया ।

राजा—वह नही जाएगी । मुझे पूरा विश्वास है ।

देवदत्त—महाराज ! मेरा विचार है वह जा रही हैं ।

राजा—यह तो त्रिया चरित्र है। वह मुझे केवल धमका रही है। मुझमे जीवन पैदा करना चाहती है और मैं उसके इन उपायो को पसन्द नही करता। मै इसे जता देना चाहता हूँ कि हर बार यह मुझे खिलौना नही बना सकती। इसे पछताना पडेगा। हे मेरे ब्राह्मण मित्र! क्या मैं यह कड़वा पाठ पढ लूँ कि राजा के लिए प्रेम नाम की कोई वस्तु नही होती और स्त्री से पाठ पढ लूँ जिसे मैंने हृदय की रानी बना लिया था। देवदत्त! हम बचपन से इकट्ठे खेले हैं। क्या तुम एक क्षरण के लिए भी भूल सकते हो कि मै राजा हूँ और मेरे वक्ष में भी जनसाधारण की तरह एक हृदय है और उस हृदय मे भी टीस है।

देवदत्त—मेरे मित्र! मेरा हृदय तुम्हारे लिए है। वह तुम्हारा प्रेम भी स्वीकार करता है और क्रोध भी।

राजा—तो फिर तुम मेरे घर में साँप को क्यो बुला रहे हो?

देवदत्त—महाराज! आपके घर मे आग लगी हुई थी। मै तो केवल आपको जगाने के लिए एक समाचार लाया था, इसमे मेरा क्या अपराध है?

राजा—जगाने से क्या लाभ? जब कि सारा ससार स्वप्नवत् है। मुझे अपने लिए एक छोटा-सा स्वप्न चुन लेने देते और उसी स्वप्न में मुझे मर जाने देते। आज से पचास साल बाद कौन स्मरण करेगा कि हम पर क्या बीती थी। जाओ देवदत्त! मुझे अकेला छोड दो। और राजाओ के दुख पर मनन करने दो।

एक परदेशी दरबारी का प्रवेश

दरबारी—महाराज! हमारा न्याय कीजिए। हमने क्या बिगाडा था? हम तो रानी के साथ इस देश में आए थे।

राजा—कैसा न्याय?

दरबारी—हम पर झूठे आरोप लगाये जारहे हैं, हमारा अपराध तो केवल यह है कि हम अपराधी हैं।

राजा—कौन जानता है कि वह अपराध झूठे है या सच्चे? लेकिन मुझे जब तक तुम पर भरोसा है, क्या तुम चुपचाप नही रह सकते। क्या राजा ने कभी तुम पर सन्देह किया? सन्देह तो दुर्बल मनुष्यो के हृदय में पैदा हुआ

करता है, और विद्रोहियो से तो मै किंचित भी नही डरा करता। विद्रोहियो को मैं पैरो तले कुचल दिया करता हूँ, पर मै गन्दी बात या ओछी बात अपने दिमाग से सोच ही नही सकता, तुम इस समय जा सकते हो।

(दरबारी जाता है)

मंत्री और देवदत्त आते हैं

मंत्री—महाराज रानी ने महल त्याग दिया है, वह घोडे पर सवार हो कर जा रही है।

राजा—क्या कहा ? महल छोडकर चली गई।

मत्री—हाँ महाराज !

राजा—तुमने रोका क्यो नही ?

मत्री—वह चुपचाप निकल गई।

राजा—तुम्हे फिर पता कैसे चला ?

मत्री—मुझे पुजारी ने बताया, जब वह राजप्रसाद के मदिर के सामने से निकली !

राजा—बुलाओ पुजारी को ?

मत्री—महाराज रानी अभी बहुत दूर नही गई होगी, वह अभी-अभी प्रसाद से निकली हैं। आप अब भी उन्हे वापिस ला सकते हैं।

राजा—रानी को वापिस लाना आवश्यक नही है, बडी बात तो यह है कि वह मुझे छोडकर चली गई है। राजा के सिपाही, राजप्रसाद, वदीघर लोहे की शृखलाएँ कोई भी तो उसे रोक सके बाँध कर।

मंत्री—कलक का टीका माथे पर लग जायेगा, चारो ओर से आक्षेप लगाये जायेंगे।

राजा—आक्षेप लगाने वालो की जिह्वा अपने विष मे ही जल जायगी।

देवदत्त—जब सूर्य को ग्रहण लगता है तो आदमी मध्यान के समय टूटे हुए शीशे पर कालिख लगाकर सूर्य को देखते है। ऐ महारानी ! तुम्हारे नाम पर धब्बा तो आयेगा और बहुत से मुख तुम्हारे विरुद्ध बाते करेंगे, पर तुम सूर्य की तरह ही चमकती रहोगी।

राजा—पुजारी को मेरे पास लाओ (मन्त्री बाहर जाता है) मैं अब भी उसके पीछे जाकर उसे वापिस ला सकता हूँ, क्या सदैव मेरा कार्य यही रहेगा कि वह मुझ से दूर-दूर भागती रहे और मैं उसके भागते हुये हृदय के पीछे भागता रहूँ। ए स्त्री! जाओ, दिन-रात भागती रहो बिना घर के, बिना प्रेम के, बिना शांति के तुम जहाँ जाना चाहती हो जाओ! मैं बहुत सुन चुका। मैं अब और अधिक नही सुनना चाहता (पुजारी बाहर जाना चाहता है) इधर आओ। मुझे यह बताओ कि जब वह मंदिर के सामने से निकली तो क्या वह प्रार्थना करने कुछ देर रुकी थी? क्या उसके नेत्रो मे आँसू थे?

पुजारी—महाराज! केवल एक पल के लिये महारानी ने अपना घोडा रोक कर मन्दिर की ओर देखा था। देखने के साथ ही उन्होने सिर झुका लिया और फिर तुरत घोडे में ऐड लगा दी जिससे घोडा हवा से बातें करने लगा। मन्दिर में प्रकाश कम था, इसलिये नही कह सकता कि उनकी आँखो मे आँसू थे या नही।

राजा—उसकी आँखो में आँसू? तुम इसके बारे में सोच भी नही सकते पुजारी! तुम जाओ (पुजारी बाहर जाता है) हे ईश्वर! तू जानता है कि बस मेरी एक ही त्रुटि है और वह है कि मैं इस स्त्री से प्रेम करता हूँ। मैं इसके प्रेम के लिए अपना राज्य, अपनी सारी दुनियाँ निछावर कर देने को तैयार था, पर इस स्त्री ने मुझसे छल किया।

मन्त्री आता है।

मन्त्री—महाराज मैंने घुडसवार रानी के पीछे दौडा दिये हैं।

राजा—उन्हे वापिस बुलाओ, एक स्वप्न था जो टूट चुका है। तुम्हारे घुडसवार स्वप्न को कैसे पकड सकेंगे। तुम मेरी फौज तैयार करो मैं स्वय युद्ध के लिए जाना चाहता हूँ। अब मै स्वय विद्रोहियो का सिर कुचलूँगा।

मन्त्री—जो आज्ञा महाराज! (मन्त्री जाता है)।

राजा—देवदत्त तुम उदास हो गये। एक चोर मेरे घर में घुसा था सो वह लूट का माल छोडकर भाग गया। अब तो मुझे स्वतन्त्रता है, मैं बहुत प्रसन्न हूँ। लेकिन मित्र! मुझे अपने शब्द भी धोखा दिखाई दे रहे हैं। एक तीर सा

मेरे हृदय में उतरा जा रहा है ।

देवदत्त—महाराज अब आपके पास प्रेम और टीस के लिए कोई अवसर न रहा, अब आप राजा हैं, और राजा बनकर लोगो को दिखाना होगा ।

राजा—मित्र अभी मेरा हृदय पूरी तरह स्वतन्त्र नही हुआ, अब मुझे विश्वास है कि वह लौट आयेगा, जब उसे प्रतीत होगा कि विश्व इससे प्रेम नही करता और स्त्री का विश्व केवल एक पुरुष का हृदय होता है तो वह अवश्य लौट आयेगी । वह एक साधारण से मार्ग पर चली गई है, वह साधारण मार्ग बड़े मार्ग से अवश्य आकर मिलेगा । जब भी उसका गर्व दूर हो जायेगा वह अवश्य मेरे पास आयेगी ।

एक कर्मचारी आता है ।

कर्मचारी—महारानी का एक पत्र । (पत्र देता है और बाहर चला जाता है) ।

राजा—ओह ! पछताना तो उसे आरम्भ से ही हो गया था (पत्र पढता है) केवल दो शब्द । मैं अपने भाई के पास काश्मीर जा रही हूँ और उसकी सहायता से विद्रोहियो को दबाऊँगी । आह ! मेरी इतनी तौहीन ! काश्मीर से सहायता ।

दूसरा दृश्य

(काश्मीर मे एक कैम्प । राजा और उसका सेनापति बाते कर रहे हैं)

सेनापति—महाराज यदि आज्ञा हो तो मैं आपके लाभ की एक बात कहूँ । हमारे देश मे विद्रोह तो समाप्त हो गया, समस्त विद्रोही आपके समक्ष घुटने टेक चुके हैं, आप काश्मीर में बैठे अपनी शक्ति क्यो घटा रहे हैं। इस समय राजधानी में आपका रहना अत्यन्त आवश्यक है ।

राजा—अभी युद्ध समाप्त नही हुआ !

सेनापति—पर रानी के भाई कुमारसेन को तो दड मिल चुका । उसकी सेना परास्त हो गई, वह अपनी जान लिये भागा फिरता है । उसका चाचा चन्द्र-सेन राजा गद्दी पर बैठने के लिए बड़ा बेचैन है । उसे गद्दी पर बिठा दीजिये इस अभागे देश को छोड दीजिए ।

राजा—मैं यहाँ दड देने के लिए नही ठहरा हुआ बल्कि एक युद्ध के लिये ठहरा हूँ। जिस प्रकार एक चित्रकार के लिए चित्र उसी प्रकार मेरे लिये युद्ध आवश्यक है। मैं नित्य एक चित्र मे रग भरना चाहता हूँ। ज्यो-ज्यो इस चित्र मे रगो का उभार होता जाता है, त्यो-त्यो मेरा युद्ध समाप्त होता जाता है। और जब वह चित्र समाप्त होगा तो फिर खेद के साथ इस देश से मुझे लौटना पडेगा।

सेनापति—महाराज! पर यह कब तक? अभी आपको बहुत से कार्य करने शेष हैं। मन्त्री समाचार भेज रहा है। वह बार-बार एक ही बात कह रहा है कि ये युद्ध हमारे देश को नष्ट कर रहा है!

राजा—मैं केवल अपने हाथ की वर्तमान वस्तु को देखता हूँ। तलवारो की जीत! यह युद्ध और तुम्हारी शानदान वर्दी! तुम अपना कर्तव्य निभाओ। तुम्हारी सम्मति तो तलवार की नोक के साथ होनी चाहिए।

सेनापति बाहर चला जाता है

यही मुक्ति का मार्ग है। बन्दी स्वतन्त्र हो गया, उसके बधन टूट गये। बदला प्रेम से बढी शक्ति है! बदला स्वतन्त्रता है, एक ऐसी स्वतन्त्रता जो प्रेम की मिठास से कोसो दूर होती है।

सेनापति आता है

सेनापति—महाराज एक गाडी आई हुई प्रतीत होती है। सम्भवत सधि के लिए दूत आया है, उसके सिपाही नही है!

राजा—सधि युद्ध के बाद होतीहै, इसके लिये अभी समय नही है।

सेनापति—हमें दूत की बात तो सुन लेनी चाहिए, पश्चात्·

राजा—इसके पश्चात् युद्ध पूर्ववत् जारी रखना चाहिये।

एक सिपाही आता है

सिपाही—महाराज रानी आपसे मिलना चाहती हैं।

राजा—क्या कहा?

सिपाही—रानी मिलना चाहती हैं।

राजा—कौन सी रानी?

सिपाही—हमारी रानी सुमित्रा !

राजा—सेनापति, तुम जाकर पता लगाओ तो भला कौन है ?

सेनापति और सिपाही जाते है

राजा—जब से मैंने काश्मीर मे युद्ध आरम्भ किया है, रानी तीसरी बार मेरे पास आई है, परन्तु यह स्वप्न नही है, यह तो युद्ध है। अचानक परेशान होना और अपने आपको वाटिका मे पाना। वह फूल ! वह रानी ! इन वस्तुओ का यहाँ क्या आदर है ? यहा तो मुझ पर किसी का वस नही है। वह मुझे बन्दी बनाने आई है, पर उसकी यह भूल है। वह मुझे युद्ध-भूमि से विजय करके नही ले जा सकती। वह बिजली की कडक को अपने वस मे नही कर सकती !

सेनापति आता है

सेनापति—महाराज, हमारी रानी आपसे मिलना चाहती हैं, मुझे बडा दुख हुआ कि मैं स्वतन्त्रता पूर्वक उन्हे आपके समक्ष नही ला सका।

राजा—स्त्री से मिलने के लिए यह स्थान उपयुक्त नही है।

सेनापति—लेकिन महाराज !

राजा—कुछ नही, मेरे सिपाहियो को आदेश दो कि वह मेरे कैम्प के सामने पहरा लगाये। दुश्मन मेरे कैम्प मे आ सकता है, परन्तु एक स्त्री नही।

सेनापति बाहर जाता है

शकर—महाराज मैं शकर हूँ। राजकुमार सैन का नौकर। आपने मुझे बन्दी बना लिया है।

राजा—हाँ, यह मै जानता हूँ।

शकर—आपकी रानी आपकी प्रतीक्षा मे बाहर खडी हैं।

राजा—उसे मेरे कैम्प से बहुत दूर जाकर प्रतीक्षा करनी चहिये !

शकर—महाराज, मै आपसे कहने आया था कि रानी आपसे क्षमा माँगने आई हैं, और वह चाहती हैं कि आप अपने हाथ से उन्हे दण्ड दे। वह यह भी मानती हैं कि सारा अपराध उन्ही का है इसीलिये वह आपसे प्रार्थना करती हैं कि आप ईश्वर के लिये उनके भाई के देश को छोड दे और उनके भाई के अपराध को क्षमा करे।

राजा—बूढे मनुष्य ! तुझे यह तो ज्ञात होना चाहिये कि यह युद्ध है, और यह युद्ध उसके भाई से हो रहा है, उस स्त्री से नही । मेरे पास समय कहाँ कि मैं उस स्त्री की नेकी और बदी पर सोचू । तुम तो पुरुष हो, क्या तुम नही जानते कि जब युद्ध आरम्भ हो जाता है तो अन्त तक लडना पडता है ।

शकर—महाराज ! आप यह भी जानते हैं कि आप एक स्त्री के विरुद्ध युद्ध कर रहे हैं । और वह आपकी रानी है और हमारा राजा भी उसी स्त्री की सहायता के लिए लड रहा है, और वह भी इसलिये कि वह इस स्त्री का भाई है ! महाराज क्या यह बात राजाओं के लिए शोभा देती है कि घर के झगड़े को इतना खीचा जाय कि बहुत से देश उसकी लपेट में आ जायें ।

राजा—बूढे ! तुम सीमा से बहुत आगे बढ रहे हो, जाओ रानी से जाकर कह दो कि जब तक उसका भाई कुमारसेन हार नही मानता, तब तक उसकी क्षमा के लिये यहाँ कोई बात नही उठा सकता ।

शकर—महाराज वह तो इतना ही असम्भव है जितना कि सूर्य के लिये पृथ्वी पर उतरना । हमारा राजा जब तक जीवित है हथियार नही डाल सकता ।

राजा—तो फिर युद्ध जारा रहेगा । क्या तुम नही जानते कि एक समय ऐसा भी होता है जब बहादुरी बहादुरी नही होती, वरन् गर्व हो जाता है । तुम्हारा राजा बचकर नही जा सकता, मैंने उसे चारो ओर से घेर लिया है ।

शकर—हाँ, वह इस बात को जानता है और वह यह भी जानता है कि अभी एक बहुत बडी दरार शेष है ।

राजा—इसका अर्थ ?

शकर—मेरी बात का अर्थ···मृत्यु । मृत्यु का दरवाजा विजय का दरवाजा होता है, जिससे मनुष्य बचकर निकल जाया करता है ।

(वह बाहर जाता है)

एक अन्य कर्मचारी आता है ।

कर्मचारी—महाराज ! राजा का चाचा चन्द्रसेन और उसकी चाची रेवती आपसे मिलना चाहते हैं ।

राजा—उन्हे भीतर ले आओ ।

(कर्मचारी बाहर जाता है)

चन्द्रसेन और रेवती प्रवेश करते हैं ।

राजा—मैं प्रणाम करता हूँ महाराज !

चन्द्रसेन—दीर्घायु हो राजन् !

रेवती—ईश्वर के लिये आपकी विजय हो ।

चन्द्रसेन—उसके लिये क्या दड स्वीकार किया आपने ?

राजा—यदि वह शस्त्र डाल दे तो मैं उसे क्षमा कर दूँगा ।

रेवती—जी हाँ, यह बहुत होगा ? और अन्त मे तो क्षमा करना ही है। समझ मे नही आता जब ऐसी बात है तो फिर युद्ध की तैयारियाँ क्यो हैं ? राजा शरारती बच्चो की तरह तो हुआ नही करते और न युद्ध बच्चो का खेल है ।

राजा—मेरा लक्ष्य डाका डालना नही, अपितु अपनी बात मनवाना था, वह शीश जिस पर मुकुट हो अपनी तौहीन स्वीकार नही कर सकता !

चन्द्रसेन—मेरे बेटे, उसे क्षमा कर दो, क्योकि वह अभी बच्चा ही है, तुम उससे मुकुट और राज्य ले सकते हो । उसे देशनिकाला दे सकते हो, पर उसको मृत्युदड कभी मत देना ।

राजा—मैं उसके प्राण कभी और किसी भी दशा मे नही लूंगा ।

रेवती—तो, फिर ये फौजे किसलिये पडाव डाले पडी है। तुम सिपाहियो का रक्त बहा रहे हो, जो निर्दोष हैं, और उसे क्षमा कर रहे हो जो वास्तविक अपराधी है ।

राजा—मैं तुम्हारी बात समझा नही ?

चन्द्रसेन—कुछ नही, वह कुमारसेन से तनिक रुष्ट हो गई है क्योकि उसने हमारे देश को सकट मे डाल दिया है, और आपको भी सताया है जब कि आप हमारे सम्बन्धी हैं ।

राजा—जब वह बन्दी होगा, तो उसके साथ पूरा-पूरा न्याय किया जायगा।

रेवती—मैं इसलिये आपके पास आई हूँ कि आपको बतला दूँ उसे हमने नही छुपाया है, जनता ने उसे छुपा रखा है, उनके खेत जला डालो, गाँवो को

भस्म कर दो, उन्हे भूखा मार डालो, फिर वह उसे ले आयेंगे।

चन्द्रसेन—तनिक सतोष करो महाराज! आप राज प्रासाद मे पधारिये आपके स्वागत के लिये सारा काश्मीर बेचैन है।

राजा—आप चलें, मै आ जाऊँगा।

(वह बाहर चले जाते हैं)

ओह! यह नरक की आग। इस स्त्री का हृदय लालच और घृणा से भरा था। क्या इसके चेहरे में अपना ही प्रतिबिम्ब तो दिखाई नहीं दिया। क्या मेरी अपनी ही आग तो इसके नेत्रो मे नही जल रही थी? क्या मेरे होठ कातिल की तलवार की तरह बल तो नही खा रहे। नही! मेरी इच्छा तो युद्ध है? मैं न अत्याचार करना चाहता हूँ न मेरे मन मे घृणा है। युद्ध की आग प्रेम की आग की तरह होती है, इसे दबाया नही जा सकता। इसे जो भी छुएगा भस्म हो जायेगा।

कर्मचारी आता है।

कर्मचारी—महाराज, ब्राह्मण देवदत्त आपसे मिलना चाहते हैं?

राजा—देवदत्त आ गया? उसे अन्दर बुलाओ। नही, नही, ठहरो। मुझे तनिक सोचने दो! मै उसे जानता हूँ, वह मुझे युद्ध के मैदान से वापिस लेने आया होगा। ब्राह्मण! तुमने नदी के कगारो के नीचे विस्फोट की सुरग उस समय लगाई जब कि पानी छलक गया। तुम यह चाहते हो कि नदी का पानी तुम्हारे खेतो को हराभरा बनाये! क्या यह बाढ तुम्हारे मकानो और तुम्हारे राज्यको बर-बाद नही करेगी? डर और घृणा अन्धी होती है। इसकी आयु तो कम होती है, पर वह बहुत शीघ्र ही मस्त हाथी की तरह नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। जब मेरी शक्ति समाप्त हो जायगी तब मुझे किसकी सम्मति की आवश्यकता होगी!

मैं ब्राह्मण से नही मिलूगा।

(कर्मचारी बाहर जाता है)

चोर पहाड़ियो का सरदार भीतर आता है।

अमारो—महाराज मैं आपकी आज्ञा के अनुसार यहाँ पहुँच गया हूँ! मै आपको अपना राजा स्वीकार करता हूँ।

राजा—तुम यहाँ के सरदार हो ?

अमारो—हाँ महाराज ! मै त्रिचूर का सरदार हूँ, आप हमारे राजा है, और मैं आपका दास ! मेरी एक बेटी है उसका नाम ईला है। वह युवती और रूपवती है, वह आपके राजप्रसाद के योग्य है। बाहर प्रतीक्षा कर रही है, मुझे आज्ञा दीजिये ताकि उसे आपके पास भेज दूँ।

(वह बाहर निकल जाता है)

ईला एक कर्मचारी के साथ भीतर आती है।

राजा—वह सूर्य की किरण की तरह प्रवेश हो रही हैं, इससे पहले तो यहाँ अँधेरा सा प्रतीत होता था, वह युवती भी है और सुन्दर भी ! इधर आओ। ए सुन्दरी। तुमने युद्ध के मैदान को किसी और मैदान मे बदल दिया है। युद्ध देवता के हृदय मे छेद करने के लिये आखिर काश्मीर ने एक श्रेष्ठतीर चला ही दिया। मुझे कुछ ऐसा लगता है कि मै जगल में फिर रहा था, और तुम्हे ढूढ रहा था। पर तुम पृथ्वी पर दृष्टि गढा कर चुपचाप क्यो खडी हो, तुम्हारी टाँगे भी काँप रही है।

ईला—राजा ! मैंने सुना है कि आप वहुत बड़े राजा हैं ! मुझे प्रार्थना कर लेने दीजिये !

राजा—ऐ कोमल लडकी ! उठो यह पृथ्वी इस योग्य नही है कि तुम्हारे चरण छू सके। तुमने पृथ्वी पर क्यो घुटने टेक दिये, मेरे पास कुछ भी नही है, जिसे मै तुमको दे सकूँ।

ईला—मेरे पिता ने मुझे आपको दे दिया है, मै स्वय को आपके हाथो से वापिस नही लेना चाहती हूँ। आप बहुत बडे राजा हैं, वहुत से देश आपके अधीन हैं आप मुझे इसी मिट्टी में छोड कर जा सकते हैं आपको मेरी आवश्यकता भी क्या हो सकती है ?

राजा—तो क्या मुझे किसी चीज की आवश्यकता ही नही ? मै अपना हृदय तुम्हे किस प्रकार दिखाऊँ कि इसका अतुल कोप कहाँ है ? कहाँ है इसका राज्य ? काश मेरे पास राज्य न होता, केवल तुम होती · · ·

ईला—तो पहले मेरी जान ले लीजिये, जैसा कि आप जगल की हर वस्तु

के साथ करते हैं और उसका हृदय तीरो से छेद देते हैं।

राजा—पर ऐसा क्यो ? तुम्हे मुझ से घृणा क्यो है ? क्या मैं तुम्हारे योग्य बिल्कुल नही हूँ। मैंने अपने बाहुबल से कितने ही राजाओ को नीचा दिखाया है, क्या तुम अपना हृदय मुझे नही सौप सकती।

ईला—परन्तु मेरा हृदय मेरा अपना नही है। कई महीने व्यतीत हो चुके मैं इसे एक अन्य व्यक्ति को दे चुकी हूँ। वह मुझे वचन देगया और चला गया कि पुराने जगल के पेडो की परछाई के नीचे वह अवश्य आयेगा। दिन व्यतीत हो गये, पर मैं इस जगल में उसकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। मैं अब भी उसी की प्रतीक्षा मे हूँ। यदि वह आ गया और उसने मुझे वहाँ न पाया तो फिर क्या होगा ? यदि वह सदैव के लिये चला गया तो जगल की परछाइयाँ अधूरी रह जायँगी। राजा ! मुझे स्वीकार न करो। मुझे उसके हाथो से न छीनो। मुझे कोई छोड गया है, और फिर पाने के लिये आने वाला है !

राजा—कितना भाग्यशाली है वह व्यक्ति ! ए लडकी मैं तुम्हे यह बताता हू कि देवता हमारे प्रेम से जला करते हैं। मैं तुम्हे एक भेद बतलाता हूँ। एक समय था जब मैं सारी दुनियाँ से घृणा करता था, पर तब भी मैं प्रेम से प्रेम करता था। मैं अपने स्वप्न से जागा तो देखा कि दुनियाँ तो वहाँ की वही है, पर मेरा प्रेम एक बुलबुले की तरह फट गया। भला वह कौन है जिसकी तुम प्रतीक्षा कर रही हो ?

ईला—वह काश्मीर का राजा है, उसका नाम कुमारसैन है।

राजा—कुमारसैन ?

ईला—आप उसे जानते हैं, प्रत्येक मनुष्य उसे जानता है। काश्मीर के प्राण हैं कुमारसैन !

राजा—कुमारसैन ? काश्मीर का राजा ?

ईला—हाँ वह तो आपका मित्र होगा ?

राजा—लडकी ! क्या तुम्हे नही मालूम कि उसका सूर्य अस्त होगया है। उसकी आशा पर जीवित न रहो। वह एक घायल जानवर की तरह अपने प्राण बचाने भागा फिर रहा है। इन पहाडियो मे एक गया गुजरा भिखारी भी उससे

अच्छी दशा मे होगा ।

ईला—महाराज मैं कुछ भी तो नही समझी ?

राजा—तुम नारियाँ तो केवल अपने प्रेम की बडाई मे ही प्रसन्न रहती हो, तुम नही जानती कि दुनियाँ मे कौनसा तूफान चल रहा है। तुम तो केवल यह जानती हो कि आँखो मे आँसू भरकर आशाओ पर जीवित रहा जाय। ऐ सुन्दर लडकी । इस दुनियाँ मे कुछ निराश होना भी सीखो ?

ईला—मुझे सच बात बतलाइये, मुझे धोखा न दीजिये, मै एक साधारण नारी हूँ। पर मैं हूँ उसी की, मेरा प्रेम उन्हे जगलो में ढूँढ रहा है, और यदि वह सच्चा है तो ढूँढ भी अवश्य निकालेगा। मै अपने घर से बाहर नही निकली, पर मै उन्हे ढूँढ अवश्य लाऊँगी, आप मुझे मार्ग बतला दे।

राजा—उसके दुश्मन के सिपाही उसका पीछा कर रहे है, उसकी मृत्यु सिर पर मडरा रही है।

ईला—आप उनके कैसे मित्र हैं, क्या आप उन्हे बचायेगे नही ? एक राजा दुख और सकट मे हो और दूसरा बैठा देखता रहे, क्या राजा होकर अपने मित्र की सहायता करना आपका कर्तव्य नही है ? मैं यह जानती हूँ कि सारी दुनियाँ उसे प्रेम करती है, पर इस सकट के समय सारी दुनियाँ कहाँ चली गई महाराज ?

महाराज । आप बहुत बडे हैं, पर आपके बल का लाभ क्या ? यदि आप दूसरे बडे आदमी को नहीं बचा सकते। क्या आप अलग रहेगे ? फिर मुझे मार्ग दर्शाइये, मै अपना जीवन बलिदान करूँगी। एक अबला का जीवन।

राजा—प्रेम किये जाओ लडकी, प्रेम किये जाओ, वह तुम्हारे अमूल्य हृदय का राजा है। मै अपना प्रेम खो बैठा हूँ, पर मै स्वय को प्रसन्न करने के लिये तुम्हे प्रसन्न करूँगा। मै तुम्हे प्रेम की स्वार्थी दृष्टि से नही देखता। फिर यदि सूखी टहनी पर कोई हरा फूल लटका दिया जाय तो भी वह टहनी हरी नही हो सकती। मुझ पर विश्वास करो मै तुम्हारा मित्र हूँ । मै उसे तुम्हारे पास लाऊँगा।

ईला—महाराज मेरा जीवन आपके लिये है, आपने मेरी बडी सहायता की।

राजा—जाओ लडकी ब्याह के कपडे पहिनो, मैं अपने गीत की गति बदलने वाला हूँ।

(ईला बाहर चली जाती है)

यह युद्ध भी कितना घृणित है। शाति से भी बुरा है। ऐ भगोडे! तुम मुझसे अधिक भाग्यशाली हो! तुम जगलो मे मारे-मारे फिर रहे हो, पर एक स्त्री का प्रेम तुम्हारा पीछा कर रहा है! तुम्हारी पराजय विजय मे बदल रही है! तुम्हारा सूर्य डूबा नही था, वरन् बादलो मे छुप गया था!

देवदत्त आता है।

देवदत्त—महाराज मुझे बचाइये! वह लोग मेरा पीछा कर रहे है?

राजा—कौन हैं, वह लोग?

देवदत्त—महाराज आपके सिपाही हैं वह! आधे घण्टे से मुझे घेरे हुये हैं। मैंने इन्हे कविता सुनाई। वह समझते थे कि मै मूर्ख हूँ। फिर मैंने कालीदास सुनाना आरम्भ किया, पर वह लोग सोगये। मैं कैम्प छोडकर आपके पास आ गया।

राजा—उन सिपाहियो को दड दिया जायगा, गधे कही के। जब वन्दी कालीदास सुना रहा है तो वह क्यो सो जाते है?

देवदत्त—दड के बारे मे तो फिर भी सोचा जा सकता है, पहले तो हमे यह निश्चित करना है कि इस युद्ध को वन्द करके हमे घर चल देना चाहिये—मैं अब तक यह सोचा करता था कि केवल वही लोग विरह मे कष्ट पाते हैं, जिनके पास धन होता है, और जो ऐश्वर्य के साथ रहते हैं। पर जब से मैं यहाँ आया हूँ, तब से जानने लगा हूँ कि एक गरीव ब्राह्मण भी प्रेम का शिकार बन सकता है।

राजा—प्रेम और मृत्यु! अपने शिकार ढूँढने मे चुनाव नही किया करते। इस मामले मे वह तुरत दाव लेते हैं। हाँ मित्र! हमे अब वापिस ही चलना है, पर जाने से पूर्व एक कार्य करना होगा कि त्रिचूर के सरदार से ज्ञात करो कि कुमारसैन कहाँ छुपा है, यदि तुम्हे वह मिल जाय तो उससे कह दो अब हम शत्रु नही हैं, और यदि तुम्हे वहाँ कोई और मिले, एक लडकी—!

देवदत्त—हाँ हाँ मै जानता हूँ, वह आपके विचारो में वसी हुई है, पर हमारे शब्द भी उसे छू नही सकते !

राजा—मित्र तुम वसत के पहले झोंके की तरह मेरे पास आये हो। अब फूल ही फूल होगे चारो ओर बीते दिनो की वहार की तरह !

(देवदत्त बाहर जाता है।)

चन्द्रसैन आता है।

राजा—मै तुमको एक समाचार सुनाता हूँ, मैने कुमारसैन को क्षमा कर दिया है।

चन्द्रसैन—आपने क्षमा कर दिया होगा, पर इस समय मै काश्मीर का राजा हूँ। अब न्याय मुझे करना होगा। अब मेरे हाथो से उसे दड मिलेगा ?

राजा—भला क्या दड देगे उसे ?

चन्द्रसैन—उसका राज्य छीन लिया जायेगा !

राजा—असम्भव ! मै उसका राज्य नही छीन सकता !

चन्द्रसैन—काश्मीर की गद्दी पर प्रापको क्या हक है ?

राजा—एक विजय का अधिकार ! वह गद्दी मेरी है और मै उसी को सोपता हूँ।

चन्द्रसैन—आप राज्य उसे सौपते हैं, क्या मै कुमार सैन को बचपन से नही जानता ? क्या आप समझते है कि वह अपने बाप की राजगद्दी को आपसे पुरस्कार की तरह ले लेगा ? वह पुरुस्कार ले सकता है, पर आपके हाथो भीख नही।

एक दूत आता है।

दूत—महाराज ! यह समाचार आया है कि कुमारसैन एक वन्द गाडी मे आपके पास हथियार डालने आ रहे है।

(दूत चला जाता है।)

चन्द्रसैन—यह वात कभी नही मानी जासकती कि शेर अपनी लोह-शृख-लाओ को माँगने आ रहा है ? क्या जीवन इतना प्यारा है ?

राजा—पर वह बन्द गाडी मे क्यो आ रहा है ?

चन्द्रसैन —वह लोगो को अपना मुँह नही दिखाना चाहता। देखने वालो

की हस्ती उसके हृदय मे तीर की तरह लगेगी। महाराज जब वह आये तो दीपक बुझा दीजियेगा। इस प्रकाश मे उसे दुख होगा।

देवदत्त आता है।

देवदत्त—कुमारसैन अपनी इक्षा से आ रहा है।

राजा—मै उसका राजसी स्वागत करूँगा। समस्त सिपाहियो से कह दो कि वह विवाह के उत्सव की तैयारियाँ करे।

बूढे ब्राह्मण आते है।

सब के सब—महाराज की जय!

पहला ब्राह्मण—महाराज हमने सुना है कि आप हमारे राजा को राज्य वापिस कर देगे, इसलिये हम आपको आशीरवाद देने आये हैं। आपने काश्मीर को सकट से बचा लिया है।

(वह आशीरवाद देते हैं, राजा सिर झुकाए खडा रहता है, ब्राह्मण बाहर चले जाते हैं, शकर आता है।)

शकर—(चन्द्रसैन से) महाराज क्या यह सच है कि कुमारसैन हथियार डालने आ रहा है?

चन्द्रसैन—हा यह सच है।

शकर—यह बात बिलकुल झूठ है, ऐ मेरे राजा! मै तुम्हारा पुराना सेवक हूँ, मैने बडे कष्ट उठाये हैं, पर कभी मुह नही खोला। पर ये मै कैसे सहन कर सकता हूँ कि आप काश्मीर की सडको पर चलकर बदीघर के सीखचो मे बन्द होने आ रहे हैं।

सिपाही आता है।

सिपाही—महाराज बन्द गाडी आ पहुँची है।

राजा—क्या यहाँ पर कोई वाद्य नही है? आज्ञा दो कि विवाह के बाजे बजे? (दरवाजे के पास पहुँचकर) मेरे मित्र मै तुम्हारा स्वागत करता हूँ!

रानी सुमित्रा आती है, उसके हाथो में रूमाल से ढकी एक थाली है।

राजा—सुमित्रा! मेरी रानी!

रानी—महाराज तुम दिन-रात जिसे पहाडियो मे ढूढते रहे, तुमने खेतो और

गाँवो मे जिसके लिये हल चलवा दिये, आज उसने अपने हाथो अपना सर आपके पास भेजा है। इस सर पर आज मृत्यु मडरा रही है, जो मुकुट से अधिक मूल्यवान है। यह लीजिए काश्मीर के युवराज का सिर।

राजा—मेरी रानी !

रानी—अब मै आपकी रानी नही रही, क्योकि मृत्यु का अधिकार मुझपर भी हो गया है।

(रानी गिरकर मर जाती है।)

शकर—राजा ! मेरे स्वामी ! मेरे सुन्दर बच्चे ! राजा को ऐसा ही करना चाहिये था। तुमने सदैव के लिये गद्दी पाली। यही समय देखने के लिये भगवान् ने मुझे अब तक जीवित रखा था। तुमने काश्मीर की लाज रखली। अब मेरे दिन भी पूरे हो गये ! तुम्हारा नौकर तुम्हारे पीछे-पीछे ही आ रहा है।

ईला विवाह के कपड़े पहिने आती है।

ईला—मै विवाह के वाद्य सुनकर आगई हूँ। कहाँ है मेरा प्रीतम ! मै तैयार हूँ।

मालिनी

पात्र-परिचय

मालिनी	राजा की कन्या
महिषी	रानी
राजा	
सुप्रिय	एक श्रेष्ठ ब्राह्मण
क्षेमंकर	एक दूसरा ब्राह्मण सुप्रिय का मित्र

अन्य दूसरे पात्र प्रतिहारी, प्रहरी, ब्राह्मण गण आदि।

पहला दृश्य

राज अन्त.पुर

मालिनी और काश्यप

काश्यप—दुख का भय, सुख की आशा त्याग दो वत्स, त्याग दो। विषय लालसा को दूर कर दो। ससार के समस्त बन्धन तोड दो, और प्रमोद-प्रलाप की चचलता छोड दो, रात दिन मन मे धारण करो स्वच्छ बुद्धि का प्रकाश, जिससे मोह, शोक वस में होकर दूर हो जायँ।

मालिनी—भगवन् मैं कमजोर हूँ, बदनी हूँ, आँखो से मुझे कुछ भी दिखाई नही देता। सन्ध्या के समय कमलो के भीतर कैद हो जाने वाली भ्रमरी हूँ मैं, सोने की प्रतिमा-सी जड मृतक सी, पर फिर भी जब तुम कृपा करते हो मुक्ति का सगीत मेरे कानो में बज उठता है।

काश्यप—आशीर्वाद देता हूँ मैं, रात्रि का शीघ्र ही अन्त होगा, सूर्य रूपी ज्ञान के प्रकाश में, जाग्रत जगत के जयजयकार में, श्रेष्ठ लग्न में सुप्रभात मे तुम्हारे फूलो के कारागार का द्वार खुल जायगा। वह महाक्षण आने ही वाला है। तीर्थ-पर्यटन के लिये मैं तो अब चला।

मालिनी—दासी का प्रणाम स्वीकार करो।

(प्रस्थान)

महाक्षण आने ही वाला है। हृदय चचल हो गया है, कमल के पत्तो पर पडी बूँद के सदृश्य मेरा मन अस्थिर है। जब आँखें मूँदती हूँ तो आकाश का कोलाहल सुनाई पडता है। न जाने कौन क्या-क्या तैयारियाँ मुझे घेरकर कर रहे हैं। लगता है मेरे चारो ओर अदृश्य मूर्तियाँ घूम रही हैं। कभी बिजली-सी चमक आती है और प्रकाश दे जाती है। वायु की तरगे शब्द कर-करके आघात करती हैं। न जाने बार-बार मर्मस्थल में व्यथा-सी क्या चुभती है। कुछ समझ में नही आता, जगत में आज बार-बार मुझे कौन बुला रहा है।

राजमहिषी का प्रवेश

महिषी—ओ बेटी, मेरी प्यारी बिटिया। मैं क्या करूँ! तुझे लेकर कहाँ जाऊँ? अरी बेटी, इस कच्ची उमर मे तुझे क्या यह सब कुछ अच्छा लगता है। अरे तेरी वेषभूषा कहाँ गई? तेरे अलकार कहाँ गये? मेरी 'सोने की उषा' आज 'स्वर्ण प्रभाहीन' सी हो रही है। क्या मा कभी अपने नेत्रो से यह सब दोष देख सकती है।

मालिनी—क्या कभी भिखारिन राजा के यहाँ जन्म नही लेती। गरीब परिवार मे तू जो मा होकर जन्मी थी सो क्या भूल गई राजेश्वरी? बोल मा वह कहाँ जायेगी जो तेरे उस पिता की दरिद्रता जगत प्रसिद्ध थी। इसीसे आज मैंने तुम्हारे पिता का दैन्य अलकार धारण किया है, यही तो मेरी शोभा है।

महिषी—तू मेरे पिता को उलाहना अपने पिता के गर्व मे आकर देती है। अरी ओ गर्वित पुत्री! क्या तुझे मैंने इसीलिए अपने गर्भ मे धारण किया था? क्या तू नही जानती मेरे पिता तेरे पिता से सौगुने धनी मानी हैं, इसीलिये धन रत्न से वह इतने उदासीन है।

मालिनी—यह बात तो सभी जानते हैं कि जिस दिन चाचा ने तुम्हारे पिता को पितृ-धन से वचित किया था उसी दिन उन्होने घर द्वार क्षोभ मे आकर छोड दिया था। धन-जन, सम्पदा सभी कुछ त्याग दिया था निर्विकार मन से, और उसी दिन एकमात्र पैतृक देवमूर्ति अपनी दरिद्र कुटी मे ले आये थे, उनके उस धर्म को ही जन्मकाल मे मुझे सौंपा है मा तुमने, और कुछ नही। रहने दो न मा, अपने उस पितृकुल के दारिद्र धन को सदैव के लिये अपनी पुत्री के हृदय मे। मेरे पिता का जो कुछ धन रत्नभार है उसे राजपुत्र के लिये रहने दो।

महिषी—मेरी बेटी तुझे यहाँ कौन समझाता है। तेरी बाते सुनकर न जाने क्यो मेरी आँखे भर आती हैं। जिस दिन तूने मेरी गोद मे जन्म लिया था, शब्द-विहीन मूढ शिशु के रूप मे, कौन जानता था तब कि दो दिन पश्चात् वही नन्ही कली इतनी बाते करने लगेगी। तेरा मुख निहारा करती हूँ और मेरा हृदय डर से काँपता रहता है। अरी ओ सोने सी बच्ची तुझे यह धर्म मिला कहाँ से, भला किस शास्त्र से मिला? मेरे पिता का धर्म तो पुराना था वैदिक

अनादिकाल का और ये धर्म तो विल्कुल ससार से न्यारा है, वेदो से न्यारा, आज का गढा गया नया धर्म । भला कहाँ से घर मे विधर्मी सन्यासी आते हैं ? मै यह रूप देखकर दुखिन होती हूँ । डर के मारे मरी जाती हूँ । भला क्या-क्या मन्त्र तुझे वे सिखाते हैं, जो तेरे सरल निष्कपट हृदय को मिथ्या के जाल मे लपेट लेते है । सभी कहते हैं, वह बौद्ध है, जादू जानते हैं, प्रेत सिद्ध कर रखे है, पिशाच पन्थी है । मेरी बेटी, मेरी बात सुन, मेरी ! धर्म भला कोई ढूंढना पडता है । धर्म तो सूर्य के समान, सदैव चमकता, सदैव एक-सा रहता है । तू उसी धर्म को अपना जो सरल है, सत्य है, सनातन है । पूर्ण भक्ति से आचार व्रत और क्रिया कर्म करो । रात-दिन शिवपूजा करो और भगवान से वर माँगो, जिससे उन जैसे ही पति मिले । वह देवता तेरे पति ही बनेगे । जो शास्त्र और वेदो मे लिखे हैं । पडित जिनके बारे मे सोचा करते हैं । पुरुषो का तो नित्य धर्म वदलता रहता है देशकाल के अनुसार । वे सदैव हाहाकार करते रहते हैं शान्ति के लिए, सन्देहसागर मे । शास्त्रो के शास्त्रार्थ मे ही रक्तपात करते रहते हैं, पर रमणी का धर्म उसके हृदय में रहता है, गोद मे सदैव पति और पुत्र के रूप में ।

राजा का प्रवेश

राजा—शान्त होओ पुत्री, कुछ दिन के लिये अब ! क्योकि ऊपर आकाश मे आँधी के मेघ उमड रहे हैं ।

महिषी—महाराज, ये झूठा डर कहाँ से साथ ले आये !

राजा—झूठा डर नही ! हायरी अबोध पुत्री मेरी ! यदि तू नया धर्म घर मे लाना ही चाहती है तो क्या तू समझती है कि वह वर्षा ऋतु की नदी सदृश्य है जो किनारो को धसकाते हुये सब कुछ समेटे लिये चली जाती है, सबकी दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करती हुई । क्या लज्जा और त्रास उसके लिये कुछ नही हैं । अपना धर्म अपना ही होता है—जो सदैव निभृति हृदय में छिपा रहता है । उसे देखकर कोई हँसे नही, कठोर परिहास न करे, बस यही मेरा कहना है । यदि कोई धर्म धारण ही करना है तो करो, पर मन में और हृदय मे धारण करो ।

महिषी—महाराज ! इस तरह तिरस्कार क्यो करते हो, मानो मेरी बेटी ने कोई भारी-अपराध किया हो ? एक उन्ही के ग्रन्थो मे तो सारा सत्य नही लिखा ? क्या सत्य के बारे मे अन्य ग्रन्थो मे और किसी स्थान पर कुछ नही लिखा ? वे ब्राह्मण कहाँ हैं जो ऐसा कहते है, बुलाओ तो उन्हे ? ताकि वह मेरी पुत्री से सीख जाय कि वास्तव मे धर्म है क्या ? उनके अधूरे धर्म को त्याग दो ! छीः-छी ! मेरी प्यारी बेटी मैं तुम से नये धर्म की दीक्षा लूँगी और ब्राह्मणशास्त्र की जीर्ण शृ खला के बन्धन को तोड दूगी । तुम्हे वे निर्वासन का दण्ड देगे ! तुम निश्चित रहो महाराज ! तुम शायद मन मे सोचते होगे यह कन्या तुम्हारी कन्या है , अन्य साधारण कन्याओ की नाई । पर ये वैसी साधारण कन्या नही है, यह दीप्त अग्नि- शिखा है । मै जो कुछ आज कहती हूँ सो तुम उसे सुनो—यह कन्या मानवी नही, कोई देवी है जो तुम्हारे घर को पवित्र करने आई है । इसकी अवहेलना न करो । अचानक अपने खेल को समेट कर चली जायेगी । तब तुम हा-हाकार करोगे और फिर राज्य-पाट देकर भी इसे न पा सकोगे !

मालिनी—पिता जी प्रजा की प्रार्थना पूरी कीजिये ! मुझे निर्वासन दे दे दीजिये, क्योकि महाक्षण निकट आ गया है !

राजा—क्यो पुत्री ! पिता के घर तेरे लिये क्या कमी है ? बाह्य जगत बडा जड और क्रूर है, क्या तू समझती नही कि वह माता-पिता की गोद नही है ।

मालिनी—पिताजी मेरी बात सुनिये ! वास्तव मे जो मुझे चाहते हैं, वही मेरा निर्वासन चाहते हैं । मा-मेरी बात सुन—मै अपने चित्त की व्याकुलता को समझा सकने मे असमर्थ हूँ । मा तू मुझे छोड दे, बिना किसी दुख और क्लेस के, पेड से टूटे पत्ते की तरह ! मैं सबसे जाकर कहूँगी कि राजदरबार मे आकर बाहर का ससार मुझे माग रहा है । पता नही क्या काम है, आज मेरा महाक्षण आगया है ।

राजा—अरी अबोध बालिका भला तू कहती क्या है ?

मालिनी—पिताजी ! तुम नरपति हो, राजा का कर्तव्य पूरा करो ! मेरी मा ! तुम्हारे और भी तो पुत्र पुत्रिया हैं, फिर मेरी ममता क्यो नही छोड देती।

मुझे अपने मृदु-प्यार मे अब और न बाँधो।

महिषी—सुनिये ! इसकी बात तो सुनिये !! मेरे मुख से बात तक नही निकली, बस तेरा मुख देखा करती हूँ ! क्यो बेटी जहाँ तू जन्मी है, क्या वहाँ तेरा स्थान नही है। मेरी लाडली ! क्या तू जगत लक्ष्मी है जो तेरे ऊपर ही सारे ससार का भार आ पडा। यह अपार ससार तेरे विना मातृ-हीन है क्या ? जो वहाँ नये आदर से जायेगी। फिर हमारी 'रक्षणी कौन होगी, तेरे चले जाने के बाद ?

मालिनी—मै जागकर भी स्वप्न देखा करती हूँ—नीद मे सुनती हूँ, मानो आँधी चल रही हो पूरे वेग से! नदी में तूफान उठा है, अधेरी रात है, नाव किनारे बँधी हुई है, पर कर्णधार कोई नही, कैसे पार होगी ? विना घर के समस्त यात्री हताश हुये बैठे हैं। लगता है अब मै जा सकती हूँ, मानो में कूल का पता जानती हूँ—मेरे छूने मात्र से ही नाव गतिमान हो जायगी, उसमें प्राण आजायेंगे. और वह पूरे वेग से चलने लगेगी। ऐसा मेरे मन में विश्वास न जाने कहाँ से आजाता है। मै राज-कन्या हूँ, मैंने कभी वाह्य जगत तक नही देखा, एक ही स्थान पर रहती हूँ जन्मने से अब तक—चारो ओर सुख की दीवारे हैं—मुझे न जाने कौन यहाँ से निकालकर लिये जा रहा है। बन्धन तोड दो महाराज ! माँ छोडदे मुझे, मै कन्या नही, आज राजकन्या नही, मेरे तो अन्तर मे हैं अग्निमय वाणी, वही हूँ मै आज !

महिषी—महाराज सुनलिया आपने ? क्या कह रही है भला ये। समझ में नही आता क्या यह वालिका की वात है ? क्या यही है तुम्हारी कन्या। क्या मेरी ही कोख से जन्म लिया है इसने ?

राजा—बिल्कुल वैसे ही जैसे रात्रि उषा को जन्म देती है वैसे ही तुमने इसे जन्म दिया है। कन्या रात्रि की कुछ नही, विश्व की है, और विश्व को ही प्राण देती है, ऐसी है यह हमारी कन्या !

महिषी—महाराज इसीलिये मै आपसे प्रार्थना करती हूँ कि मोह-माया का जाल ढूढ देखो, कहाँ है ? जिससे यह देव-प्रतिमा वध जाय। (कन्या के प्रति) यह तेरा कैसा वेश है जो मुँह पर बालो की लटे आ पडी हैं ! छीः बेटी स्वयं

का इतना अनादर ! आ, मेरे पास आ बेटी, ताकि तेरे केस अच्छी तरह बाँध दूँ । लोग क्या कहेगे तुझे ? निर्वासन ! यदि यही ब्राह्मण का धर्म हो तो बेटी भले हो, हम भी सीख ले तुझसे नये धर्म को, और ये ब्राह्मण भी देखले नये धर्म का उदय ! इधर तो आ उजाले मे तेरा मुँह देखूँ बेटी ।

(महिषी और मालिनी का प्रस्थान ।)

सेना पति का प्रवेश

सेना पति—महाराज ! ब्राह्मणो के कहने से सारी प्रजा विद्रोही हो गई है, सारी प्रजा राजकुमारी का निर्वासन चाहती है !

राजा—तो शीघ्रता करो सेनापति, सामत और नृपतियो को ले आओ !

[राजा और सेनापति का प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

मंदिर के प्रांगण में ब्राह्मण गण

ब्राह्मण गण—निर्वासन ! निर्वासन !! राजकन्या का निर्वासन चाहते हैं हम !!!

क्षेमकर—ब्राह्मण देवता आपकी बात का सार यही है । सकल्प दृढ रखना । समझे । भाइयो, और किसी शत्रु से डर नही, केवल नारी से डर लगता है । उसके सम्मुख अस्त्र टूट जाते हैं । सारे तर्क और युक्तियाँ परास्त हो जाती हैं । बाहुबल अपना मस्तक झुकाता है । हृदय मे कुछ इसी तरह घर कर लेती है सम्राज्ञी-सम मनोहर महा सर्व नाशिनी !

चारुदत्त—आओ सब राज दरबार मे चले और जाकर कहे—रक्षा करो, रक्षा करो, महाराज ! आर्य-धर्म को ग्रसना चाहती है नागिनी और वह भी तुम्हारे ही नीड मे से ।

सुप्रिय—धर्म ? पडितो, मूर्खों को उपदेश देते हो—धर्म क्या है ? क्या धर्म यही है कि किसी निर्दोष को निर्वासित कर दिया जाय !

चारुदत्त—लगता है तुम कुल-शत्रु विभीषण हो । सभी सुकार्यो मे विघ्न डालना ही क्या तुम्हे शोभा देता है ?

सोमाचार्य—धर्म की रक्षा के लिये हम सब ब्राह्मण समाज मे एकत्रित हुये हैं। तुम सर्वनाश से दीवार तोडक बीच मे कहाँ से आगये ?

सुप्रिय—धर्माधर्म और सत्यासत्य का भला विचार कौन करेगा ? अपने विश्वास में भी क्या तुम सुदृढ हो ? शोर मचाकर और गुटबन्दी करके क्या तुम सत्य की मीमासा करोगे ? युक्ति भी है कुछ तुम्हारे पास ?

चारुदत्त—बडा गर्व होगया है तुमको सुप्रिय !

सुप्रिय—प्रियवर यह मेरा गर्व नही है में अत्यन्त अज्ञानी हूँ। गर्व तो उन्ही को है जो आज अनेको धर्मशास्त्रो मे से दो-चार शब्द जानकर निष्पाप और निरपराध राजकुमारी को घर के बाहर खीच कर भिक्षुक के पथ पर डाल देना चाहते हैं। केवल इसलिये कि उसके और हमारे शास्त्रो के कुछ अक्षरो में प्रभेद है।

क्षेमकर—भला तर्क में किसकी मजाल है जो तुमसे जीत सके ?

सोमाचार्य—ब्राह्मणो निकाल दो सुप्रिय को सभा के बाहर, दूर कर दो इसको यहाँ से !

चारुदत्त—हम राजकुमारी का निर्वासन चाहते हैं, जिनका मत हमसे नही मिलता वह सभा के बाहर इसी समय चले जायँ।

क्षेमकर—शान्त होओ, बन्धुवर !

सुप्रिय—भ्रम से मुझे चुन लिया है ब्राह्मणदेव ! मैं तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाने वाली छाया नही हूँ। मै शास्त्र प्रति ध्वनि नही हूँ, जिस शास्त्र को मानने वाले हैं यह सब ब्राह्मण, उस में कही नही लिखा–'जिसकी शक्ति उनका धर्म।' यह मत तो दानवी है—'जिसकी लाठी–उसकी भैस।' (क्षेमकर से) चल दिया भाई, मुझे विदा दो !

क्षेमकर—तुम्हे विदा नही होने दूँगा ! तुम्हारे तर्क मे ही दुविधा है, कार्य करने में तुम पर्वत समान दृढ हो। मेरे बन्धु क्या तुम जानते नही आज घोर दुःसमय आया है ? सुप्रिय आज मौन रहो।

सुप्रिय—मेरा विवेक मुझे धिक्कार रहा है बन्धु ! इस मूढता का दम्भ अब और नही सहा जाता मुझ से। योग यज्ञ, क्रिया-कर्म, व्रत-उपवास क्या इसी को धर्म मानकर विश्वास करलू बिना किसी सशय के ? बालिका को निर्वासन दण्ड

दिलाकर ही धर्म की रक्षा करोगे। मन मे सोच देखो, विवेक को जागृत करके कि मिथ्या को तो उसने सत्य नही कहा ? वह भी कहती है—'सत्य ही धर्म है,' उसका धर्म दया है समस्त जीव-मात्र से प्रेम। और यही समस्त धर्मों का सार भी है। इससे अधिक और जो कुछ है भला उसका प्रमाण क्या है ?

क्षेमकर—भाई स्थिर होओ, मूल धर्म तो एक ही है, विभिन्न धर्म बिल्कुल वैसे ही आधार हैं जैसे जल एक है पर जलाशय भिन्न-भिन्न हैं। हम जिस सरोवर से पीढियो से अपनी-अपनी प्यास बुझाते आये हैं यदि वहाँ नया जल एकदम पृथ्वी के उदर से आ जाय तो निश्चय ही वह सरोवर के समस्त किनारो को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा तोड-तोड कर, और जब पृथ्वी से जल निकलना बन्द हो जायगा तब क्या बिना किनारो वाले सरोवर मे जल ठहर जायगा हमारे पीने के लिए। तुम्हारा हृदय शीतल है तुम्हे ऐसे सरोवर की आवश्यकता नही है, पर क्या सरोवर रूपी ज्ञान को एकत्रित करके दूसरो के हितार्थ अपने हृदय मे एकत्रित नही करोगे। क्या तुम यही चाहते हो कि पुरखो के समय की सुदृढ तट-भूमि सनातन प्रेम पुष्ट सौन्दर्य की श्यामलता, बडे यत्नो से पाला गया, पुराना वृक्ष, पितृ धर्म प्राणो से भी अधिक प्यारी पुरानी पुरातन प्रथा, हमारे पुरातन कर्म, और सदैव-सदैव की चिर-परिचत नीति कुछ भी न रहे ? ऐसे मूढ अनेक हैं जो चेतना खोकर भी सत्य जननी की गोद मे निद्रा मग्न हैं, जो जननी को पहचानते भी नही हैं, उन्हे चेतना देने के लिए जननी के शरीर पर आघात मत करो। सदैव धैर्य रखो, बन्धु जो क्षमायोग्य वस्तु हैं उन्हे क्षमा करो। ज्ञान लोक में अपना कर्तव्य पालन करो।

सुप्रिय—यह अधीन सदैव तुम्हारे ही पथ पर चलता है, तुम्हारे वचन सदैव शिरोधार्य रहेगे। सच है, कभी भी मुक्ति-सूचिका पर ससार का कर्तव्य भार नही टिक सकता।

उग्रसेन का प्रवेश

उग्रसेन—क्षेमकर कार्य सिद्ध है, सेना ब्राह्मणो के वचन सुनकर चचल हो उठी है, अब बाँध बस टूटना ही चाहता है।

सोमाचार्य—राज्य सेना !

चारुदत्त—क्या कहा ! यह कैसा काण्ड है ! क्रमशः कही यह विपरीत विद्रोह मे न बदल जाय ।

सोमाचार्य—क्षेमकर इतना आगे बढना अच्छा नही होता ।

चारुदत्त—ब्राह्मणो की जय धर्म बल में ही है, बाहुबल मे नही । याग यज्ञ से सिद्ध होगी । आओ बन्धु दूने उत्साह से मन्त्र पाठ करे । शुद्धाचार से योगासन से हम ब्रह्मतेज अर्जन करे, और एकाग्र मन से अपने इष्टदेव को पूजे ।

सोमाचार्य—सिद्धिदात्री ! जगदात्री देवी तुम कहाँ हो ! तुम्हारे चरणो के दास सेवक कभी व्यर्थ काम तो नही कर सकते । हे दर्प हारिणी तुम्ही नास्तिको के दम्भ को चूर-चूर करती हो । आज तुम विश्वास बन अपने भक्तो को प्रत्यक्ष दिखला दो । सहारिणी के वेश मे सबके सामने आ खडी हो । आज अट्टहास्य हँसकर, हे मुक्तकेशी, खड्गहस्ते पाषण्डदलिनी ! आओ बन्धुवर प्रलय शक्ति का सब मिल कर एक कठ से भक्ति भरे स्वर में आह्वान करें ।

ब्राह्मणगण—(एक आवाज में)–हम सब हाथ जोडकर प्रार्थना करते हैं कि आ प्रलयकारी माँ ।

मालिनी का प्रवेश

मालिनी—आ गई मै !

क्षेमकर और सुप्रिय को छोडकर समस्त ब्राह्मण पृथ्वी पर लोट प्रणाम करते हैं ।

सोमाचार्य—देवि यह क्या ? यह कौन-सा भेष है तुम्हारा ! दयामयी आज तुम म्लान वेश में आई हो, नरकन्या का रूप धारण करके ! यह कैसा अपूर्व रूप है तुम्हारा ! यह कैसा प्यार का प्रकाश है तुम्हारे नेत्रो मे ! यह तो सहारमूर्ति नही है माता ! भला माँ कहाँ से आई हैं आप ? और मा आप क्या सोचकर आई हैं भला, क्या करना चाहती हैं . और !

मालिनी—हे ब्राह्मगण मै पिता का घर छोडकर निर्वासन के लिए चली हूँ, तुम लोगो ने प्रार्थना करके बुलाया इसीलिए मै आई हूँ ।

सोमाचार्य—निर्वासन ! भक्तो के आह्वान पर स्वर्ग से देवी का निर्वासन !

चारुदत्त—हाय, हाय क्या करें माँ, तुम्हारी सहायता के विना यह भ्रष्ट

ससार वच नही सकेगा ।

मालिनी—अब मैं लौट नही सकती । मै जानती थी कि मेरे लिए तुम्हारा द्वार खुला है, मेरे ही लिए तुम सब बैठे हो, इसी से मैं जाग उठी हूँ सोने से। तुम लोगो ने ही तो प्रार्थना की थी राज दरवार मे मेरे निर्वासन के लिए ।

क्षेमकर—राज कन्या ।

सव के सब—राजा की पुत्री ।

सुप्रिय—धन्य है, धन्य है ।

मालिनी—मुझे निर्वासित कर दिया गया है, इसीलिये मेरा स्थान तुम्हारे घर मे ही है । तो भी सच सच बताओ मुझे, तुम मुझे क्यो चाहते हो ? क्या मुझ से तुम्हारा कोई काम है । सचमुच ही तुमने क्या मेरा नाम लेकर पुकारा था वाह्य जगत से, उस समय जव मै एकान्त मे वगीची में छिपी बैठी थी ? तब तो वह स्वप्न नही था, और शायद इसीलिए मेरा हृदय रो उठा था विना कोई बात सोचे समझे ही !

चारुदत्त—आओ, आओ ना मा जननी, प्रसन्नचित्त करुणामयी जननी हमारे बीच विराजी रहो सदा। सदैव इसी तरह ।

मालिनी—मै आज आ तो गई ही हूँ, पर मुझे ये तो बताओ कि तुम्हारा कौन सा कार्य सिद्ध करना है । मैंने तो राजा के यहाँ जन्म लिया है, राजकन्या हूँ, वाह्य ससार का कुछ भी नही देखा मैंने कि यह ससार कितना बडा है, कितना विराट है ! मै विल्कुल नही जानती कि आपको क्या कष्ट है । मैंने तो सुना है पृथ्वी माँ दुखमय है, मैं तो तुम्हारे साथ उस दुख का ही परिचय चाहती हूँ ।

देवदत्त—माँ तुम्हारी बात सुनकर हमारे नेत्रो से अश्रु बहे जा रहे हैं ।

सव के सव—हम सब पाखडी मनुष्य है माँ ।

मालिनी—आज मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मानो मेरा हृदय अमृत का पात्र है, जो इस विश्व की क्षुधा को मिटा सकता है, और वह शाति का अमृत तुम्हे दे सकता है । जितने दुख जहाँ भी कही हैं उन्हे दूर कर सकता है । उधर देखो, ऊपर । नीले आकाश से सारे बादल दूर हो गये हैं, चन्द्रमा का प्रकाश फैल

गया है। ससार कितना विशाल है, आकाश कितना शान्त है। रात में चाँदनी फैलाकर जगत को वक्ष से किसने लगा लिया है, राजमार्ग, उदारमदिर, वास भवन, वृक्षश्रेणी दूर नदी का तट इन सब को। पूजा का घन्टा वज रहा है, मेरा अग-अग प्रसन्नता से गदगद हो फूल उठा है, नेत्रो मे अश्रुकण भरे आ रहे हैं, प्रसन्नता के मारे। कहाँ से आ गई मैं आज तुम्हारे इस प्रकाशनीय जगत मे, विस्तृत सर्व जन जगत मे।

चारुदत्त—देवी, तुम विश्वदेवी हो।

सोमाचार्य—धिक्कार है ऐसी जिह्वा को। जब तुम्हारे निर्वासन के लिये उसने कहा तो क्यो नही उसके सौ-सौ टुकडे हो गये।

देवदत्त—आओ विप्रगण हम सब मिलकर जयजयकार करते हुए देवी को राज्य घर मे भेज आये।

सब के सब—(एक आवाज मे) जय जननी की। जय लक्ष्मी माता की! जय करुणामयी देवी की।

(क्षेमकर और सुप्रिय के सिवाय सब के सब
मालिनी को घेर कर प्रस्थान करते है)

क्षेमकर—मोह तो दूर हुआ—कहाँ चले सुप्रिय ?

सुप्रिय—मुझे छोड दो, छोड दो मुझे।

क्षेमकर—शान्त हो ओ सुप्रिय—क्या तुम भी अँधो की तरह जन समूह मे वह जाओगे।

सुप्रिय—क्षेमकर क्या यह स्वप्न है ?

क्षेमकर—तो अब तक स्वप्न मे लीन थे, आँखे खोलकर चारो ओर देखो वास्तविकता को।

सुप्रिय—झूठ। सब मिथ्या है। तुम्हारे स्वर्ग, देवी देवता सब मिथ्या है। व्यर्थ ही इस ससार मे मैं अब तक भटकता रहा। कभी भी किसी भी शास्त्र से शाँति नही मिली, शकाओ से सदैव हृदय रोता रहा। आज मुझे अपना धर्म मिल गया है, अपने हृदय के विल्कुल निकट ही। ये समस्त देवता तुम्हारे शास्त्रों के देवता हैं, मेरे नही हैं। उनमे भला प्राण कहाँ है, वह मेरे प्राणो मे भला

बोलते क्यो नही हैं ? वह शकाओ को समाधान क्यो नही करते ? क्या वे व्यथाओ पर शान्त सुधा बरसाते है ? देवी तुम कौन हो, जिसने मेरी जीवन रूपी नाव पेर आज अपने चरण रखे हैं। मेरी जीवन नाव में यह कैसी गति आ गई ? इतने दिन बाद आखिर मृत्य लोक में ही मानव के घर ही मे मै अपना जीवन देवता पागया।

क्षेमकर—हाय ! हाय मित्र ! वह बडा भयकर समय होता है जब हृदय माया मरीचिका मे पड सब कुछ भूल जाता है, उस समय शास्त्र मानव की इच्छाये बन जाते हैं और धर्म कल्पना बन जाता है। यह प्रकाशमयी रात्रि जिसने जल-थल-समस्त जगत को अपने सौंदर्य से प्रकाशित कर दिया है, क्या यह सनातन है कल प्रातः ही सूर्यदेव क्या अपनी हजारो हजार भुजाओ से इसे नही घेर लेगा, तब क्या महाकोलाहल के कारण ही कठोर रण विश्व रण-स्थल मे नही होगा तब वह प्रकाशित रात्री स्वप्नवत माया सी जान पडेगी। जिस सौंदर्य मोह ने तुम्हारा हृदय घेर रखा है वह भी तो इसी चाँदनी सा है, उसे ही तो तुम धर्म कहते हो। एक बार आँखे खोलकर चारो ओर देखो—कितना क्लेश है, कितना दु ख है, कितना कष्ट है, कितनी विकट निराशा है मानव के चहुँ ओर। वह धर्म क्या इस जगत की मद्यपान के समय की पिपासा को शान्त कर देगा ? इस जगत मे तुम्हारा यह क्षीण मोह भला किसके क्या काम आयेगा ? तपती धूप मे खडे हो रण रगभूमि पर, अब भी क्या मग्न हो डूबे ही रहोगे इस स्वप्न मे, और समझते रहोगे अपने को स्वर्ग में ! और कुछ नही है·· ···सखे !

सुप्रिय—नही······नही।

क्षेमकर—देखो दृष्टि उठाकर अपने सामने देखो, वन्धु अब रक्षा न हो सकेगी, अग्नि लग चुकी है। पुरानी अट्टालिका जलकर नष्ट हो जायगी, वह सारा भरत खण्ड जिसके घर-घर मे मानव जन्मे हैं नही वच सकेगा ! अ ा भी क्या तुम्हारे नेत्र स्वप्न देख रहे हैं। खाण्डव दहन जब हुआ था, समस्त पक्षी अपने वक्ष से चिपटे बच्चो के स्मरण मात्र से तब आकाश मे उडते फिरते थे और अपने करुण क्रन्दन से स्वर्ग को हिला दिया था। हे सुप्रिय उसी प्रकार उद्वेग से अधीर

पितृकुल अनेक स्वर्गो से आ आकर आशका से व्याकुल हुआ फिर रहा है शून्य मे दुखी कठ स्वर से आर्त करता हुआ भारत के आकाश पर, स्मरण करो—आर्यधर्म का महादुर्ग है पुण्यधारा काशी की तीर्थ नगरी। इसके द्वार पर भग्न मान सा प्रहरी है ? क्या आज स्वप्न मे वह अपने कर्तव्य को भूली रहेगी ! हे सुप्रिय आँख उठाकर अपने चारो ओर देखो। बात करो। कहो क्या मुझे अकेला छोड कर तुम माया के पीछे चले जाओगे, विश्वव्यापी इस दुर्योग में, प्रलय की रात्रि में।

सुप्रिय—सखे मै कभी नही जाऊँगा, कभी नही ! सदैव तुम्हारे ही साथ रहूँगा, अपने सब आराम त्याग कर, समस्त जीवन के सुख त्याग कर।

क्षेमकर—तो सखे मै चल दिया।

सुप्रिय—भला कहाँ ?

क्षेमकर—देशान्तर को, जव घर में आग लग चुकी हो, कोई आशा शेष न हो, वाहर से रक्तस्रोत लाऊँगा, वही इस अग्नि को वुझा सकेगा ! जाऊँ सेना लेने को ?

सुप्रिय—यहाँ की सेना भी तो तैयार है।

क्षेमकर—यह आशा झूठी है। अब तक वह दलवल सहित मुग्ध कीट पतगो की तरह जन शिखा मे जल मरी होगी। सुनो, होने वाली जय ध्वनि सुनो। सुनली न ? मदान्ध नगरी आज धर्म की चिता पर उत्सव दीप जला रही है।

सुप्रिय – यदि तुम्हे जाना ही है भाई तो इस कठिन प्रवास मे मै भी तुम्हारे साथ ही चलूँगा।

क्षेमकर—तुम भला कहाँ जाओगे वन्धु ! तुम यही रहो जागरूक सदैव, और राजभवन का समाचार रखना। मुझे पत्र लिखना। देखना मित्र भूल मत जाना, कही नई मरीचिका मे आ मुझे छोड दो, अपने इस प्रवासी मित्र को सदैव याद रखना।

सुप्रिय—भाई माया नयी है, पर मैं तो नया नही हूँ। तुम पुराने हो, मै भी पुराना हूँ।

क्षेमकर—तो आलिगन दो वन्धु !

सुप्रिय—पहला विच्छेद है आज। सदैव एक साथ रहे, एक साथ विरह हीन

LIBRARY No

हृदय लेकर चले थे, आज तुम कहाँ जाओगे, और कहाँ रहूँगा मै कौन जाने ?

क्षेमकर—तुम्हारा बन्धु फिर वापिस आकर मिलेगा। बस केवल एक मात्र डर है। क्रान्ति के दिन हैं ये, बड़ा दु.समय है, इसमे मजबूत बन्धन भी कभी-कभी टूट जाते है। भाई-भाई पर चोट करता है, मित्र विरोधी हो जाते हैं। मैं तो आज अन्धकार मे निकल पडा हूँ, और अन्धकार मे ही घर लौट आऊँगा। फिर देखूगा कि क्या वास्तव मे बन्धु द्वार पर दीप जलाये बैठा है। मै तो यही आशा लेकर जा रहा हूँ बन्धु ! अच्छा विदा।

तीसरा दृश्य

अन्त पुरी में महिषी

महिषी—अरे वह तो यहा भी नही है। हे माँ अब क्या होगा ? आँखो ही आँखो मे उसे कहाँ तक रखा जाय। सदैव डर लगा रहता है, रात्रि को निन्द्रा तक नही आती, सोते समय जाग उठती हूँ उसको पुकार-पुकार कर। आँखो से ओझल होते ही शकाऐं होने लगती हैं। कहाँ गयी मेरी स्वप्न स्वरूपिनी ! देखू ढूंढू कहाँ छिपी है जाकर वह।

(प्रस्थान)

युवराज के साथ राजा का प्रवेश

राजा—मालूम होता है आखिर उसे निर्वासन दण्ड देना ही पडेगा।

युवराज—और कोई उपाय दीखता भी तो नही है। महाराज शीघ्रता कीजिये, अन्यथा राज्य खोना पडेगा। सेना और नगर के प्रहरी सबके-सब विद्रोही हो गये हैं। स्नेह ममता त्याग कर कर्तव्य का पालन करो राजन् ! शीघ्र ही मालिनी को निर्वासन आज्ञा सुनाओ।

राजा—धीरे से, वत्स धीरे से ! अपना कर्तव्य पालूंगा, प्रार्थना पूरी करूँगा, मैं उसे निर्वासन दण्ड दूँगा। यह मत समझना कि मोह में फसा वृद्ध हूँ मै, मेरा हृदय कमजोर है, जो राज्य धर्म की उपेक्षा करके अश्रु कण गिराऊगा।

महिषी का पुनः प्रवेश

महिषी—महाराज, महाराज ! बताओ सच-सच बताओ, मुझे रुलाने के

लिये आपने उसे कहाँ छुपा रखा है ? कहाँ है मालिनी ?

राजा—कौन रानी ?

महिषी—मेरी मालिनी !

राजा—वह कहाँ है ? अपने घर में नही है, क्या चली गई वह ?

महिषी—यहाँ नही है नाथ ! तुम सेना लेकर जाओ, उसे घर-घर खोजो, द्वार-द्वार, जल्दी करो नाथ ! हे भगवन् ! उसे सारी प्रजा मिलकर चुराके ले गई है। कितनी निष्ठुर चतुराई है यह उनकी। उन सबको मार दो, सूनी कर दो समस्त नगरी को। नही तो वे मेरी मालिनी को वापिस ला दें।

राजा—ओह चली गई वह ! रानी मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपनी गोद मे अपनी गोद की कन्या को वापिस लौटा लाऊँगा। धिक्कार है ऐसे राजा को ! धिक्कार है इस धर्महीन राजनीति को !! बुलाओ जल्दी बुलाओ सेना को !

मालिनी के सहित सेना और प्रजा का समारोह
और मशालो के साथ प्रवेश

ब्राह्मणगण—जय, जय, शुभ्र पुण्यराशि की जय, जय मूर्तिमती दया की जय !

महिषी—(दौड़कर मालिनी के पास पहुँचकर) एक क्षण को भी मै तुझे अपने वक्ष से अलग नही करती—तो भी तू आँखे बचाकर कहाँ चली गई थी बता तो ?

प्रजागण—महारानी तिरस्कार मत करो ! एक बार हमारी मा हमारे घर गई थी !

चारुदत्त—माता रानी, हमारी ये क्या कुछ भी नही हैं, ये दयामय देवी क्या तुम्हारी ही हैं।

देवदत्त—पुण्यवती राजलक्ष्मी को हम लौटा तो लाये।

सोमाचार्य—माँ लक्ष्मी हमें भूल मत जाना ! सुनो हम आशा रखते हैं, आपके श्रीमुख से अमृत वाणी सुनने की और आशीर्वाद पाने की अपने शुभ कार्य में। तभी तो हमारे हृदय की नाव पार लगेगी और हमको मार्ग दिखाई देगा और तभी हम मुक्ति के पार ध्रुवतारा सदृश्य पहुँचेगें।

मालिनी—यदि तुम मेरे पास आये हो तो दूर कभी मत जाना। प्रतिदिन दर्शन दे जाया करना राजपुर मे आकर। सबको बुला लाया करना, मै देखना चाहती हूँ। मैं यही रहकर नगरवासियो के घर मे रहूँगी, यह तुम जानलो।

सब के सब—आज काशी नगरी धन्य हुई, हम सब धन्य हुये!

(प्रस्थान)

मालिनी—आज मै सबकी वन गई पिता जी! कहो कैसा आनन्द रहा आज। आज हजारो हृदयो मे से स्वत ही जयकार की ध्वनि उठी। आनन्द का दिन है न आज।

राजा—कितना सौन्दर्यमय दृश्य है आज का! समुद्र मथन से जब लक्ष्मी निकली थी, उन्हे घेरकर महा कलरव और उन्माद नृत्य से जैसे समुद्र की उन्मत्त तरगे हिलोर उठी थी, वैसे ही अपनी लक्ष्मी को देखकर आज जन-जन उच्छ्वासित हो उठा है।

मालिनी—मेरी श्रेष्ठ माता अब मुझे महल की दीवारो मे तुम छिपाकर न रख सकोगी। तुम्हारे अन्त पुर मे ही मै समस्त लोक को ले आयी हू। मानो मैं आज देह बाधा विहीन विहीन इस विश्व के प्राण हूँ।

महिषी—ऐसा ही हो! सब मे रहे तू जगत के प्राण वनकर। सबको अपनाकर तू अपनी माँ के ही पास रह। यही ले आ तू अपने विशाल जगत को, बाहर जाने की आवश्यकता नही, माता पुत्री दोनो ही मिलकर इस विशाल जगत की सेवा करेंगी। रात्रि हो गई है पुत्री! आओ, मेरे पास बैठकर अपने मन को शान्त करो। तुम्हारे नेत्रो में उद्दीप्त प्राणो की ज्योति वता रही हैं, जिसने निद्रा के विश्राम को भस्म कर दिया है। आओ बेटी थोडी देर आराम कर लो।

मालिनी—(माँ से चिपटकर) मै श्रान्त हूँ माँ! मेरी सारी देह काँप रही है। माँ मै तुझे छोडकर कहाँ चली गई थी भला, तुम्हारे स्नेह से अलग हो इस विशाल जगत मे। माँ मेरी आँखो मे नीद भर दो, लौरियाँ गा-गाकर, जैसे बचपन में तुम लौरिया गा-गाकर सुनाया करती थी। आज मेरे नेत्रो से आँसू उमड रहे हैं, मेरे हृदय मे वेदना छा गई है।

महिषी—कहाँ हो देवताओ के देवता रुद्रगण, पृथ्वी के समस्त देवो, रक्षा करो मेरी पुत्री की ! मृत्यलोक, स्वर्गलोक सब अनुकूल हो, शुभ हो, मेरी कन्या का मगल हो ! हे पवनदेव मैं तुम्हारी वन्दना करती हूँ। हे भगवान दूर करो मेरी मालिनी का समस्त अकल्याण। अहा—देखते-देखते ही इसके नेत्र नीद से झपकने लगे। सब विघ्न बाधाये दूर हो, बेटी तू माँ की गोद मे विश्राम कर सुख से। महाराज ये कन्या तो तुम्हारी है, फिर इसका ये खेल कैसा है ? जिसके हाथ का समस्त ससार खिलौनामात्र है, उसे क्या अपने घर के एक कौने में छिपाकर रख दोगे ? मैं तो कन्या का खेल देखकर अवाक् रह गई ! इसके जैसे खिलौने हैं वैसा ही खेल भी है। महाराज अभी से सावधान हो जाओ। नया धर्म तुम किसको कहते हो ? भला इस नये धर्म को यहाँ कौन लाया है ? भला कहाँ है जन्मभूमि आकाश के फूल की। न जाने किस मत्तता की बाढ मे वह कर आया है वह जो मेरी कन्या को माँ की गोद से छीने ले जा रहा है ! इसीका नाम क्या धर्म है ? नाथ, तुम भी जा मिलो ना पुत्री के खेल में ? कह दो ग्रह-देवताओ से वे शान्ति के लिये स्तुति करे, पाठ करें, अर्चना करे। स्वयवर सभा मालिनी के लिये रचो ताकि मनचाहा वर तलाश करके वह अपने हाथो से वरमाला किसी योग्य कठ में पहिना सके ! हे राजन् तभी नया धर्म दूर होगा, तभी मेरा त्रास दूर होगा !

चौथा दृश्य

राज-उपवन

परिचारिकाओ के साथ मालिनी और सुप्रिय

मालिनी—तुम भी मेरे द्वारे आये हो क्या ब्राह्मणदेव ? मै अब क्या कहूँ ? क्या दूँ तुम्हे ? तुम्हे कौन-सा शास्त्र लाकर दिखाऊँ ? जो तुम नही जानते उसे क्या मैं जानती हूँ ?

सुप्रिय—मैं तो शास्त्र के साथ तर्क करता हूँ, तुम्हारे साथ नही। सभा में मैं पडित हूँ, पर तुम्हारे पास तो चरणो का सेवक हूँ। देवी मेरा भार वहन

कर लो ! तुम जिस पथ से भी जाओगी मेरा जीवन तुम्हारे साथ जायेगा, अपने समस्त तर्कों को त्यागकर नीरव परछाईं की तरह।

मालिनी—हे ब्राह्मणदेव ! जब तुम कोई प्रश्न करते हो तब मेरी सारी भक्ति नष्ट हो जाती है, मैं सब कुछ भूल जाती हूँ। मन में बडा आश्चर्य होता है कि हे सुप्रिय क्या तुम भी मेरे पास कुछ जानने के लिये आये हो ?

सुप्रिय—न मैं ज्ञान चाहता हूँ और न कुछ जानना चाहता हूँ। मैंने समस्त शास्त्रो का अध्ययन किया है, और समस्त धर्मों के साथ तर्क किया है। बस मै यह चाहता हूँ कि जो कुछ मैं जानता हूँ उसे भुला दो, भुला दो उसे। हजारो लाखो मार्ग हैं, पर प्रकाश कहाँ है उन पर बढने का ! हे प्रकाशमयी देवी इसी-लिये मैं तुम्हारे हृदय से एक प्रकाश की किरण चाहता हूँ।

मालिनी—ओह ब्राह्मणदेव ! जितना तुम माँगते हो मै अपने को उतना ही गरीब देखती हूँ। जिस देवता ने मेरे हृदय मे वज्रालोक मारकर किसी दिन बिजली सदृश्य वाणी कही थी, आज वह कहाँ गया ? हे ब्राह्मण उस दिन तुम क्यो नही आये थे मेरे पास ? भला अब तक क्यो दूर-दूर रहे सन्देह के कारण ! आज बाहर निकलने के नाम से मेरा हृदय काँपता है, क्या करूँ, क्या कहूँ ? कुछ मस्तिष्क मे है ही नही। महान् धर्म की नौका खेने वाली बालिका स्वयं नही जानती उसे कहा जाना है। लगता है इस विशाल ससार में, जहा सहस्त्रो शकायें हैं, जहा का मार्ग अत्यधिक जटिल है मै अकेली हूँ। दिव्य ज्ञान तो केवल कभी-कभी आता है और वह भी क्षण भर के लिये, क्या तुम ब्राह्मणदेव मेरे सहायक बनोगे ?

सुप्रिय—अपना अहोभाग्य समझूगा देवी यदि तुम ऐसा चाहो !

मालिनी—जब अचानक हजारो जनो के बीच अपने पर दृष्टि पडती है तो कभी-कभी बीच-बीच मे निरुत्साह मेरे समस्त अन्तर के प्रवाह को रोक देता है और तब न जाने किस छिपी वेदना के कारण मेरे नेत्रो से अश्रु बहने लगते हैं। क्या तुम ऐसे समय मेरे सहायक बनोगे बन्धु ! मेरे आचार्य बनकर दोगे मुझको नये प्राण। बोलो ब्राह्मण देवता !

सुप्रिय—मेरा यह क्षुद्र जीवन सदैव प्रस्तुत रहेगा। मैं अपने सम्पूर्ण चित्त

को, सवल और शुद्ध करके, बुद्धि को शान्त करके चिरकाल तक के लिये तुम्हारे कार्यो के लिये तुम्हे समर्पित करता हूँ ।

प्रतिहारी का प्रवेश

प्रतिहारी—देवी का दर्शन चाहते हैं प्रजाजन !

मालिनी—मेरी सबसे विनती है मेरे पास आज कुछ नही है, इसलिये आज नही । खाली मस्तिष्क कुछ सोचना चाहता है, अतएव मैं अपनी जडता दूर करने के लिये विश्राम चाहती हूँ ।

(प्रतिहारी का प्रस्थान)

हाँ, भला क्या बात कह रहे थे, कहो अपनी उसी कहानी को । बिल्कुल नई वात है, आश्चर्यमय दृश्य, सुनकर विस्मय होता है । जो भी तुम्हारी दुख-सुख या घर की वात होती हे, मैं सब कुछ जान लेती हूँ । क्षेमकर तुम्हारा बन्धु है ना !

सुप्रिय—उसे सब कुछ कह सकती हो, बन्धु, बान्धव, देवता जो चाहो सो ! मेरा वह सूर्य है, मैं उसका राहु हूँ,—उसका महामोह हूँ मैं । यदि उसके बाहु वलिष्ठ हैं तो मैं उसका लोहपाश हूँ । वचपन से ही वह दृढ चित्त रहा है और मैं सशयो से भागता रहा हूँ । फिर भी उसने मुझे अपना मित्र समझ कर सदैव हृदय मे स्थान दिया है ! विना किसी डर या दुविधा के उसने मुझे अपने मज-वूत प्रेम के बन्धनो से वाँध रखा है जिस तरह चन्द्रमा सदैव मुस्कराता-सा आकाश मार्ग मे घूमते हुये भी कालिमामय कलक को हृदय से चिपटाये रहता है । देवी विधि का नियम कभी व्यर्थ नही होता । लोहे की नाव चाहे कितनी भी सुदृढ क्यो न हो यदि उसके तले में एक भी सूराख हो तो अवश्य किसी न किसी दिन वह साधारण सा सूराख ही उसे सकट के समुद्र में डुबो देगा ! मुझे दु ख है कि मैं ही अपने भाई को सकट के समुद्र में डुबोऊँगा, क्या विधि का यही लेख था ?

मालिनी—तुमने उसे डुबो दिया ?

सुप्रिय—हाँ देवी, मैंने उसे डुबो दिया । जीवन की सारी बाते मैंने तुम्हें वता दी हैं, केवल यही एक बात वतानी शेप रह गई है (कुछ सोचने के पश्चात्)

उस दिन दया-धर्म-हीन विद्वेषी गरज उठा था तुम्हे चारो ओर से घेर कर, तब तुम अपनी पूर्ण महिमा मे अकेली खडी थी ! याद है तुमने कैसा राग गाया था उस समय । मानो बीन की ध्वनि के आगे विद्रोही-सर्पो ने तुम्हारे चरणो में अपना फन झुका दिया हो ! केवल क्षेमकर ही एक था जो उस समय भी हृदय पर पत्थर रखे अटल निश्चय हृदय से खड़ा था । एक दिन मेरा हाथ पकड़ कर वोला—'मित्र मैं दूर देशान्तर को जा रहा हूँ । विदेशी सेना लाकर पुण्य काशी से इस नये धर्म को उखाड फेंकूंगा ।' और वह बिल्कुल खाली हाथ ही अज्ञात दिशा की ओर चला गया । अपने साथ केवल हृदय और कठोर प्रतिज्ञा ले गया ! जानती हो इसके बाद मेरा क्या हुआ ? मानो मुझे नूतन जन्म भूमि मिल गई उस समय जब तुमने इस नीरस हृदय मे अमृत सदृश्य बरसा की । 'सव जनो पर दया करो ।' सभी जानते हैं, बात भी यह बहुत पुरानी है, फिर भी लाखों बरस से ससार सागर के उस पार विश्व में यह बात पैंठी थी, जिसे तुम अपनी सोने की नाव मे बिठा कर ले आई समस्त मानवो के घर के द्वार-द्वार पर । उस देव शिशु को हृदय के अमृत का दान किया है तुमने, उसने तुम्हे माँ कहके मानवपुरी मे नया जन्म पाया है । स्वर्ग कितनी दूर है, उसके देवता कहाँ हैं, इस बात को कौन जानता है ? हम तो केवल मात्र इतना जानते हैं कि अपने अभिमान की बलि देकर हमें प्रेम करना होगा और मैत्री करनी होगी समस्त जीव मात्र से । जो कुछ वासना है वह केवल अपने लिये है इसीलिये दुःखमय है । योग, यज्ञ, तपस्या किसी मे भी मुक्ति नही है, यदि मुक्ति कही है तो केवल विश्व के कार्यो मे है, विश्व के प्रेम में है । घर आकर उस भयानक सन्नाटे की रात्रि मे वह रो उठा, उच्चस्वर मे वह बोला —'भाई ! भाई तुम कहाँ चले गये इस लम्बी चौड़ी विस्तृत पृथ्वी में कहाँ-कहाँ कब तक भटकोगे ?' फिर उसके पत्र की आशा करता रहा, किन्तु कोई पत्र नही आया, और न कोई समाचार ही मिला । मै केवल राज प्रासाद में आता जाता रहता हूँ, चारो ओर निगाह रखता हूँ, विदेशियो से तरह-तरह की बाते पूछता हूँ और सदैव सकित रहता हूँ, बिल्कुल उसी तरह से जिस तरह समुद्र में नाविक चकित नेत्रो से चारो ओर आकाश का कोना-कोना देखा करता है कि

कव किधर से तूफान के बादल आ जायँ। आखिर एक दिन एक छोटे से पत्र के रूप मे एक तूफान आया। उसमे लिखा था—रत्नवती नगरी के राजा की सेना लेकर आ रहा है खून की नदी में नूतन धर्म को बहाने के लिये, अपने पुराने पैतृक धर्म को जो जर्जर हो गया है बचाने के लिये राजकुमारी को प्राणदण्ड देगा। अमोघ आघात से उसने प्राचीन स्नेहपाश को एक क्षण में तोड दिया है। मैंने वह पत्र राजा को दिखा दिया। शिकार के बहाने राजा गुप्त रूप से फौज सहित उस दुष्ट पर चढाई करने गये हैं। और यहाँ पर मै धूल मे लेट रहा हूँ, अपने हृदय मे अपने ही पैने दाँत चुभा रहा हूँ।

मालिनी—हाय तुमने उसे यहाँ क्यो नही आने दिया, मेरे घर के द्वार पर सैना के सहित। ताकि इस घर में वह पूज्य अतिथि की तरह प्रवेश करता, क्योकि बहुत दिन का प्रवासी अपने देश में लौट रहा था।

(राजा का प्रवेश)

राजा—हे सुप्रिय आओ, आलिंगन दो मुझे! मै अनुकूल मुहूर्त मे समाचार पाकर गया था। अचानक ही क्षेमकर को वन्दी बना लाया। यदि थोडी भी देर और हो जाती तो सोये हुये राज प्रासाद पर अचानक भयकर वज्रपात होता, जागने का अवसर भी किसी को न मिलता। आओ बन्धु मेरे, आओ!

सुप्रिय—महाराज क्षमा करो मुझे?

राजा—प्यारे बन्धु मन मे कभी न सोचना कि केवल राज आलगिन तुम्हारा पुरस्कार है, बोलो तुम क्या चाहते हो, माँगो आज? क्या नवीन सम्मान दू तुम्हे? बताओ मुझे! केवल लोक रीति ही इसे मत समझो।

सुप्रिय—मुझे कुछ नही चाहिये महाराज! मैं तो केवल द्वार-द्वार घूमकर भिक्षा से पेट भर लूगा।

राजा—सच बताओ, क्या तुम्हे राज्य का हिस्सा चाहिये?

सुप्रिय—महाराज राज्य पर धिक्कार है, मुझे कुछ नही चाहिये, क्षमा करें।

राजा—ओह मै अब समझा तुम्हारे मन की बात! तुम कोई प्रण-विजय करना चाहते हो! बताओ कौन चद्रमा है ऐसा जिसे तुम विजय करना चाहते हो! मै तुम्हे अभय देता हूँ, तुम्हारी बात पूर्ण होगी, बोलो तो सही!

ऐसी कौनसी असम्भव आशा है तुम्हारे मन में स्पष्ट करके बताओ ! याद है तुम्हे, अभी उसी दिन, अधिक दिन नही हुये, तुम्ही ब्राह्मणो के अगुआ होकर मालिनी को निर्वासित दण्ड दिलाना चाहते थे। क्या आज तुम वही प्रार्थना करोगे कि मालिनी का निर्वासन उसके पिता के घर से हो। साधना में असाध्य कुछ भी नही, तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी, विश्वास रखो मन मे। (पुत्री से) लो सुनो मेरे जीवन की ज्योति, पुत्री, जिसने तुम्हारे प्राणो की रक्षा की वही ब्राह्मण सुप्रिय, सबका प्यारा, प्रिय दर्शन, उसे—

सुप्रिय—राजन् शान्त होओ, शान्त होओ राजन् ! (मालिनी से) आर्य देवी, जन्मजन्मान्तर के भक्ति-उपहार में पाया है अपने इष्टदेवता को कितने पुजारियो ने—उसी प्रकार यदि अपनी देवी को पाता जन्मजन्मान्तर के लिए धन्य हो जाता। राजा के हाथो से पुरस्कार ? भला क्या किया है मैंने, जिसके वदले में सम्पूर्ण सार्थकता को प्राप्त कर अपने मस्तिष्क पर रख घर ले जाऊँ ! कभी नही, कभी नही, तपस्या करके सिद्ध प्राप्त करूँगा चाहे कितने ही जन्म बीत जायँ, तब तुम्हे पाऊँ तब भी कोई चिन्ता नही। बन्धु के विश्वास को भग करके मैं स्वर्ग भी लेना नहीं चाहता। तुम पूर्ण हो देवि, तुम्हारा अन्त करण पूर्ण शुद्ध है। मै दीन हीन हूँ, द्वार-द्वार भटकता फिरता हूँ. सवकी आँखो से अपने को बचाता हुआ अपने ही परिश्रम के भार से दबा-सा। मै कुछ भी नही चाहता, और न कभी चाहूँगा—तुम समस्त ससार को जो शुभकामनायें दे रही हो, स्मरण करके इस अभागे को भी मन-ही-मन उसी में से कुछ दे देना।

मालिनी—(स्वगत) ओ महिला के मन, तू कहाँ हृदय में बैठकर क्रन्दन करता है, सूने घोसले में विरहनी कबूतरी की तरह ? (राजा से) पिता जी भला आपने बन्दी के लिए क्या विचार किया है ?

राजा—उसे प्राण दण्ड दिया गया है।

मालिनी—महाराज मेरी एक मात्र प्रार्थना स्वीकार करके उसे क्षमा कर दो।

राजा—पुत्री वह राजद्रोही है, भला उसे मैं क्षमा कर दूँ ?

सुप्रिय—भला इस असार ससार मे कौन किसका विचार करता है ? महाराज क्या उसने राज्य चाहा था ? वह जानता था आप धर्मद्रोही हैं, इसलिए

चढकर आया था वह राज्य पर ! ताकि आपके विचार अपने से वना सके । इस ससार में जो बलवान है वही विचारक होता है । यदि कही वह जीत जाता महाराज तो वही विचारक होता और आप बन्दी होते महाराज !

मालिनी—महाराज उसे क्षमा करके प्राणदान दे दो ! पश्चात् अपने हितैषी वन्धु के उपकार को स्मरण करके जो भी उपहार इन्हे आप देगे ये आदर से स्वीकार कर लेंगे ।

राजा—क्या कहते हो सुप्रिय तुम ? वन्धु के लिए वन्धुदान करूँ मैं ?

सुप्रिय—महाराज आपकी यह अनुपम दया सदैव स्मरण रहेगी ।

राजा—पर मैं एक बार उसके वीरत्व की परीक्षा करके अवश्य देखूँगा । मैं जानना चाहूँगा कि मृत्यु के भय से वह कर्तव्य से डिगता है या नही । कर्तव्य की लौ नक्षत्र सी जला करती है, आँधी से दीप बुझ जाते हैं, परन्तु तारे कभी नही बुझा करते ! सुप्रिय, तुम अपने वन्धु को पा जाओगे मैं बीच मे केवल नाम मात्र हूँ । पर इस दान से ही मेरा मन सन्तुष्ट नही है । तुमने मेरा हृदय जीत लिया है, इसलिये तुम मेरे हृदय का सर्वश्रेष्ठ रत्न ग्रहण करो । (कन्या से) पुत्री अब तक ये लज्जा कहाँ थी ? अपना लज्जामय शोक दूर कर कुम्हलाये मुख को प्रकाशित करो । भला कँपित अश्रुकणो में ये लज्जा कहाँ से आई, मानो यज्ञ की वेदी की शिखा मे से निकल आई हो स्निग्ध ज्योति सी सुकुमार द्रुपद दुहिता के रूप मे । (सुप्रिय से) उठो पग छोडो वन्धु ! आओ हृदय से लगो । अनन्त सुख मुझे उसी तरह से तग कर रहा है, जिस तरह दुःसाध्य दुख तग किया करता है । मुझे अवसर दो, ताकि आज एकान्त मे जाकर अपनी प्राण-प्रतिमा का चन्द्रमा सदृश्य मुख आनन्दपूर्ण क्षण में देखूँ ।

(सुप्रिय का प्रस्थान)

(स्वगत) वहुत दिन बाद मेरी मालिनी का माथा आज लज्जा की लाली से लाल हुआ है । जब उषा के कपोल लाल हो उठे तब तुरत समझ लेना चाहिये कि अब सूर्योदय में देर नही है । इस रगीनी की परछाई देखकर आनन्द से मेरा हृदय भर गया है । आज समझा मेरी पुत्री तरुणी हो गयी है । यह देवी या दया नही घर की कन्या ही तो है ।

प्रतिहारी का प्रवेश

प्रतिहारी—महाराज की जय ! जय हो महाराज की ! द्वार पर बन्दी क्षमंकर आया है ।

राजा—उसे यहाँ ले आओ !

लोहे की बेड़ियों में बँधा क्षेमंकर का प्रवेश

राजा—स्थिर दृष्टि है, ऊँचे खुले माथे पर काले आँधी के बादल मँडरा रहे हैं, हिमालय की चोटी पर सावन के महीने की तरह।

मालिनी—पिता जी, लोहे का बन्धन स्वय अपनी लाज से इस शरीर मे गढा-सा जा रहा है। अपमान से महत्त का अपमान मर रहा है। मेरे प्राण अपने को धन्य मानते हैं ऐसी इन्द्रदेवता के सदृश्य मूर्ति को देखकर।

राजा—(बन्दी से) तुमने सुन लिया कि क्या निश्चय हुआ है ?

क्षेमकर—मृत्युदण्ड !

राजा—यदि मृत्युदण्ड क्षमा करके जीवन दान देदूँ तो•••?

क्षेमंकर—तो फिर से अपने अधूरे कर्तव्य को पूर्ण करने मे लग जाऊँगा ? जिस मार्ग से चला था, उसी मार्ग पर फिर पहुँच जाऊँगा ।

राजा—हे ब्राह्मण, तुम जीवन चाहते हो या नही, यदि यही बात है तो जीवन की ममता छोड़ दो। माँगो क्या माँगते हो, तुम्हे यह अन्तिम प्रार्थना का अवसर दिया जा रहा है।

क्षेमकर—मैं और कुछ नही चाहता, केवल अपने बन्धु सुप्रिय को देखना चाहता हूँ।

राजा—(प्रहरी से) जाओ, सुप्रिय को बुला लाओ!

मालिनी—महाराज, मेरा हृदय काँप रहा है। न जाने कौन-सी परम तेजमान पत्थर सी शक्ति है इसके मुँह पर ! रक्षा करो पिता, उन्हे न बुलाओ यहाँ!

राजा—बेटी, शंकित क्यो होती हो व्यर्थमें, यहाँ कोई भय नही है सुप्रिय को।

क्षेमंकर के पास सुप्रिय का आना

क्षेमंकर—(सुप्रिय को आलिंगन कर लेने के बाद) रहने दो, रहने दो, मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, मुझे पहले कह लेने दो उसके बाद क्षेम कुशल होगी।

यहाँ आओ। मित्र जानते हो मुझे मै बचनो का भिखारी हूँ, मुझे अधिक बातें करनी नही आती। समय भी अधिक नही है, मेरा विचार हो चुका है। बताओ तो भला, तुमने यह कार्य क्यो किया है ?

सुप्रिय—एक बन्धु है श्रेष्ठ से श्रेष्ठ, मेरी आत्मा का विश्वास यही है, और मैंने अपने को उसी के विश्वास पर छोड दिया है। प्राणो से प्यारे मित्र वही मेरा धर्म है।

क्षेमकर—मैं सब कुछ जानता हूँ, जानता हूँ भाई कि तुम्हारा धर्म क्या है ? वह रहा सामने शान्त मुखडा अन्तर्ज्योति से चमकता हुआ, राज्य के रूप में वही है तुम्हारे लिये मूर्तिमय देववाणी, है ना ! चारो वेदो से श्रेष्ठ अपने सनातन धर्म की इसकी सौम्य दृष्टि की अग्नि में तुमने आहुति दे दी है।

सुप्रिय—ठीक समझे हो मित्रवर मुझे ! मेरा धर्म तो इस दीन भूलोक में नारी रूप रखकर अब जन्मा है। अब तक शास्त्र मेरे लिये अन्य जीवन सदृश्य थे। इन्ही नेत्रो मे जो उज्जवलदीप शिखा जल रही थी उसके प्रकाश में मैंने विश्वशास्त्र मे जो लिखा था पढा। धर्म वही है, जहाँ दया है, धर्म वही है जहाँ प्रेम है, स्नेह है, धर्म वही है जहाँ मानव है, जहा मानव का अपना घर है। मैं समझ गया धर्म माता के रूप मे स्नेह देता है और धर्म पुत्र के रूप में स्नेह लेता है। दाता के रूप मे धर्म दान देता है और याचक के रूप मे वह दान को ग्रहण करता है। शिष्य के रूप में वह भक्ति करता है और गुरु के रूप मे आशीर्वाद देता है, हृदयेश्वरी होकर पत्थर से हृदय मे प्रेम डालती है और हृदयेश होकर ग्रहण करता है वह। और फिर विरक्त होकर वह सब कुछ त्याग देता है। धर्म ने विश्वलोकालय में मोह डाल दिया है और फिर समस्त विश्व को क्रीडागन में लपेट दिया है। उसी महाबन्धन ने मेरे प्राण बाँध दिये हैं। यही मेरा धर्म है !

क्षेमकर—मैंने क्या उसे देखा नही ? मैंने क्या क्षण भर के लिये नशे मे यही नही सोचा था कि सनातन धर्म नारी का रूप लेकर पाषाण पुरुष मनको छीनकर स्वर्ग की ओर ले जाना चाहता है ? क्षणभर के लिये मेरे मुग्ध-मन में भी क्या वही स्वप्न नही आया था ? अपूर्व सगीत से वक्ष की पसलियाँ

मेरी भी रो उठी थी, मेरे जीवन की आशा की बेल ने चहुँओर से लिपट कर मेरे हृदय को पत्तो और फूलो से मोह लिया था, एक क्षण में मैंने अपनी पूर्ण सफलता समझी थी मित्र ! तो भी क्या वल पूर्वक मैंने माया के बन्धन को नही तोड फेका, चला नही गया था क्या मै देश-देश के द्वार-द्वार भीख माँगने को ? मैंने अपने माथे पर क्या नीच हाथ का अपमान नही लिया ? क्या मैंने अपने एकमात्र बन्धु का विछोह स्वीकार नही किया था अप्रसन्नता से ? पर जब सिद्ध स्वय ही आरही थी पहनाने के लिए विजय वर माला, तब तुमने यहाँ बैठकर क्या किया—राजप्रासाद के सुखके पालने मे पड़े-पडे कौन-सा धर्म सीखा, इस इतने लम्बे समय मे। बोलो ना ?

सुप्रिय—धैर्य रखो बन्धु ! यह विश्व क्या विशाल नही है ? क्या इसमें असंख्यों जीवन अनेक प्रकार के स्वभाव के नही हैं ? किसको क्या प्रयोजन है यह सब बाते तो तुम जानते नही हो। आकाश में असख्य तारे हैं, भला रात-दिन वे क्या विवाद किया करते हैं बन्धु क्षेमंकर ? ठीक इसी प्रकार अपने अपने दीपक जलाकर यहाँ असख्य धर्म जाग रहे हैं, जागने दो न उन्हे, इसमे हानि ही क्या है ?

क्षेमकर—मित्र, तुम्हारी बातो का यह जाल सब व्यर्थ है मेरे लिये। मेरा समय समाप्त हो रहा है, बातो का यह जाल झूठा है,सारे तर्क झूठे हैं। लाखो सत्य, और लाखो मिथ्या धर्म पास-पास इस ससार मे पलते रहे, बिना किसी विरोध के इतना स्थान इस ससार में कहाँ हैं ? अन्न के रूप मे जहाँ धान नित्य पैदा होता है वहाँ अब तुम नित्य काँटे बोओगे न मित्र ! प्रेम इतना व्यापक नही है। जहाँ सत्यसनातन धर्म था मित्र के हृदय मे विश्वासघात को बिठाओगे अब ! कोई तो धर्म के लिये मर मिटे, कुस्थान मे चोरो के सदृश्य अनेक अत्याचार सहकर और कोई धर्म-व्रत को त्याग कर सुख से जीवे, सम्मान के साथ। यह धरणीतल ऐसा विपरीत धर्म भार वहन कर सके, इतना सुदृढ इसका वक्ष नही हैं, नही, कभी नही।

सुप्रिय—(मालिनी की ओर मुडकर) हे देवि, तुम्हारी ही जय हुई। अपने कर-कमलों से जो शिखा तुमने मेरे हृदय मे जलायी है, आज उसकी परीक्षा हो

गई, तुम्हारी ही जय हुई। सारे अपमानो का भार, समस्त निष्ठुर घात मैं आज प्रसन्नता से वहन करता हूँ। खून उबल उठता है, विद्रोह की तरह विदीर्ण हृदय मे, तो भी तुम्हारी शाति सम्पूर्ण हैं। तुम्हारा प्रेम पूर्ण है देवि! तुम्हारा मगलमय प्रकाश आज सर्वोच्च स्थान पर बैठा है। भक्त की आज परीक्षा हो गयी, जयदेवी! (क्षेमकर की ओर मुडकर) क्षेमकर तुम प्राण दोगे अपने धर्म के लिये। मैंने तो दान दिया है तुम्हारा विश्वास, जो तुम्हारे प्रेम से भी बढकर है। जिसके आगे प्राण-भय सौ-सौ बार तुच्छ है!

क्षेमकर—यह प्रलाप वाणी छोडो, मै मृत्यु को ही धर्मराज मानता हूँ, धर्म की परीक्षा उन्ही के आगे होगी। बन्धुवर आओ, आओ, आओ मेरे पास, मेरे हाथो, आओ साथ-साथ चले वहाँ! स्मरण हैं वह दिन बचपन के। जब रात-रात भर तर्क करते थे आपस मे, पर प्रात होते ही साथ-साथ गुरूजी के पास जाते थे। रात के तर्कों का निर्णय कराने कि कौन सच्चा हे और कौन झूठा। मैं वैसा ही प्रभात आज चाहता हूँ। अपनी समस्त शकाएँ हम लेकर चले साथ उस अक्षय धाम को। दोनो मृत्यु की बगल मे खडे हो दाहिने बाये अपनी-अपनी शकाएँ और प्रश्न लेकर। जहाँ सत्य प्रत्यक्ष प्रकाशित है, वहाँ क्षण भर मे पर्वत सदृश्य विचार-विरोध भाप की तरह उड जायेगा। और फिर हम दोनो अबोध हँसा करेंगे एक दूसरे को देखकर। जिसे तुम सबसे बडा समझते हो, उसे वही छोड दो, देखो सामने मृत्यु है।

सुप्रिय—मित्र ऐसा ही हो!

क्षेमकर—तो आओ, आओ, चिपट जाओ मेरे वक्ष से, तुम बहुत दूर चले आये थे मित्र भटक कर, अब आओ फिर से मेरे पास, यहाँ हम दोनो का अनत तक विछोह नही होगा। लो ग्रहण करो अपने बन्धु के हाथ का शेष करुण विचार, यह लो!

क्षेमकर लौह कड़ियाँ सुप्रिय के माथे में अपने पूरे बल से मारता है जिससे सुप्रिय पृथ्वी पर गिर पड़ता है।

सुप्रिय—देवी तुम जीती, तुम्हारी जय हो।

सुप्रिय की मृत्यु हो जाती है

क्षेमकर—बुलाओ अब घातक को, बुलाओ ना ?

राजा—(सिंहासन छोड़कर) अरे कोई है ! शीघ्र तलवार लाओ ।

मालिनी—पिता ! राजन् क्षमा करदो क्षेमकर को, क्षमा करदो ।

(मूर्छित होकर गिर पड़ती है ।)

कर्ण और कुन्ती

पात्र-परिचय

कर्ण	कौरवो का सेनापति
कुन्ती	कर्ण की माँ, पाडु की रानी

प्रथम दृश्य

(पांडु की रानी कुन्ती के गर्भ से विवाह से पूर्व एक बच्चा पैदा हुआ था, जिसे उन्होंने लोक-लाज के कारण त्याग दिया था, आगे चलकर इसी बच्चे का नाम कर्ण पड़ा।)

जाह्नवी के किनारे सध्या समय कर्ण भक्ति मे लीन था, तभी वहाँ कुन्ती पहुच गई।

कर्ण—मेरा नाम कर्ण है, मैं एक गाडीवान का पुत्र हूँ, गगा के किनारे बैठा हुआ सूर्यास्त की पूजा कर रहा हूँ। आप कौन हैं माता जी ? मेरी माता राधा है !

कुन्ती—वत्स ! मैं वह महिला हूँ, जिसने तुमको ससार का यह प्रकाश सर्वप्रथम दिखाया, और विश्व से परिचय कराया। आज मैं अपने कुल की सब लाज तजकर तुम्हे अपना परिचय देने आई हूँ।

कर्ण—देवी मैं आपकी बात समझा नही ! आपके नेत्रो की दृष्टि मेरे हृदय को इस प्रकार पिघलाये जा रही है जैसे पहाड़ की चोटी पर बर्फ को सूर्य की प्रात की किरणें पिघला देती हैं। आपकी आवाज, लगता है पूर्व जन्म में भी सुनी थी जो कानो के द्वारा हृदय में पहुचकर वेदनाये जगा रही है। अहो ! कौन-सी रहस्य डोरी है जो मेरे जन्म को तुम्हारे साथ बाँध रही है ! अपरिचिते बताओ तो ?

कुन्ती—क्षण भर धीर धरो पुत्र ! तनिक सूर्य भगवान अस्त हो लें और सध्या के अन्धकार को तनिक गहरा हो लेने दो। सभी कुछ बताती हूँ। सुनो, मैं कुन्ती हूँ !

कर्ण—कुन्ती ! आप !! अर्जुन की माताजी !!!

कुन्ती—हाँ ! मैं ही अर्जुन की माँ हूँ, पर यह सोचने भर से अपने मन में विद्वेष मत करना। मुझे रह-रहकर हस्तिनापुर का वह दिन याद आता है,

जिस दिन अस्त्र परीक्षा हुई थी। तरुणकुमार तुम रगशाला मे धीरे-धीरे इस प्रकार बैठे थे मानो रात्रि की समाप्ति पर पहली किरण प्रकाशित हुई हो और पर्दे के पीछे महिलाएँ बैठी थी। उन्ही मे एक अभागिन बैठी थी जिसके नेत्रो से प्रेमाश्रु बह रहे थे और जो विपधर की तरह उसके कपोलो से ढुलक कर गोद में पड़ रहे थे, वह और कोई नही मै ही थी, अर्जुन की मा। उस समय जब तुम से ब्राह्मण ने पिता का नाम पूछा था और कहा था तुम राज्य वश से पैदा नही हो, इसलिये अर्जुन से युद्ध करने का तुम्हे कोई अधिकार नही है, तो तुम शान्त नीचे को गर्दन लटकाये खडे रहे थे। भला उस समय की तुम्हारी लज्जा से किस भाग्यहीना के हृदय को ठेस लगी थी ? वह अर्जुन की मा ही थी। दुर्योधन-सा पुत्र धन्य है जिसने तुमको तत्काल अपनाकर राज्याभिपेक किया। वह कार्य वास्तव मे प्रशसनीय था। मेरे नेत्रो से उस समय कितने हर्ष के अश्रु बहे थे तुम्हारे अशीर्वाद के हितार्थ, इसे मै ही जानती हूँ। इस प्रकार कौरवो को एक योधा मिल गया। जब अधीरथ रथवान भीड को चीरता हुआ बाहर निकला तो तुमने अपना राज्य मुकुट उसके चरणो में रख दिया, उस समय पाडव हँसने लगे··· पर उस समय ऐसी कौन स्त्री थी जिसका हृदय बहादुरी को देखकर उछलने लगा···वह मै ही अर्जुन की जननी थी।

कर्ण—राजमाता आपको प्रणाम ! पर आप यहाँ अकेली कैसे आई हैं, यह युद्धस्थल सहारक है और आप जानती हैं मै कौरवो का सैनापति हूँ।

कुन्ती—तुमसे एक भिक्षा माँगने आई हूँ। ना न करना पुत्र !

कर्ण—राज माता ! मुझ से भिक्षा ! पौरुष-अतीत और धर्म के विरुद्ध जो भी आप कहेगी मैं कर बाँध आपके चरणो मे अर्पित कर दूँगा।

कुन्ती—मैं तो तुम्हे लेने आई हूँ।

कर्ण—मुझे ! राजमाता भला कहाँ ले जाओगी मुझको ?

कुन्ती—मैं तुम्हे वक्ष मे रखना चाहती हूँ, जो कि तुम्हारे लिये बेकरार है !

कर्ण—राजमाता ! आप पाँच पुत्रो की भाग्यवान मा हैं। मै तो एक साधारण-सा राजा हूँ और वह भी हीन कुल का, भला मुझे हृदय मे कैसे स्थान दे सकोगी ?

कुन्ती—मैं तुम्हे अपने हृदय में सर्वोच्च स्थान दूंगी, क्योकि उन पाँच पुत्रो से भी तुम बडे हो।

कर्ण—वहाँ प्रवेश पाने का भला मुझे क्या अधिकार है। जिनका सारा राज्य वैभव छीन लिया गया है, उनका एक मात्र मातृस्नेह कैसे मै बाँट लू स्वार्थी वन कर। माता का हृदय ऐसा होता है जिसे धन से प्राप्त नही किया जा सकता। यह तो विधाता का ऐसा दान है जिसे न कोई वाहुबल से जीत सकता है न अन्य किसी प्रकार से।

कुन्ती—मेरे बेटे, मेरे लाल, एक दिन भगवान से यही अधिकार प्राप्त करके तुमने मेरी गोद में जन्म लिया था। बिना किसी विचार और सोच के उसी अधिकार के साथ गौरव सहित आओ। अपने भाइयो के बीच मा की गोद का स्थान तुम भी प्राप्त करो।

कर्ण—देवी ! तुम्हारी वात मैं स्वप्न की तरह सुन रहा हूँ। सारे ससार में अँधेरा छा गया है, चारो ओर के दृश्य छिप गये हैं, जाह्नवी भी शान्त है। आप मुझे किस मायालोक में खीच ले गयी हैं, जहाँ मेरी चेतना शून्य हो गई है। मेरा हृदय आपकी वाणी सुनकर मुग्ध हो गया है, लगता है मेरा अस्फुट शैशवकाल अन्धकार के जाल में मुझे लपेट रहा है। हे राजमाता आओ ! सत्य हो या स्वप्न आप आओ और अपना वरद हस्त मेरे मस्तिष्क पर रख दो क्षण-भर के लिये। मैंने लोगो से सुना था कि जब मैंने जन्म लिया था तो माँ मुझे त्यागकर चली गई थी। मैं त्याज्य पुत्र हूँ। मैंने वहुत बार स्वप्न में देखा कि मेरी माता दयालु होकर धीरे-धीरे मेरे पास आई मुझे देखने के हेतु और ज्योही मैंने कातर हो विनय की उससे कि माँ अपना चेहरा मुझे दिखाओ, तो वह स्वप्न मूर्ति तुरन्त छिप गई और इस प्रकार मेरा सुख-स्वप्न टूट गया। आज वही स्वप्न सत्य हो रहा है जो पाडवो की माँ जाह्नवी के किनारे सन्ध्या के समय मेरी जननी के रूप में आई है रणक्षेत्र में। देवी उस पार तो देखो पाडवो के शिविर में अँधेरे को दूर करने के लिये दीप जल गये हैं, और इस पार नज-दीक ही कौरवो की घुडसाल में घोडो के खुरो की टपटप की आवाज आ रही है। कल का प्रभात युद्ध का आरम्भ होगा, तब आज की रात अर्जुन की माँ के

कण्ठ से मुझे अपनी माँ का स्नेह-स्वर मधुर सगीत-सा सुनाई क्यो पडा, तभी तो मेरा मन पाडवो की ओर उन्हे भाई समझकर दौड रहा है।

कुन्ती—तभी तो कहती हूँ पुत्र आओ मेरे साथ, मेरा कहना मानकर।

कर्ण—माँ अब कुछ सशय या सोच नही रहा, तुम्हारे साथ चलूंगा। मुझे अब तुमसे कुछ नही पूछना तुमतो मेरी माता हो, सोचने की कोई बात ही नही रह गई। स्नेह पाकर मेरी अन्तरात्मा जाग्रत हो उठी है। अब मेरे कान रण-भेरी और जयशख नही सुनते हैं। मुझे लगता है युद्ध की हिसा, बहादुरो की प्रसिद्धि और हारजीत मिथ्या है। कहाँ ले चलोगी, चलो!

कुन्ती—वहाँ, उस पार, शान्त स्कन्धावार मे, जहाँ दीप जल रहे हैं पाडवो के डेरो पर!

कर्ण—वहाँ पर ये मातृहीन प्राणी माँ का स्नेह पायेगा! ध्रुवतारे की तरह अटल और गगाजल की तरह शुद्ध माँ का स्नेह। देवि! एक बार फिर कह दो—तुम मेरे ही पुत्र हो!

कुन्ती—मेरे पुत्र!

कर्ण—माँ बताओ, तुम किसलिये मुझे मातृस्नेह से वचित कर रेत पर फेंक-कर चली गई थी, जहाँ मुझे मान के बदले अपमान मिला था? मुझे क्यो सदैव के लिये अवज्ञा स्रोत मे बहा दिया था, क्यो मुझे तुमने भाइयो के परिवार से अलग कर दिया था? तुमने मुझे अर्जुन से अलग कर दिया था इसीलिये शैशव दोनो को खीच रहा है, द्वेप का रूप रखकर। माता तुम्हारे पास मै जानता हूँ, इसका कोई उत्तर नही है। शायद तुम्हे अपने किये का पछतावा हो रहा है, तभी तो लज्जा के कारण तुम्हारी दृष्टि नीची हो गई है। अच्छा माँ जाने दो, मत बताओ मेरे त्यागने का क्या कारण था। मै अब इस बात का उत्तर नही चाहता हूँ माँ कि तुमने ससार के सर्वश्रेष्ठ सुख माँ के स्नेह से मुझे क्यो वचित किया था, पर फिर भी मैं जानता हूँ कि उन अज्ञात सब बातो को आज त्यागकर मुझे गोद मे लेने क्यो आई हो?

कुन्ती—पुत्र! तुम्हारी भर्त्सना पत्थर के समान है, जो मेरे हृदय को टूक-टूक किये दे रही है। तुम्हारा मैंने त्याग किया था यह उसी श्राप का तो दड

है कि आज मै पॉच-पाँच पुत्रो की माँ होकर भी महसूस कर रही हूँ कि मैं निपुत्री हूँ। त्यागे हुए पुत्र को पाने के हेतु मै दीप जलाकर विश्व-देवता की आरती किया करती थी, मेरा अहोभाग्य जो आज तुमसे मिल सकी। जब तुम बोल भी न सकते थे, तभी मैंने महान् अपराध किया था, सो तेरी भर्त्सना ज्वाला प्रज्वलित होकर मेरे हृदय के उस समय के पाप को जलाकर भस्म कर देगी और मै पुन पवित्र हो जाऊँगी।

कर्ण—मॉ मुझे चरण-स्पर्श कर लेने दो, जिससे मै अपने को धन्य कर सकूँ और मेरे श्रद्धारूपी अश्रु स्वीकार करो।

कुन्ती—बेटा मै केवल इसलिये तुम्हारे द्वार पर नही आई कि तुम्हे प्यार करके वक्ष से लगा लूँ। मेरी यह इच्छा दृढ है कि तुम्हे लौटाकर तुम्हारा वह अधिकार दे दूँ जिससे तुम वचित रहे हो। तुम सूत-पुत्र नही हो, राजा की सन्तान हो। अपने हृदय से पूर्व का सारा अपमान दूर करके मेरे साथ वही चलो जहाँ तुम्हारे पाचो भाई हैं।

कर्ण—जननी! मैं तो सूत पुत्र ही हूँ, मेरी माँ तो राधा ही है, और इसीमे गौरव भी है। मुझे किसी से कोई ईर्ष्या नही है, पाण्डव पाण्डव रहे, और कौरव कौरव रहे, मुझे क्या?

कुन्ती—बाहुबल से अपनी चीज का उद्धार करके राज्य पर अधिकार करो। युधिष्ठिर जैसे गम्भीर योधा तुम्हारे सहकारी होगे, भीम छत्रधर होगा और अर्जुन सा सारथी होगा। धौम्य जैसा पुरोहित होगा जो नित्य वेदगान किया करेगा। मेरे प्राणो से प्रिय पुत्र तुम शत्रुओ को जीतकर के अखड प्रतापी राजा वन शत्रुहीन साम्राज्य के रत्नजटित सिंहासन को सुशोभित करो।

कर्ण—हे माता! जिसने मातृस्नेह तक मुझसे छीन लिया, वही मुझे सिंहा-सन का आश्वासन दे, असम्भव है ना। जिस दौलत को तुमने मुझसे एक दिन छीन लिया था उसे अब फेरना तुम्हारे सामर्थ्य की बात है? माँ तुमने मेरा उच्च राज्यवश, मेरे भाई सब कुछ मुझसे छीन लिये मेरे जन्म लेते ही, तब तुमसे और क्या आशा करूँ? सूत-जननी से कैसे छल करूँ, आज राजमाता को माता कहकर। माँ जिन बन्धनो से मैं कौरवो से बँधा हूँ, यदि उन्हे तोडकर

आज तुम्हारे साथ चला गया तो मुझे सौ-सौ बार धिक्कार है ।

कुन्ती—बहादुर तू मेरा पुत्र है । तू धन्य है ! ऐ धर्म तेरा कितना कठोर दण्ड है ! उस दिन कौन जानता था कि जिस छोटे शिशु को मैं असहायावस्था मे तज रही हूँ एक दिन सामर्थ्यवान बन वही फिर आयेगा । अन्धकार मय मार्ग से सिर उठाकर और, पाषाण-हृदय बन अपने शस्त्र अपनी ही माँ की अन्य सन्तानो पर चलायेगा । कैसा श्राप है ये ।

कर्ण—माँ ! भय मत करो । मै कहता हूँ युद्ध मे पाण्डवो की जय होगी, मुझे युद्ध का फल स्पष्ट दीख रहा है । माँ मेरा कहना मानो, जिस पक्ष की हार स्पष्ट दीख रही है, उससे नाता तोडने के लिये मत कहो । मेरी अच्छी माँ मुझे ऐसी आज्ञा मत देना । पाण्डवो को राजपाट जीतना है तो जीतने दो, मैं तो केवल हारने और मृत्यु के घाट उतरने वालो का साथ दूँगा । बहुत समय हुआ जब मै पैदा हुआ था तो आप मुझे नग्न और बिना नाम का छोडकर चली गई थी । आज भी मुझे हार और मृत्यु के सामने फेककर चली जाओ, और आशीर्वाद देती जाओ माँ कि विजय के लोभ या राज्य के लोभ से मै वीर की गति पाने के मार्ग से भ्रष्ट न हो पाऊँ ।

कुन्ती बाहर चली जाती है ।

(यवनिका गिरती है ।)

मुक्त धारा

पात्र-परिचय

राजा रनजीतसिंह	
मंत्री	
भभूती	दरबारी इजीनियर
विश्वजीत	राजा का चाचा
रामकुमार	राज्य का होने वाला राजा
धंजय	वैरागी
गनेश	प्रजा का नेता
अम्बा	एक चढते दिमाग की स्त्री
विजयपाल	सेनापति

इनके सिवाय, अजनबी, नागरिक, हलकारा, पहरेदार, मास्टर, बच्चे, फूल वाली, बिशन, मुसाफिर, ननकू, हव्वा, भरती करने वाला, ककर, नरसिंह, बन-वारी, पुजारी, तथा अन्य पात्र ।

प्रथम दृश्य

पहाड़ी स्थान। एक सड़क भैरो के मंदिर की ओर जाती दिखाई देती है। खेल के अन्त तक यही दृश्य रहेगा। लोहे का एक बहुत बड़े यन्त्र का ढाँचा दिखायी दे रहा है, इसके समकक्ष भैरो के मंदिर का कलश है। सड़क के किनारे उत्तरकोट के राजा रनजीतसिंह के डेरे दिखाई दे रहे हैं। वह सन्ध्या का मेला देखने जा रहा है। राजा का इंजीनियर भभूती २५ वर्ष के दिनरात के श्रम के पश्चात् मुक्तधारा (नदी का नाम) पर बाध बांधने में सफल हो गया। उत्तर-कोट के निवासी भैरो के मंदिर में भेंट चढा रहे है और मंदिर में मेले की तैयारी हो रही है। इंजीनियर भभूती की सफलता की प्रसन्नता में मेला किया जा रहा है।

मदिर के पुजारी सामने हैं, और मदिर के चारो ओर घूम रहे हैं। भैरो देवता के गीत गा रहे हैं। तासे, खडताल और नाथ बजा रहे हैं।

एक अजनवी पूजा के लिये कुछ भेंट लिये प्रवेश करता है और उत्तरकोट के नागरिको से मिलता है।

अजनवी—अरे भाई! यह आकाश को छूती हुई क्या वस्तु है। उफ! कितनी भयानक है।

नागरिक—क्या तुम्हे इसके बारे मे जानकारी नही है, प्रतीत होता है तुम अजनवी हो।..... यह एक यन्त्र है।

अजनवी—यन्त्र ! कैसा यन्त्र ?

नागरिक—राजा के इंजीनियर भभूती ने २५ वर्ष के पश्चात् इस यन्त्र को बनाया है, और अभी कल ही वनकर तैयार हुआ है। उसी शुभ घडी के लिये यहाँ मेला हो रहा है।

अजनवी—इस यन्त्र से क्या होगा ?

नागरिक—इस यन्त्र ने मुक्त धारा का पानी रोक दिया है।

अजनवी—कितना भयानक है यह। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई बहुत बडा राक्षस अपना मुँह खोले हुये है। इसे हर क्षण देखते रहने से हमारी तुम्हारी आत्माएँ निर्बल हो जायँगी।

नागरिक—हमारी तुम्हारी आत्माओं के बचाव के लिये भगवान ने हमें बहुत मोटी चमडी दी है।

अजनवी—कुछ भी हो, ऐसी वस्तु को नक्षत्रो और सूर्य के समक्ष नगा नही रखना चाहिये। ऐसा प्रतीत होता है कि यह डरावनी वस्तु आकाश और पृथ्वी के बीच रोक बनकर खडी है।

नागरिक—यह तो बताओ कि क्या तुम भैरो देवता की पूजा के लिये नही चलोगे ?

अजनवी—मै इसीलिये घर आया हूँ, और प्रतिवर्ष इसीलिये घर आया करता हूँ, पर इससे पहले मैंने इतनी बडी रोक नही देखी थी। देखो तो सही यह यन्त्र तो मदिर के कलश से भी ऊँचा है। ये तो मदिर की हीनता हुई।

(वह चला जाता है।)

एक स्त्री 'अम्बा' प्रवेश करती है वह एक श्वेत चादर ओढ़े हुई है जो जमीन पर घिसट रही है।

अम्बा—सुमन ! मेरा सुमन ! क्या मेरा सुमन लौटकर नही आयेगा ? जब तुम सब लौट आये हो, तो वह क्यो नही लौटकर आया ?

नागरिक—तुम कौन हो ?

अम्बा—मैं जनाई गाँव की अम्बा हूँ। सुमन मेरा बेटा, मेरी आँखो की ज्योति ! मेरा तारा ! मेरे जीवन की आशा !

नागरिक—उसे हुआ क्या है ?

अम्बा—मैं भी तो नही जानती, पता नही ये लोग उसे कहाँ ले गये। मैं भैरो देवता की पूजा के लिए अन्दर गई थी, जब बाहर आई तो पता नही उसे कहाँ ले गये थे।

नागरिक—तो फिर उसे नदी के बाध बनाने के लिए भर्ती कर लिया होगा।

अम्बा—मैंने सुना है कि उसे गौरी पहाड़ी की ओर ले गये हैं, वहाँ तक तो मै देख नही पाती, अब बताओ उसे मैं कैसे देखूँ ?

नागरिक—क्यो जी को दुखी कर रही हो, हम सब मन्दिर मे जा रहे हैं तुम भी चली आओ ! आज बहुत बडा दिन मनाया जा रहा है।

अम्बा—नही, नही ! जब से मेरा सुमन मुझ से छिन गया है, मै मन्दिर में जाने से डरती हूँ। मै तुम्हे बताऊँ कि हमारी पूजा देवता तक नही पहुँचती है। कोई आदमी मार्ग में ही हमारी भेट छीन लेता है।

नागरिक—भला कौन है वह ?

अम्बा—वही जो मेरे सुमन को मुझसे छीनकर ले गया है, मै नही जानती कि वह कौन है। आह मेरा सुमन ! मेरा प्राणो से प्यारा सुमन !

(वह चले जाते हैं।)

राजकुमार का हलकारा भभूती को मिलता है, जब कि वह सड़क से मन्दिर की ओर जा रहा है।

हलकारा—भभूती ! मुझे राजकुमार ने आपके पास भेजा है !

भभूती—राजकुमारी क्या चाहते हैं ?

हलकारा—आप बडे समय से नदी की धार को रोक लगाने मे लगे हुये हैं। कई बार बाँध टूटा और उसके साथ हजारो जीव बह कर चले गये, और आज···

भभूती—और आज मैं सफल हो गया हूँ, और मानव की बलि काम आ गई है।

हलकारा—शिवतराई के रहने वालो को इसका पता नही है, वह तो कभी इस बात को स्वीकार भी नही कर सकते कि जो पानी भगवान ने मनुष्य के लिये भेजा है, वह इन्ही से रोका भी जा सकता है।

भभूती—भगवान ने इनको पानी दिया, तो उसी भगवान ने मुझको इतनी शक्ति दी कि मैं उस पानी को रोक सकूँ।

हलकारा—वह तो यह भी नहीं चाहते कि थोडे दिनो के लिये इनके खेत···

भभूती—यह खेतो की कहानी क्यो ले बैठे हो, मुझे इनके खेतो से क्या

मतलब ?

हलकारा—क्या आपने यह नही सोचा कि पानी के विना इनके खेत बजर की शक्ल में बदल जायेगे ।

भभूती—मुझे तो केवल यह सोचना था, कि आदमी पानी, रेत और पत्थरो पर किस प्रकार विजय पा सकता है, ये शक्तियाँ आदमी के विरुद्ध थी इस प्रकार यह बहुत बडा काम था । भला मैं थोडे से मक्का के खेतो के लिये क्यो अपने इरादे को छोड देता ।

हलकारा—राजकुमार की आज्ञा है कि आप इस बात पर फिर से सोचे ।

भभूती—मुझे तो केवल यत्र के सम्बन्ध मे सोचना है ।

हलकारा—क्या भूख और प्यास की वस्तुएँ तुम पर प्रभाव नही डाल सकती ?

भभूती—नही ! पानी का दबाव मेरे बनाये बाँध को ढकेल नही सकता । भूख और प्यास की वस्तुएँ मेरे यत्र को अपने स्थान से हिला भी नही सकती ।

हलकारा—क्या तुम्हे लोगो के श्राप का भी तनिक-सा डर नही है ?

भभूती—(मुस्कराकर) श्राप ? जब उत्तरकोट मे श्रमिक नही रहे थे, तब राजा की आज्ञा से अठारह वर्ष से अधिक के समस्त युवक टपाना गाँव से घसीट लाया था, और उनमे से अधिकतर वापिस नही जा सके । माताओ के श्राप देने के पश्चात् भी मेरा यत्र खडा हो गया । जो भगवान की शक्ति से लडना जानता है, वह मनुष्यो के श्राप से नही घबराया करता ।

हलकारा—राजकुमार की आज्ञा है कि आपने एक नया आविष्कार किया और अब इस आविष्कार को नष्ट करके नाम पैदा करो ।

भभूती—जब तक मेरा काम समाप्त नही हुआ था, तब तक मेरा था, और जब वह कार्य पूर्ण हो गया तो सारे उत्तरकोट का है । अब मुझे कोई अधिकार नही कि मै इसे नष्ट कर दू ।

हलकारा—राजकुमार की आज्ञा है कि वह अधिकार अपने हाथ में लेगे ।

भभूती—क्या यह बात राजकुमार ने कही है ? क्या राजकुमार हमारे नही है ?

हलकारा—राजकुमार ने यह कह दिया है कि ईश्वर की इच्छा बडी है। उत्तरकोट के राजपाट का यह यत्र बीच मे से हटा दिया जायेगा।

भभूती—मै यत्र की शक्ति से यह सिद्ध कर दूँगा कि ईश्वर का सिहासन भी हमारा है। राजकुमार से जाकर कह दो कि अब यत्र को हटाने का मार्ग कोई भी शेप नही रहा है।

हल्कारा—यदि भगवान इसे गिराना चाहेगा तो उसे मार्ग की आवश्यकता नही होगी ? साधारणसा छिद्र भी नष्ट होने के लिये बहुत है।

भभूती—छिद्र ? तुम्हे इसका पता कहाँ से चला ?

हल्कारा—मैं कुछ नही जानता, जो प्रयोग करता है वही जानता है।

(हल्कारा चला जाता है।)

उत्तरकोट के नागरिक मंदिर की ओर जा रहे हैं, मार्ग में भभूती से मिलते हैं।

पहला नागरिक—इजीनियर साहब आप भी कमाल के व्यक्ति हैं आप तो दो दिनो मे चमक उठे।

दूसरा नागरिक—अरे भाई ये तो आपकी आरम्भ से ही टेक थी। कोई व्यक्ति इस भेद को न जान सका कि दौड मे किस प्रकार सबसे आगे रहे। अरे ये वही सिर मुडा भभूती है, पाठशाला मे अध्यापक जिसके कान खीचा करते थे, हमारे साथ ही पढा करता था, और आज तो हमको भी इसने विस्मय मे डाल दिया है।

तीसरा नागरिक—ओ गबरू ! क्या बात है ? क्यो यहाँ मुँह फाडे खड़े हो ? क्या तुमने प्रथम बार भभूती को देखा है ? तनिक फूलो के हार निकालो ताकि हम भभूती को हार पहिनाये !

भभूती—नही-नही ! ऐसा करने से क्या लाभ ?

तीसरा—आपके लिये ही ना ! यदि आपकी बढाई का विचार किया जाय तो आपकी गर्दन ऊँट जितनी लम्बी हो जाय, और हम आपको हारो से लाद दे।

दूसरा—हरीश ! अभी तक हमारा ढोलची नही आया।

पहला—यार वह आदमी तो काहिलो का सम्राट है ! ढोल के बजाय

उसकी पीठ का आदर करना चाहिये ।

तीसरा—अरे भई बात ये है कि हमे तो ढोल बजाना तक नही आता ।

चौथा—मेरे जी में तो आया था कि मैं भभूती के लिये सामन्त का रथ ले आऊँ, परन्तु मैंने सुना है कि महाराज भी पैदल ही आ रहे है; इसलिये हमें भभूती को कधो पर उठा लेना चाहिये ।

भभूती—नही-नहीं यह तुम्हारी अधिकता है मेरे साथ !

पाचवा—कोई अधिकता नही, तुम उत्तरकोट की गोद में पैदा हुये और अब तुम्हे कन्धो पर उठाया जायेगा ?

(वह भभूती को कन्धो पर उठा लेते हैं, नाचते गाते और नारे लगाते सब बाहर चले जाते हैं ।)

राजा रनजीतसिह और उसका मंत्री प्रवेश करता है ।

राजा—मत्री ! तुम शिवतराई की जनता को प्रसन्न करने मे असफल रहे हो, और अब भभूती मुक्तधारा का पानी रोकने में सफल हो गया है, पर ये बात क्या है कि तुम किसी प्रकार की प्रसन्नता प्रगट नही कर रहे हो ! क्या ईर्ष्या करते हो उससे ?

मत्री—महाराज ! क्षमा कीजिये । हमारा ये काम नही कि हम फावडो और कुदालो की सहायता से मिट्टी से खेले ! हमारा हथियार राजनीति है, हम तो लोगो के मस्तिष्क से कार्य लेते हैं । मैंने ही महाराज को यह सम्मति दी थी कि राजकुमार को शिवतराई में भेजा जाय । यदि राजनीतिज्ञतापूर्ण बाँध बधता तो निस्सन्देह बाँध इससे अधिक दृढ होता, जो इस समय भभूती के हाथो से तैयार हुआ दिखाई दे रहा है ।

राजा—पर इसका फल क्या निकला ? दो वर्ष से इन्होने लगान अदा नही किया, यह अकाल तो सदैव ही आया करते हैं, पर वह लगान अदा कर दिया करते थे ।

मत्री—महाराज ! उस समय लगान और टैक्स से भी अधिक मूल्यवान चीज जारी थी, जबकि महाराज ने राजकुमार को लौटने की आज्ञा दी थी। छोटी वस्तुओ को निम्नश्रेणी की समझना राजाओ का कार्य नही हैं । जब

सहन शक्ति शेष नही रहती तब यही छोटी वस्तुएँ कष्ट उठा-उठाकर भारी वस्तुएँ बन जाया करती हैं ।

राजा—मत्री ! तुम सदैव बाहर के समाचार सुनाने मे अपनी आवाज बदलते रहते हो, मुझे अच्छी प्रकार स्मरण है कि तुमने एक बार कहा था ऊँचाई पर बैठे हुये व्यक्ति को नीचे खडे हुये व्यक्तियो पर दबाव डालना आवश्यक होता है, और जो जनता हमारे देश की नही उस पर तो दबाव डालना ही चाहिये !

मत्री—हा ! महाराज मैंने ये कहा था, पर उस समय वातावरण कुछ और ढग का था, इसलिये मैंने आपको ऐसी सम्मति दी थी । पर अब .. ..

राजा—राजकुमार को शिवतराई मे भेजना मेरी सम्मति के विरुद्ध था ।

मत्री—क्यो महाराज ?

राजा—सदैव दूर रहने से लोगो पर प्रभाव रहता है और इसके प्रतिकूल नित्य का मिलना-जुलना पहले आदर को कम कर देता है । तुम अपने देश के निवासियो को प्यार से जीत सकते हो, पर विदेशी राज्य के व्यक्तियो के हृदयो पर आतक के राज्य का ही डर रहता है ।

मत्री—महाराज ! आप भूल रहे हैं, कि राजकुमार को शिवतराई में क्यों भेजा गया था । कई दिनो से हम देख रहे थे कि राजकुमार को किसी क्षण चैन न पडता था और हमे इस बात का विश्वास हो गया था कि राजकुमार इस बात को जान गये हैं कि राजमहल में उन्होने जन्म नही लिया, बल्कि मुक्तधारा के पास से उठाया गया है । हमने यह चाहा कि उनके हृदय को कष्ट न पहुँचे, इसलिये......

राजा—मै जानता हूँ कि वह रात्रि के समय अकेला मुक्तधारा की ओर मुँह करके बैठ जाया करता था । एक बार मैं स्वय भी उसके पीछे-पीछे गया था और उससे पूछा था कि वह इस समय यहाँ क्या करने आया है । तब उसने कहा था—'मै जल तरगो के रौरव में मा की आवाज सुन रहा हूँ ।'

मत्री—महाराज ! एक बार मैंने पूछा था—'राजकुमार ! प्राय आप राजप्रासाद से बाहर क्यो रहते हैं ?' तो उन्होने उत्तर दिया था—'मै दुनिया मे

नये मार्ग खोजने आया हूँ।' राजकुमार के जीवन का यह सबसे बड़ा कारण है, और यह पूरा होना ही चाहिये।

राजा—पर राजकुमार को तो एक बहुत वडा राज्य सम्हालना है, उसका क्या बनेगा ?

मत्री—महाराज ! आपके गुरु जी के गुरु महाराज ने ही यह कहा था।

राजा—सम्भव है वह गलती पर हो, जब मै राजकुमार पर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे घाटा ही घाटा चारो ओर प्रतीत होता है। कुछ दिन हुए उसने नदी की घाटी की दीवार गिराकर हमारे पुरखो की मेहनत पर पानी फेर दिया था। कुछ पता है कि अब क्या होगा ? शिवतराई की ऊन और दूसरी वस्तुएँ बिना रोक-टोक के दूसरी मडियो मे चली जायेगी और तब निश्चय ही उत्तरकोट मे खाने पीने की वस्तुएँ महगी हो जायँगी।

मत्री—महाराज ! आप ये बात न भूले कि राजकुमार नवयुवक हैं और अपने कर्तव्य के एक पहलू को सामने रखते हैं, बस वह यह चाहते हैं कि शिवतराई के रहने वालो का हृदय न दुखे।

राजा—और इसी बात को मैं विद्रोह कहता हूँ। मुझे विश्वास है कि शिवतराई के वैरागी धजय का इस मे पूरा-पूरा हाथ है जो राज्य के विरुद्ध जनता को भडकाया करता है हमे इस व्यक्ति को उसकी माता सहित बन्दी बना कर स्वर्गलोक पहुँचा देना चाहिये।

मत्री—मैं महाराज की बात को झूठी सिद्ध नही कर सकता। पर महाराज भी इस बात से इन्कार नही करेगे कि कभी-कभी कुछ खतरो को चुपचाप सहन भी कर लिया जाया करता है।

राजा—तुम अन्देशा मत करो मत्री।

मत्री—परन्तु महाराज ! मैं यह चाहता हूँ कि आपको किसी बात का अन्देशा न हो।

एक पहरेदार प्रवेश कर रहा है।

पहरेदार—महाराज ! आपके चाचा विश्वजीत राजा मोहन पधारे है।

राजा—एक और आ गया है, यह इन सब का गुरु है, जिन्होने राजकुमार

का सत्यानाश किया है। वह व्यक्ति जो सबधी हो और फिर अन्य हो, वह कुबडे के कूबड की तरह है, जो सदैव उसके साथ रहता है, पर वह इसे काट भी नही सकता। यह कोलाहल कैसा है ?

मत्री—महाराज ! पुजारी मन्दिर से बाहर निकलकर मन्दिर का चक्कर लगा रहे हैं।

(पुजारी गाते हुये निकलते हैं।)

राजा का चाचा विश्वजीत प्रवेश करता है।

राजा—आइये ! मै प्रणाम करता हूँ। मुझे यह बिल्कुल आशा न थी कि आप भी आज हमारी पूजा मे सम्मिलित होगे।

विश्वजीत—मै तुमसे एक बात कहने आया हूँ कि भैरो भी तुम्हारी आज की पूजा किसी प्रकार स्वीकार नही करेगे।

राजा—आपके इन शब्दो से हमारे बडे त्यौहार का आदर कम होता है।

विश्वजीत—त्यौहार ! कैसा त्यौहार ? इस पानी की धारा को रोककर त्यौहार, जो कि देवताओ ने प्यासो के लिये बनाया है ? भला तुमने ऐसा क्यो किया ?

राजा—दुश्मनो को नीचा दिखाने के लिये।

विश्वजीत—क्या तुम परमात्मा को अपना दुश्मन बनाते हुए नही डरते ?

राजा—हमारी विजय परमात्मा की विजय है। वही उत्तर कोट का रखवाला है, यह भगवान की ही इच्छा है कि हम शिवतराई को उत्तरकोट के चरणो में डाल दे।

विश्वजीत—यदि यह सत्य है तो तुम्हारी पूजा पूजा नही हैं, बल्कि टैक्स है जो तुम भगवान को दे रहे हो।

राजा—चाचा ! आप सदैव बाहर के लोगो का साथ देते हैं और अपने देशवासियो का बुरा चाहते हैं। आपने ही ऐसी उल्टी-पुल्टी शिक्षा अभयजीत की दी है जिसके कारण वह . !

विश्वजीत—मैंने शिक्षा दी ? क्या एक वह समय न था जब मै हर तरह से तुम्हारे साथ था। जब तुम्हारे कारण टपाना मे विद्रोह हुआ, तो क्या मैंने

उस विद्रोह को दबाया नही था ? फिर अभयजीत मेरे हृदय मे समा गया, और तब मेरे हृदय का समस्त अधकार दूर हो गया । तुम अभयजीत को अपने घर ले आये, क्योकि तुम्हारा विचार था कि एक दिन यह लडका राजा बनेगा, और आज तुम उसे केवल उत्तरकोट मे बाँधकर रखना चाहते हो ।

राजा—आपने ही यह भेद खोला होगा कि राजकुमार राजा का बेटा नही, वरन् वह मुक्तधारा के पास पडा हुआ पाया गया था ।

विश्वजीत—हाँ मैंने ही कहा । दीपावली के दिन मैंने ही यह भेद खोला । वह अकेला झरोखे मे खडा गौरी पहाडी की ओर देख रहा था । मैंने कहा 'तुम क्या देख रहे हो पुत्र !' उसने उत्तर दिया—'मैं देख रहा हूँ कि आने वाले मार्ग मेरे नेत्रो के समक्ष हैं, वह मार्ग जो अभी तक कठिन घाटियो मे बनाये नही जा सके । इन मार्गो से दूर रहने वाले पास-पास हो जावेंगे ।' जब मैंने राजकुमार के मुँह से ऐसी बात सुनी तो मेरे हृदय मे एक बात आयी कि इस बालक को कभी भी बन्दी नही बनाया जा सकता । इसकी मा ने मुक्तधारा के किनारे इसे जन्म दिया है, और बालक युवा होकर सारे विश्व को अपना बना रहा है तो मुझ से न रहा गया । मैंने केवल मात्र इतना ही कहा—'मेरे पुत्र ! जब तुम सडक के किनारे जन्मे थे तो इस उघाडे पहाड ने ही तुम्हे शरण दी थी !

राजा—अब मै समझा ।

विश्वजीत—क्या समझे !

राजा—जब से राजकुमार अभयजीत ने तुमसे यह बात सुनी, उसे राज-पाट की किसी वस्तु से प्रेम नही रहा । सबसे पहले उसने नदी की घाटी की दीवार तोड डाली !

विश्वजीत—आखिर हुआ क्या ? खुली सडक पर चलने का प्रत्येक को अधिकार है, उत्तरकोट के निवासियो को भी और शिवतराई के रहने वालो को भी ।

राजा—चाचा ! मैंने आपकी बहुत-सी बाते सही, पर अब मुझ मे शक्ति नही रही ! आप मेरी राजधानी त्यागकर तुरत चले जाय ।

विश्वजीत—मै चला जाऊँ ? मै नही जा सकता । हा ! यदि तुम मुझे

त्यागकर चले गये तो मुझको अत्यधिक दु ख होगा ।

(वाहर चला जाता है ।)

अम्बा प्रवेश करती है ।

अम्वा—आप कौन हैं ? सूर्य डूवने लगा, पर मेरा सुमन अभी तक नही आया !

राजा—तुम कौन हो ?

अम्वा—में ? मै तो कुछ भी नही, मेरा जो भी कुछ था वह छीन लिया गया । इसी मार्ग पर छीन लिया गया था । क्या अभी तक मेरा सुमन पहाडी मार्ग पर जा रहा है । सूर्य डूव रहा है, अधेरा वढता आ रहा है । चारो ओर अधेरा ही अधेरा है ।

राजा—(मंत्री से) प्रतीत होता है कि......

मत्री—हा महाराज ! बाध बनाने वाले मजदूरो मे से किसी की मा है । दु ख मत करो, तुम्हारे पुत्र को वडा पुरुस्कार मिल चुका है ।

अम्वा—यदि यह सच है तो वह पुरुस्कार लेकर अवश्य सध्या तक मेरे पास आता । मै उसकी मा हू ।

राजा—वह अवश्य आयेगा ! अभी सध्या निकट नही है ।

अम्वा—भगवान करे तुम्हारी वात सत्य हो, मै तो इसी सडक पर उसकी प्रतीक्षा करूँगी ।

(चली जाती है ।)

एक स्कूल मास्टर थोड़े से लडकों सहित प्रवेश करता है ।

मास्टर—यह पाजी तो केवल डडे से वस मे आते हैं। हाँ जोर जोर से कहो—'राजा की जय ।'

बच्चे जोर से राजा की जय कहते हैं ।

राजा—कहाँ जा रहे हो तुम ?

मास्टर—महाराज आप राज्य के इजीनियर भभूती का आदर वढाने वाले है । मै भी वालको को साथ लेकर इसी प्रसन्नता मे सम्मिलित होने जा रहा हू । मेरे वालक ऐसे अवसर पर अवश्य वहाँ होने चाहिएँ ।

राजा—क्या यह बच्चे जानते हैं कि भभूती ने क्या काम किया है ?

बच्चे—(तालियाँ बजाते और नाचते हुये) हाँ ! हाँ हम जानते हैं, उस शिवतराई के निवासियो को पीने का पानी बन्द कर दिया है।

राजा—उसने पानी क्यो बन्द किया ?

बच्चे—उन्हे पाठ पढाने के लिये।

राजा—किस प्रकार ?

बच्चे—ताकि उन्हे दड मिले।

राजा—क्यो ?

बच्चे—क्योकि वह बहुत बुरे आदमी हैं।

राजा—भला वह बुरे आदमी क्यो हैं ?

बच्चे—बस वह बुरे आदमी हैं, और इस बात को प्रत्येक मनुष्य जानता (आप नहीं जानते क्या ?

राजा—तो तुम नही जानते कि वह क्यो बुरे हैं ?

मास्टर—महाराज ! यह जानते हैं (लडको से) अरे मूर्खो ! तुम्हे क्या ह गया है ? क्या तुमने......तुमने पुस्तको मे नही पढा ?......नही पढा (धीरे से उनका धर्म खराब है।

बच्चे—हाँ-हाँ उनका धर्न खराब है।

मास्टर—और वह हमारी तरह नही हैं। हाँ ! हाँ कहो तुम्हे स्मर नही रहा।

(नाक की ओर इशारा करता है।

बच्चे—हाँ उनकी नाक ऊँची नही है।

मास्टर—शाबाश ! भला ऊँची नाक किनकी होनी है ?

बच्चे—ऊचे धर्म वालो की।

मास्टर—ठीक ! भला ऊँचे धर्म वाले क्या करते हैं। हाँ ! हाँ बोलो !......वह अपने लिये विश्व को विजय किया करते है......बोलो ?

बच्चे—हाँ ! वह अपने लिये विश्व को विजय किया करते हैं।

मास्टर—क्या आज तक उत्तरकोट की किसी युद्ध मे हार हुई है ?

बच्चे—कभी नही !

मास्टर—तुम जानते हो हमारे राजा के दादा ने किस प्रकार २९३ सिपाहियो से दुश्मन के चालीस हजार सिपाहियो को मार भगाया। क्या यह सच नही है ?

बच्चे—बिल्कुल सच है।

मास्टर—महाराज ! आप देखेंगे कि ये बच्चे एक दिन हमारे देश के दुश्मनो को नष्ट कर देंगे। हम मास्टरो पर बडी जिम्मेदारियाँ हैं, और मै एक पल भी नही भूल सकता कि हम मनुष्य बनाते हैं और आपके राजनीतिज्ञ उन्हे प्रयोग में लाते हैं। फिर भी महाराज हमारी और इन राजनीतिज्ञो की पगार मे कितना अन्तर है ?

मत्री—पर यह बच्चे तुम्हारा सबसे बडा पुरुस्कार है !

मास्टर—जी ! आपने सच कहा... बडा पुरुस्कार ... पर किया क्या जाय ! आजकल खाने पीने की समस्त वस्तुएँ महगी हो रही हैं। अब देखिये मक्खन पहले ...।

मत्री—बस रहने दीजिये मास्टर जी ! आपके लिये मक्खन का प्रबध हो हो जायगा। अब आप जा सकते हैं।

(मास्टर लडको सहित चला जाता है।)

राजा—इस व्यक्ति के मस्तिष्क मे मक्खन के सिवाय अन्य कोई वस्तु नही थी !

मत्री—पर महाराज, इस प्रकार के आदमी होते बडे काम के है। जैसी कि उसे आज्ञा दी गई है, उसी प्रकार अपना पाठ पढाता रहता है। यदि इसमे थोडी-सी बुद्धि भी होती तो यह हमारे काम का बिल्कुल न होता।

राजा—वह सामने आकाश पर क्या लटका हुआ है ?

मत्री—महाराज ! क्या आप भूल गये, यह वही भभूती का यत्र है।

राजा—आज तो बिल्कुल स्पष्ट दीख रहा है। क्या तुम नही देख रहे कि यत्र के पीछे सूर्य कितने क्रोध मे चमक रहा है। यत्र को इतना ऊँचा नही होना

चाहिये था !

मत्री—ऐसा प्रतीत होता है कि यह यत्र आकाश के वक्ष मे कॉटे की तरह खटक रहा है।

राजा—आओ चले मदिर की ओर !

(वह चले जाते हैं।)

उत्तरकोट के निवासियो का दूसरा जत्था प्रवेश कर रहा है।

पहला निवासी—क्यो भाई तुमने देखा ? भभूती किस प्रकार हम से कन्नी काटता है ? वह यह दिखाना चाहता है कि वह हमारा आदमी नही है। एक दिन उसे प्रतीत हो जायेगा कि तलवार के लिये यह अच्छा नही कि वह म्यान से अधिक बढ जाय।

द्वितीय निवासी—तुम चाहे कुछ भी कहो, पर भभूती ने उत्तरकोट का नाम ऊँचा कर दिया है।

पहला—यह व्यर्थ की बात है। तुम उसे बेकार बढा रहे हो, यह बाँध दस बार टूट चुका है।

तीसरा—कौन जाने कि यह बाँध अब न टूटेगा।

पहला—क्या तुमने उत्तरकोट की ओर टीला देखा है ?

दूसरा—हॉ ! हॉ क्या है वह ?

पहला—तुम नही जानते ? जिसने भी देखा है वह जानता है कि......

दूसरा—कुछ कहो भी, आखिर वह क्या है ?

पहला—तुम पगले हो। क्या तुम नही जानते कि एक किनारे से लेकर दूसरे किनारे तक......अच्छा छोडो इस बात को !

दूसरा—अरे भाई मेरे पल्ले तो धूल भी नही पडी ! कुछ कहोगे भी ?

पहला—सन्तोप करो ! यह बाध अपने मुँह से ही सब कुछ कह देगा। जबकि अचानक यह टूट जायगा।

दूसरा—अचानक ? उफ ! बडा भयानक दृश्य होगा ?

पहला—हाँ जगरु तुम को बताएगा। उसने एक-एक इच नाप लिया है।

दूसरा—बडा सावधान है यह जगरु तो ! बस वह तो मस्त होकर धैर्य के

साथ अपने काम मे लगा रहता है ।

तीसरा—पर बहुत से व्यक्ति कहते है कि भभूती की सारी कारीगरी · ··

पहला—हाँ । हाँ ।! उसने ये सारी कारीगरी-बकोट बरमा से चुराई है । वह बहुत बडा आदमी था । भला उसकी बराबरी कौन कर सकता था । बडा ही विद्वान था । पर सारा पुरुस्कार तो भभूती ले गया और वह बेचारा एक-एक दाने को तरस-तरस कर भगवान का प्यारा बन गया ।

तीसरा—केवल भूख ?

पहला—कोई क्या जाने ? भूख से मरा था या किसी ने भोजन मे विष दे दिया था । पर अब बात करने से क्या लाभ ? कोई सुनले तो प्रलय हो जाय ! हमारे यहाँ के व्यक्ति तो ऐसे है कि किसी के सबध में अच्छी बात तो सुन ही नही सकते ।

दूसरा—जो कुछ तुम कहते हो . ..

पहला—छोडो उस कहानी को । चलो मदिर चले । हम भभूती के गाँव के निवासी हैं, इसलिए हमारा स्थान उसकी दाहिनी ओर होगा ।

(बातो परदे के पीछे से चला जाता है ।)

आवाज—सज्जनो । वहाँ मत जाओ । यहाँ से ही वापिस चले जाओ !

दूसरा—लो बूढा बातो भी आ गया ।

बातो फटा कम्बल और टेढी सोटी लिये प्रवेश करता है ।

बातो—मित्रो । कान खोलकर सुनो । इस मार्ग पर मत बढो, अभी समय है, वापिस लौट जाओ ।

दूसरा—किस कारण ?

बातो—वह मनुष्यो की बलि चढा रहे हैं । वह बलपूर्वक मेरे दो नातियो को ले गये, और अब तक वापिस नही लाये ।

पहला—अरे पागल । हम तो भैरो मदिर मे जा रहे हैं ।

बातो—क्या तुमने नही सुना ? यह लोग भैरो जी को गद्दी से उतार कर किसी राक्षस को बिठा रहे हैं ।

दूसरा—ओ पागल । अपना मुँह बन्द करो । यदि उत्तरकोट वालो ने यह

सुन लिया तो वह तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर देगे ।

वातो—यह लोग मुझ पर कीचड उछाल रहे हैं, बच्चे पत्थर फेंक रहे हैं, और प्रत्येक यही कहता है......'तुम बडे भाग्यवान् हो जो तुम्हारे दो नाती बलि चढा दिये गये ।'

पहला—सच तो है ।

वातो—सच है । यदि जीवन की बलि से जीवन न मिले और यदि मृत्यु के पश्चात् मृत्यु ही मिलती है तो फिर भैंरो देवता कभी भी ऐसी बलि स्वीकार नही करेगा । सज्जनो ! मै तुम्हे सचेत करता हूँ । इस मार्ग पर आगे मत बढो ।

(वह आगे चला जाता है ।)

दूसरा—भाई ! बात यह है कि इस व्यक्ति की बातो से मेरे रोगटे खडे हो गये हैं ।

पहला—राजू ! तुम बडे कायर हृदय वाले हो आओ चले !

(वह सब चले जाते हैं ।)

राजकुमार अभयजीत और साजे प्रवेश करते हैं ।

साजे—राजकुमार आप केवल राजप्रासाद छोड रहे हैं ?

राजकुमार—तुम नही जानते । तुम जान भी कैसे सकते हो कि मेरा जीवन एक स्वतन्त्र नदी की तरह है । जो राजप्रासाद की चोटी पर से बहना चाहती है ।

साँजे—हम सब देख रहे हैं कि आप कुछ दिनो से बेचैन हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि वह बंधन जो हमारे और आपके बीच था, ढीला हो रहा है । क्या वह बंधन टूट गया ?

राजकुमार—साजे ! तनिक गौरी पहाडी के उस पार देखो, सूर्य किस प्रकार डूब रहा है । एक पक्षी पर फैलाए हुये रात के अंधेरे की ओर बढा जा रहा है । उस धुंधलके मे मेरे जीवन का चित्र खिंच गया है ।

साजे—मेरे लिये तो यह चित्र किसी और ही रग का है । तनिक देखिये तो यह बडा यन्त्र संध्या के वक्ष में किस प्रकार चुभा हुआ प्रतीत होता है । लगता

है कि कोई बडा-सा पक्षी रात के अधेरे मे छलाग मारने लगा है। लक्षण श्रेष्ठ दिखाई नही देते। अब आराम का समय हो गया है, राजप्रासाद मे चलिये।

राजकुमार—जब मार्ग में रुकावट हो तो आराम कैसा ?

साजे—क्या आपने उस रुकावट को ढूँढ लिया है, जिसके सम्बन्ध मे आप कई बार चिन्ता प्रगट कर चुके हैं।

राजकुमार—जब मुझे यह पता चला कि मुक्तधारा का पानी बाँध दिया गया है, उसी क्षण मैंने रुकावट को ढूँढ लिया था।

साजे—मै आपकी बात का अर्थ नही समझा ?

राजकुमार—प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक और जीवन होता है, और उसका भेद कही न कही बाह्य जगत में लिखा होता है। मेरे जीवन का भीतरी भेद भी इसी मुक्त-धारा पर लिखा है। जब पानी की स्वतन्त्रता को रोक दिया गया तो मेरे हृदय को एक बहुत बडा धक्का लगा। उत्तरकोट का राजपाट मेरी जीवन-धारा मे एक रुकावट है। इसीलिये मैं बाहर खुले मार्ग पर आ गया हूँ ताकि स्वतन्त्रता के साथ मैं अपने मार्ग को साफ कर सकूँ।

साजे—क्या आप मुझे अपना साथी न बनायेगे।

राजकुमार—नही! तुम्हे अपना मार्ग स्वय तलाश करना होगा। यदि तुम मेरे साथ चलो तो मेरी परछाई का अँधेरा तुम्हारे मार्ग पर छा जायेगा।

साजे—राजकुमार! इतने कठोर तो मत बनो। आपकी ऐसी बातो से मेरे हृदय को ठेस लगती है।

राजकुमार—तुम मेरे हृदय को अच्छी प्रकार पहिचानते हो, और यदि तुम्हे मुझ से दुख भी पहुँचे फिर भी तुम्हारी राय मेरे बारे में बदल सकती, इतना तुम मुझे जानते हो ?

साजे—मैं आपसे यह नही पूछना चाहता कि आपको ज्ञान कहाँ से मिलता है। इस समय राजप्रासाद की प्राचीरो से रात्रि का सगीत आरम्भ होगया है। क्या यह बुलावा नही है ? मैं यह मानता हूँ कष्टो का आदर कुछ और ही शान रखता है। पर मीठे राग का भी तो कुछ न कुछ मूल्य होता ही है।

राजकुमार—कष्टो के पीछे चलना मीठे राग का मूल्य है।

साजे—आपको स्मरण है, आप एक दिन प्रार्थना कर रहे थे तो आप कमल का पुष्प देखकर ही विस्मय करने लगे थे। किसी ने आपके जागने से पूर्व ही कमल के पुष्प एकत्रित किये और आप यह नही जानते थे कि वह कौन था? इस छोटी-सी घटना पर ध्यान दे राजकुमार एक बार।

क्या आप उस लजीली स्त्री को भी भूल जायेगे जो आपके मार्ग पर कभी नही आई है ?

राजकुमार—हाँ, मैं उसकी श्रद्धा का आदर करता हूँ, और उसके प्रेम के कारण मै घिनौनी बाते सहन नही कर सकता। इससे धरती का सगीत बन्द हो जाएगा ?

बातो प्रवेश करता है।

बातो—वह मुझे आगे नही जाने देते। उन्होने मुझे मारकर पीछे लौटा दिया है।

रामकुमार—क्या बात हुई बातो ? यह तुम्हारे हाथ पर चोट कैसे लगी ? अरे इससे तो रक्त भी निकल रहा है!

बातो—मैं तुम्हे चेतावनी देने आया था! मै कहता हूँ इस मार्ग पर मत चलो, लौट जाओ!

राजकुमार—क्यो भला ?

बातो—राजकुमार! क्या आप नही जानते कि ये लोग यन्त्र पर मानव-बलि चढाने आये हैं! मेरे दो नातियो का रक्त इसकी नीव मे डाला गया है। मै आशा करता था कि पाप के बोझ से यह पाप का घरोदा स्वय ही गिर जायेगा, पर अभी तक गिरा नही, प्रतीत होता है कि भैरो देवता अभी तक सोया हुआ है।

राजकुमार—हाँ! वह समय निकट आ गया है जब यह घरोदा टुकडे-टुकडे हो जायगा!

बातो—(पास आकर मध्यम आवाज मे) राजकुमार! आपने सुन लिया होगा! आपने भैरो देवता की आवाज भी सुन ली होगी!

राजकुमार—हाँ! मै सुन चुका हूँ।

बातो—तो क्या आप भाग नही सकते ?

राजकुमार—मै भाग नही सकता !

बातो—क्या आप नही देखते मेरे शरीर मे से कैसे रक्त बह रहा है ! जब आपका हृदय ही रक्त बन गया तब क्या आप इसे स्मरण रखेगे !

राजकुमार—हाँ ! मै स्मरण रखूँगा ?

बातो—उस समय भी जब प्रत्येक आपका दुश्मन बन गया है और सबने आपको ठुकरा दिया है ?

राजकुमार—हाँ, उस समय भी !

बातो—तो फिर डर किस बात का ?

राजकुमार—डर की सीमा से आगे बढ गया हूँ।

बातो—मै भी उसी मार्ग पर चल रहा हूँ ! मुझे भूल मत जाइयेगा राजकुमार ! आप मुझे अधकार मे भी पहिचान लेगे ! यह घाव देख लीजियेगा जो भैरो देवता ने मेरे माथे पर लगाया है।

(बातो चला जाता है।)

ओधव राजा का रक्षक प्रवेश करता है।

ओधव०—राजकुमार ! आपने नदी की धारा को क्यो खोल दिया ?

राजकुमार—इसलिये कि शिवतराई के लोग भूखो न मर जायँ।

ओधव०—हमारा तो राजा ही बडे कोमल हृदय का है। क्या वह प्रत्येक समय सहायता नही करते ?

राजकुमार—जब दॉया हाथ दान करने से रुक जाता है तो बाँये हाथ से सहायता नही दी जाया करती। मैने इसीलिये शिवतराई का मार्ग खोल दिया है। ऐसी दया का क्या लाभ ? जिससे गरीबो को अपनी दया पर रखा जाये।

ओधव०—महाराज कह रहे थे कि आपने नदी घाटी की सीमा तोडकर उत्तरकोट रूपी नाव की तली मे छेद कर दिया है !

राजकुमार—इससे ये भी लाभ होगा कि शिवतराई सदैव भोज्य पदार्थो के लिये उत्तरकोट की ओर नही देखेगा।

ओधव०—आपने यह कार्य अच्छा नही किया, महाराज को इसकी सूचना

मिल चुकी है। मै इससे अधिक कुछ नही कह सकता कि आप तुरत यहाँ से भाग जायँ !

(चला जाता है।)

अम्बा प्रवेश करती है

अम्बा—सुमन ! मेरे लाडले ! अरे तुम मे से कोई भी तो इस मार्ग पर नही गया, जिस पर मेरे सुमन को ले गये हैं।

राजकुमार—क्या वह तुम्हारे बेटे सुमन को ले गये ?

अम्बा—हाँ ले गये ! इसी ओर, जिस ओर सूर्य डूब रहा है और जहाँ दिन समाप्त हो जाते है।

राजकुमार—मै भी तो उसी मार्ग पर जा रहा हूँ ?

अम्बा—अच्छा राजकुमार एक फूटे भाग्य वाली स्त्री को भी स्मरण रखना। जब तुम मेरे लाडले से मिलो तो कहना तुम्हारी माँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

राजकुमार—अम्बा मै उससे अवश्य कहूँगा।

(अम्बा चली जाती है।)

सेनापति विजयपाल प्रवेश करता है।

विजयपाल—राजकुमार ! मै प्रणाम करता हूँ। मुझे महाराज ने भेजा है।

राजकुमार—महाराज की क्या आज्ञा है ?

विजयपाल—मै एकान्त मे प्रार्थना करना चाहता हूँ।

साजे—(राजकुमार की बाँह पकडते हुये) क्या कहा ? मुझ से भी कोई भेद है ?

विजयपाल—महाराज की आज्ञा ही ऐसी है, राजकुमार ! आप डेरे में चलकर पधारे।

साजे—मै राजकुमार के साथ ही जाऊँगा।

(जाने लगता है।)

विजयपाल—नही-नही, यह नही हो सकता ! आप महाराज की आज्ञा के विरुद्ध कार्य कर रहे हैं।

साजे—अच्छा मै सडक पर राजकुमार की प्रतीक्षा करूँगा ।

(राजकुमार अभयजीत विजयपाल के साथ डेरे मे चला जाता ।)

एक फूलवाली प्रवेश करती है ।

फूलवाली—महाराज ! यह भभूती कौन है ?

साजे—तुम भला क्यो पूछ रही हो ?

फूलवाली—मैं देवता के पास से आई हूँ, इस शहर मे नयी हूँ । मैंने सुना है कि भभूती के मार्ग में आज पुष्प न्यौछावर किये जायँगे । वह अवश्य देवता होगा । मै भी अपनी वाटिका से पुष्प भेट करने के लिये लाई हूँ ।

साजे—वह देवता नही, चालाक व्यक्ति है ।

फूलवाली—उसने क्या किया है ?

साजे—उसने जल को वन्दी बनाया है ।

फूलवाली—क्या इसीलिये उसकी पूजा हो रही है ? क्या ईश्वर की यही इच्छा है ?

साजे—नही, भगवान की इच्छा विल्कुल इसके प्रतिकूल है ।

फूलवाली—मै कुछ भी समझ नही सकी ।

साजे—और यही अच्छा है, कि तुम कुछ भी न समझ सको, वापिस लौट जाओ ।

(वह वापिस जाने लगती है ।)

ऐ लडकी ! बात सुनो, मै यह पुष्प खरीदना चाहता हूँ ।

फूलवाली—महाराज ! मेरी इच्छा थी कि यह पुष्प देवता के चरणो मे चढाऊँ, इसलिये मै इन्हे बेचना नही चाहती ।

साजे—वह देवता जिसका मै आदर करता हूँ, मै ये पुष्प उसकी भेट करूँगा ।

फूलवाली—फिर आप इन्हे ले ले । (साजे मूल्य देना चाहता है ।)

नही ! इसका कोई मूल्य नही हैं, केवल मेरा नाम बता दे और कह दे कि देवताली मालिन ने यह फूल दिये हैं ।

(वह चली जाती है ।)

विजयपाल अन्दर प्रवेश करता है ।

साजे—राजकुमार कहाँ है ?

विजयपाल—वह डेरे मे नजरबन्द कर दिये गये हैं ।

साजे—राजकुमार को नजरबन्द कर दिया गया, किसकी आज्ञा से भला ?

विजयपाल—राजदरबार की ओर से वारट निकाले गये हैं ।

साजे—यह किसका कुचक्र है ? मुझे राजकुमार के पास जाने दो ।

विजयपाल—क्षमा कीजिये, मै ऐसा कदापि नही कर सकता ।

साजे—तो मुझे भी पकड लो, मै भी विद्रोही हूँ ।

विजयपाल—मुझे ऐसी कोई आज्ञा नही दी गई ।

साजे—अच्छा ! तब मै स्वय आज्ञा लाता हूँ (कुछ दूर जाकर लौट आता है ।) राजकुमार को मेरी ओर से ये पुष्प दे देना ।

(दोनो चले जाते हैं ।)

धजय—(अपने एक नागरिक से) क्यो भला क्या बात है ? तुम्हारा रंग पीला पड गया है !

पहला—महाराज ! राजा का जमाई चन्दपाल वडे अत्याचार कर रहा है ।

शिवतराई का नेता गनेश प्रवेश करता है ।

गनेश—महाराज ! मुझे आज्ञा दीजिये कि मै इस पापी चन्दपाल को उसकी करनी का फल चखाऊँ !

धजय—वेटा तुम्हे यह दिखाना है कि बिना चोट पहुँचाये तुम कैसे सफल हो सकते हो ! चप्पू से लहरो को पीटा नही जाता, वरन् उन पर विजय पायी जाती है !

दूसरा—आप क्या चाहते हैं महाराज ?

धजय—अपना सिर उठाओ और कहो कि तुम पर कोई वस्तु चोट नही कर सकती, इसके बाद चोट लगाने वाला स्वतः ही समाप्त हो जायेगा ?

तीसरा नागरिक—महाराज मै ये कैसे कहूँ ? मुझे चोट लगती है और मैं कहूँ नही लगती !

धजय—हमारे अन्दर एक अग्नि की चिनगारी होती है जो वास्तव में हमारा

जीवन है। वह सारे दुखो को सोख लेती है, बस हमारे शरीर को ही कष्ट पहुँचता है, और फिर वह कष्ट चला जाता है। तुम मुँह खोले क्या देख रहे हो, क्या मेरी बात समझ मे नही आई !

दूसरा—बापू ! हम तुम्हारी बात समझ गये हैं, यदि हम समझे नही तो इसमे आपका दोष नही।

गनेश—महाराज ! आपकी बाते देर के पश्चात् समझ मे आती हैं, पर यदि एकबार समझ में आ जायँ तो हम तुरत तो बच जायँ।

धजय—पर बच जाने के पश्चात् ?

गनेश—हम आपके पास शरण लेने आये हैं, क्योकि हम आपको अपना गुरु समझते हैं।

धजय—बिल्कुल गलत ! तुम्हारे नेत्र अभी तक क्रोध से लाल हो रहे हैं, और तुम्हारी आवाज में सगीत नही है ! पागलो से बचने के लिये तुम लोग या तो दूसरो को कष्ट पहुँचाते हो या भाग जाते हो। यह दोनो बाते सभ्य व्यक्तियो की नही होती। मुझे पकड लो, मेरा सब कुछ छीन लो ! देखो बच्चो ! मैं अपने भगवान से यह कहना चाहता हूँ कि वह मुझे परीक्षा मे डाले और देखें कि चोट मुझ पर प्रभाव करती है या नही। मै इस सफर मे अपनी नाव को उन लोगो से बोझल बनाना नही चाहता, जो स्वय तो डरते ही हैं, दूसरो को भी डराते हैं !

सब के सब एक आवाज होकर—महाराज ! हम आपके साथ हैं ! हमे बताइये आप किधर जा रहे हैं ?

धजय—राजा के त्यौहार मे।

तीसरा—महाराज ! वह त्यौहार आपके लिये नही है, वहाँ आप क्यो जाते हैं ?

धजय—राज्य दरबार में अपना नाम बताने के लिये।

चौथा—यदि राजा ने आपको पकड लिया तो· ·नही, ऐसा नही हो सकता !

धजय—ऐ मानव ! ऐसा ही होगा और अवश्य होगा !

पहला—महाराज ! आप राजा से नही डरते ?

धजय—तुम डरते इसलिये हो कि तुम चोट लगाना चाहते हो, मै किसी को कष्ट नही पहुँचाना चाहता, इसलिये नही डरता ।

दूसरा—यदि ये बात है तो हम आपके साथ हैं, चलिये !

धजय—तुम राजा से क्या कहोगे ?

तीसरा—बाते तो बहुत-सी है, पर पता नही वहाँ कौन-सी स्वीकार होगी ?

धजय—तुम राजा से राजपाट क्यो नही माँगते ?

दूसरा—महाराज ! आप हास्य कर रहे हैं ?

धजय—हास्य तो नही । राजपाट केवल राजा का ही नही होता बल्कि उसमे आधा भाग प्रजा का भी होता है । राजा के लिये ही तुम राजपाट माँगो ?

दूसरा— फिर तो हमे धक्के मारकर बाहर निकाल दिया जायेगा ।

धजय—यदि तुम्हारी बात मे सचाई है तो राजा की ओर से जो अधिकार दिया जायेगा, वह राजा को ही मिलेगा । बच्चो ! मै तुम्हे सचाई का एक नियम बताता हूँ । जब तक तुम यह मानो कि भगवान ही सबका रखवाला है तो फिर राजपाट के लिये तुम्हारी बात व्यर्थ है । दरवान हमें भीतर कैसे जाने देगा जबकि हमारे राजसी चेहरे पर धूल अटी होगी । इसके सिवाय हमारे पास और कोई प्रमाण भी तो नही ।

पहला—महाराज ! आपकी बात हमारी समझ मे नही आई कि आप राज्य दरबार मे क्यो जा रहे हैं ?

धजय—मै बताऊँ ? मै वहाँ क्यो जा रहा हूँ ? इसलिये कि तुम्हारे बारे मे मेरा माथा ठनका है ।

पहला—बापू !

धजय—तुम तैरने की चेष्टा करते हो, पर मुझसे चिपटे हुये हो । इस प्रकार तुम तैरने का पाठ भी भूल रहे हो, और मुझे भी नीचे घसीटना चाहते हो ! मै तो अकेला ही जाना चाहता हूँ ।

पहला—पर राजा आपको छोडेगा नही ।

धजय—भला राजा को मेरी क्या आवश्यकता हैं ?

दूसरा—यदि आपको कष्ट दिये गये तो हम चुप नही रह सकेंगे।

धजय—मैंने अपना शरीर भगवान को सौप दिया है, यदि वह चाहता है कि इसे कष्ट दिया जाय तो तुम्हे शाति से काम लेना होगा।

पहला—बापू ! हम भी आपके साथ चलेंगे और देखेंगे कि क्या होता है ?

धजय—तुम सब यही प्रतीक्षा करो। हम उस नगर को नही जानते, तनिक मैं इधर-उधर से ज्ञात करना चाहता हूँ उसके सम्बन्ध में।

(वह चला जाता है।)

पहला—क्या तुमने उत्तरकोट निवासियो का रग-रूप देखा है ? लगता है भगवान जब उन्हे बना रहा था तो बनाते-बनाते अचानक रुक गया।

दूसरा—और उनके वस्त्र कितने बेढगे होते हैं।

तीसरा—वह कुछ इस प्रकार गठे हुये हैं मानो कही टपक न पडे।

पहला—मूर्ख ! रात दिन जुते रहते हैं, एक मण्डी से दूसरी मण्डी में जाते हैं। बस उनको यही धुन है।

दूसरा—इनका समाज भी किसी काम का नही, और इनकी पुस्तके भी बिल्कुल बेकार हैं।

तीसरा—वह अपने जीवन को अपने ही हथियार से समाप्त करते हैं। और अपनी पुस्तको से अपने ज्ञान को नष्ट करते हैं।

दूसरा—पिता ! पिता !! हमारा गुरु कहता है कि इनकी परछाईं में जाना भी पाप है। जानते हो क्यो ?

तीसरा—हाँ, बताओ !

दूसरा—देवताओ की मडली में जब अमृत बँट रहा था, उस समय गिलासो से कुछ बूँदे नीचे गिर पडी, और उस मिट्टी से शिवतराई के पुरखो का जन्म हुआ। पर, जब अमृत पी लिया और गिलास रिक्त हो गये तो उन्हे तोड दिया गया, इसी मिट्टी से उत्तरकोट के वासियो का जन्म हुआ। इसीलिये ये सब इतने पापाण और गन्दे हैं।

तीसरा—तुमने यह कहाँ से सुना ?

दूसरा—अपने गुरु से।

तीसरा—(शीश झुकाकर), गुरु तुम सच्चे हो।

उत्तर कोट के निवासियों का एक दल प्रवेश करता है।

पहला—और सब काम तो ठीक है, पर राजा ने भभूती को क्षत्रियो में सम्मिलित कर लिया है।

दूसरा—अरे छोडो इस कहानी को, फिर देखा जायगा। इस समय हमे 'भभूती की जय' के नारे लगाने चाहिये।

तीसरा—अहा ! वह देखो शिवतराई के निवासी !

पहला—तुम किस प्रकार जानते हो ?

दूसरा—क्या तुम इनके कनटोप नही देखते, बडे मजेदार दिखायी देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान इनका शरीर बनाते-बनाते सिर पर आकर रुक गया था। क्या वह समझते हैं कि भगवान ने इनके कान बनाकर भूल की !

पहला—उन्होंने अपने कानो के सामने एक दीवार खडी कर दी है, ताकि इनका ज्ञान कभी बाहर न निकल जाय !

तीसरा—ये बात नही, बल्कि कहीं कोई हानि की बात न सुन ले इसलिये।

पहला—उत्तरकोट का कोई कान खीचने वाला भूत इन पर सवार हो जायगा।

(सब हसते हैं।)

पहला—क्या तुम सब शिवतराई के रहने वाले हो ?

तीसरा—क्या तुम नही जानते कि आज हमारा त्यौहार है ? आओ त्यौहार मे चले और 'भभूती की जय' के नारे लगाये !'

गनेश—हम क्यो भभूती की जय के नारे लगाये ? उसने भला क्या किया है ?

पहला—अरे भाई तनिक सुनना। 'उसने क्या किया है ?' अरे अभी तक सब से बडा समाचार तुम तक नही पहुँचा। उतारो ये कन्टोप !

(उत्तरकोट के निवासी हँसते हैं।)

तीसरा—क्या तुम यह पूछते हो कि उसने क्या किया है ? सुनो ! जिस पानी से तुम अपनी प्यास बुझाते थे, वह उसके हाथो मे है। यदि वह उस पानी

को रोके रहा तो तुम मेढको की तरह टर्रा-टर्रा कर मर जाग्रोगे।

शिवतराई का निवासी—हमारा पानी भभूती के हाथो मे ? क्या वह भगवान बन गया है ?

उत्तरकोट का निवासी—हाँ उसने भगवान को छुट्टी दे दी है, और उसका कार्य स्वय सम्हाल लिया है।

शिवतराई का निवासी—उसने क्या किया है ?

उत्तरकोट का निवासी—उसने मुक्त धारा पर बाँध लगा दिया है।

(शिवतराई के निवासी हँसते हैं।)

उत्तरकोट का निवासी—क्या तुम परिहास समझ रहे हो ?

गनेश—परिहास नही तो और क्या ? जो वस्तु हमे भैरो देवता ने दी है क्या एक लोहार का लडका उसे छीन सकता है ?

उत्तरकोट का निवासी—वह देखो यन्त्र।

शिवतराई का निवासी—ओह ! यह क्या भूत है ? ऐसा लगता है कि कोई टिड्डा आकाश की ओर छलाँग मारने लगा है।

उत्तरकोट का निवासी—यह टिड्डा अपनी टाँगो से तुम्हारा पानी बन्द कर देगा।

गनेश—अरे यार हमे क्यो मूर्ख बनाते हो ? कल तुम यह कहोगे कि वह लुहार का बेटा टिड्डे पर चढकर चन्द्रमा को जा रहा है।

उत्तरकोट का निवासी—यह तुम्हारा दोष नही, तुम्हारे कन्टोप तुम्हे कुछ सुनने नही देते हैं, इसीलिये तुम नष्ट हो रहे हो।

शिवतराई का निवासी—हम नष्ट नही होगे।

उत्तरकोट का निवासी—यह बात अच्छी है पर तुम्हे बचायेगा कौन ?

शिवतराई का निवासी—क्या तुमने हमारा देवता धजय नही देखा? उसका एक जन्म मदिर मे है और दूसरा बाह्य ससार में।

उत्तरकोट का निवासी—तनिक इन कन्टोप वालो की बाते तो सुनो ! अरे भले आदमी ! अब तुम्हारे सामने सकट ही सकट है।

(उत्तरकोट के वासी चले जाते हैं और धजय प्रवेश करता है।)

धजय—पागलो ! इनसे क्या बाते कर रहे थे ? क्या मृत्यु से बचाना मेरा काम है ?

गनेश—उत्तरकोट वाले कह रहे थे कि भभूती ने मुक्तधारा का पानी रोक दिया है।

धजय—क्या वह कह रहे थे कि बाँध लगा दिया गया है ?

गनेश—हाँ, पिता जी !

धजय—तुमने ध्यान से उनकी बातो को सुना !

गनेश—बापू ! उनकी बाते सुनने योग्य नही थी !

धजय—यह दुनियाँ बातो से भरी है और उस ओर से कान बन्द नही किये जा सकते।

(बाहर चला जाता है।)

शिवतराई का एक और रहने वाला प्रवेश करता है।

शिवतराई का वासी—विशन क्या समाचार है ?

विशन—राजकुमार को शिवतराई से वापिस ले आये हैं ?

सब—नही ये नही हो सकता !

विशन—अब क्या करोगे ?

सब—हम राजकुमार को वापिस ले जायेगे।

विशन—कैसे ?

सब—बलपूर्वक !

विशन—और राजा ?

सब—हम उसका मुकाबिला करेगे।

राजा अपने मंत्री के साथ भीतर आता है।

राजा—किस का मुकाबला करोगे ?

सब—महाराज की जय !

गनेश—महाराज हम एक प्रार्थना लेकर आये हैं।

राजा—हम सुन रहे हैं।

सब—हमे राजकुमार को वापिस दे दीजिये महाराज !

राजा—क्या बढिया वस्तु मागी है तुमने ।

सब—महाराज हम राजकुमार को शिवतराई वापिस ले जायेंगे ।

राजा—ताकि उसके पश्चात् लाग देना भूल जाओ ।

सब—महाराज हम भूखे मर रहे हैं ।

राजा—तुम्हारा नेता कहाँ है ?

दूसरा नागरिक—(गनेश की ओर सकेत करके) महाराज ! हमारा नेता ये हैं ।

राजा—नही वैरागी कहाँ हैं ?

गनेश—वह आ गये ।

धंजय अन्दर प्रवेश करता है ।

राजा—वैरागी क्या तुमने ही इन लोगो को पाठ पढाया है कि ये स्वय को भूल गये ।

धजय—हाँ महाराज ! मै भी स्वय को भूल गया हूँ ।

राजा—मुझे बातो मे मत डालो यह बताओ कि तुम कर दोगे या नही ।

धजय—नही महाराज !

राजा—तुम बडे अशिष्ट हो ।

धजय—महाराज जो वस्तु आपकी नही, उसे मैं आपको कैसे दे सकता हूँ ।

राजा—मेरी नही ?

धजय—जो आटा मुझ से बच रहे, वह आपका है, पर जो केवल हमारी भूख को ही मिटा सकता है वह आपका किस प्रकार हो सकता है ?

राजा—तुम मेरी प्रजा को भडका रहे हो कि वह कर न दे !

धजय—महाराज ! आपकी प्रजा बड़ी निर्बल है, और बहुत जल्दी घुटने टेक देती हैं । मै तो उन्हे ये सिखा रहा हूँ—'केवल परमात्मा को ही प्राण दो, क्योकि प्राण उसी के हैं ।'

राजा—वैरागी ! तुमने अपने कर्मो की पट्टी पर 'कष्टो' का शब्द लिख दिया है ।

धजय—महाराज ! वह पट्टी मेरे हृदय पर है, वहाँ वही रहता है जो सारे

कष्टों से परे है।

राजा—(सब से) तुम यहां से चले जाओ, केवल वैरागी यहां रहेगा !

सब—नहीं महाराज ! हम नहीं जायेंगे !

धनंजय—महाराज ! यहां केवल वही रहेगा, जिसे रहना है। आप बलपूर्वक किसी को पकड़ नहीं सकते। वह जो कुछ दे देता है सब कुछ पा लेता है, जिस वस्तु को आप लालच में आशावन्त चाहते हैं, वह पराई होती है ! देना तो उसे भी होगा। महाराज ! आप एक भूल कर रहे हैं, जब आप ये देखते हैं कि आप जिस वस्तु को बलपूर्वक अपने वश में कर लें वह आपकी है। यदि आप किसी को स्वतन्त्र छोड़ दें तो निश्चय ही विजय आपकी होगी, पर पकड लेने से स्वयं को धोखा मत दीजिये। आप समझते हैं कि आपने विश्व को अपनी आवाज पर नचा लिया। अचानक आपकी आंख खुलती है और आप देखते हैं कि जो आप नहीं चाहते थे वह हो रहा है।

राजा—मन्त्री ! इस वैरागी को पहरे में ले लो।

मन्त्री—महाराज !

राजा—मन्त्री ! तुम्हें मेरी आज्ञा पसन्द नहीं आयी ?

मन्त्री—महाराज ! दण्ड के लिये एक भयानक यन्त्र तैयार हो चुका है, अब और अधिक गर्मी से मशीन दुर्बल हो जायगी।

सब—हम ऐसा नहीं होने देंगे !

धनंजय—मुझे अकेला छोड़ दो, जाओ चले जाओ।

पहला निवासी—पिता क्या आपने यह नहीं सुना कि राजकुमार को भी हमसे छीन लिया गया है ?

दूसरा—यदि आप दोनों हमसे छीन लिये गये तो हमें शक्ति कौन देगा ?

धनंजय—आह ! मेरी पराजय होगी।

सब—क्यों पिता !

धनंजय—तुम समझते हो कि तुमने मुझे पा लिया, पर इस प्रकार तुम मुझे खो रहे हो, मैं इस रिक्तता को कैसे भरूँगा। मुझे स्वयं से लज्जा आ रही है।

पहला—ऐसा न कहिये वापू ! आप जो कहेगे हम वैसा ही करेगे ।

धजय—फिर मुझे यहाँ अकेला छोड दो, और चले जाओ ।

दूसरा—पिता ! क्या आप हमारे विना रह सकते हो ? क्या तुम्हे हमसे तनिक भी प्रेम नही हैं ?

धजय—तुमसे प्रेम करता हूँ, पर तुम्हे स्वतन्त्र छोडता हूँ । प्रेम का अर्थ यह कदापि नही कि मै तुम्हे अपने साथ अपने वन्धन मे रखूँ । वस वाते समाप्त हो गई, अव जाओ ?

दूसरा—अच्छा पिता ! हम जाते है । पर ?

धजय—पर-वर कुछ नही अपना सिर ऊँचा करके जाओ ।

सव—वापू ! हम जा रहे हैं ।

(धीरे-धीरे वाहर निकलते हैं ।)

धजय—क्या इसी को जाना कहते हैं ? शीघ्र · शीघ्र जाओ !

गनेश—जैसी आपकी आज्ञा वापू ! पर इतनी वात स्मरण रखो, हम तुम्हारे विना किसी काम के नही रहेगे ।

(वह सव चले जाते हैं ।)

राज—वैरागी तुम क्या सोच रहे हो ?

धजय—इन लोगो ने मुझे विचार मे डाल दिया महाराज !

राजा—क्यो ?

धजय—मैं सोचता हूँ कि जो काम आपका सेनापति चन्दपाल तलवार के वल पर भी नही कर सका उसे मैंने वातो-ही-वातो मे कर दिया है ।

राजा—यह कैसे ?

धंजय—एक वार मैने मुस्कराकर कहा था—मैं उन लोगो की आशाओ और विचारो को दृढ वना रहा हूँ, लेकिन आज उन्होने इस विचार को मुझ पर ही दे मारा कि मै ही वह व्यक्ति हूँ, जिनने उनकी आशाओ और विचारो को चुराया ।

राजा—यह कैसे हुआ ?

धजय—जिस प्रकार मैं इनके हृदय में जितनी ही जागृति उत्पन्न करता हूँ,

उतना ही इनके हृदय दुर्वल वनाता हूँ। यदि किसी व्यक्ति ने भार उठाया हुआ हो और वह दौड़ना आरम्भ कर दे तो उससे भार हल्का नही हो जाता। वह मुझे अपने भगवान से भी वडा समझते हैं, और कहते हैं कि मैं ही उनके भगवान का भार उतारूँगा। इसलिये वह आँखे वन्द करके मेरे साथ चिपट गये हैं।

राजा—उन्होने तुम्हे अपना भगवान समझ लिया है।

धजय—हाँ महाराज ! इसीलिये वह मुझ तक पहुँच कर रुक जाते हैं और अपने भगवान तक नही पहुँच पाते। वह शक्ति जो इन्हे भीतर से मार्ग दिखाती है, मैंने बाहर से दवा रखी है।

राजा—जव वह अपने राजा को कर चुकाने आये हैं तो तुम उन्हे रोकते हो, पर जब वह तुम्हारे चरणो में अर्पण करते हैं जो कि उन्हे परमात्मा को करना चाहिये था तो तुम चुप रहते हो।

धजय—मैं ऐसा ही करता हूँ महाराज ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मै पृथ्वी में धँस जाऊँगा। वह अपनी सारी पूजा मुझ पर व्यय कर देते हैं, इसलिये उनके सारे भार की जिम्मेदारी मुझ पर है, और इसीलिये मैं इनको छोडकर भाग नही सकता।

राजा—वैरागी ! अब तुम क्या करना चाहते हो ?

धजय—मैं उनसे दूर रहना चाहता हूँ। यदि यह सच है कि मैने इनके हृदयो और स्वतन्त्रता के वीच एक प्रचीर खड़ी कर दी है तो भैरो देवता मुझे और आपके भभूती दोनो को ही दण्ड देगा।

राजा—फिर देर क्यो करते हो ? चलो। (ओधव से) इस वैरागी को मेरे डेरे पर ले चलो।

(ओधव धजय को लेकर डेरे को चला जाता है।)

राजा—मत्री ! तनिक डेरे पर जाकर राजकुमार को देखो। क्या वह अपने किये पर लज्जित है ?

मत्री—महाराज ! यह ठीक नही। यदि आप स्वय चलते तो…………

राजा—नही ! नही !! वह विद्रोही है। उसने अपनी जनता से धोखा

किया । जब तक वह अपने किये पर पछतायेगा नही मै मुँह नही देखूँगा । मै राजप्रासाद जा रहा हूँ, वही सूचना देना ।

(राजा चला जाता है ।)

ओधव अन्दर आता है और उत्तरकोट के थोड़े से निवासी प्रवेश करते हैं ।

पहला—हमें अपने इरादो मे दृढ होना चाहिये, चलो राजा के पास चलें !

दूसरा—अरे भाई क्या लाभ ? राजकुमार उनके मन्दिर की मूर्ति है । राजा उसके विरुद्ध कोई निर्णय नही कर सकेगा, कही हमे ही उल्टा न डाँटा जाय ।

पहला—कोई बात नही, हमे अपनी बात तो कम-से-कम कह हीं देनी चाहिये । राजकुमार ने यह दिखा दिया है कि वह हमसे प्रेम नही करता । वह तो उत्तरकोट से शिवतराई को बडा समझता है ।

दूसरा—यदि ऐसा हो गया तो हम किससे न्याय माँगने जायेगे ?

पहला—यदि राजा ने राजकुमार को दण्ड न दिया तो फिर ये काम हमें स्वय करना पडेगा ।

दूसरा—तुम क्या करोगे ?

पहला—राजकुमार यहाँ नही रह सकता । उसने नदी घाटी की दीवार तोड दी है । उसे वही भेजा जायेगा ।

तीसरा—और सुना है ? लोग कहते हैं कि इस समय वह शिवतराई मे नही हैं, और वह राजमहल मे भी कही दिखाई नही देता ।

पहला—मुझे विश्वास है कि राजा ने उसे कही छुपा दिया है ।

तीसरा—छुपा दिया है । हम राजप्रासाद की प्राचीरें तोडकर उसे बाहर ले आयेंगे ।

पहला—हम राजप्रासाद में आग लगा देंगे ।

मंत्री और ओधव अन्दर आते हैं ।

पहला—(मत्री से) मत्री महोदय ! हमसे यह चाल मत चलो । राजकुमार को बाहर निकालो ।

मत्री—मै कौन हूँ जो राजकुमार को बाहर निकालूँ ।

दूसरा—आपकी सम्मति से ही उसे छिपाया गया होगा। यदि राजकुमार को बाहर न निकाला गया तो हम उसे घसीट कर बाहर निकाल लायेंगे।

मत्री—अच्छा तो राजधानी की बागडोर तुम्ही सम्हालो। और राजकुमार को राजा के वन्दीगृह से बाहर निकालो।

तीसरा—राजा के वन्दीघर से ?

मत्री—हाँ ! हाँ ! महाराज ने राजकुमार को वन्दी बना लिया है।

सब—महाराज की जय ! उत्तर कोट की जय !

दूसरा—चलो वन्दीघर मे चले !

मत्री—क्या कहा ?

दूसरा—जब हम भभूती के गले मे पुष्पहार पहिना रहे थे, उस समय कुछ पुष्पनीचे गिर पडे थे। हम उन्हे राजकुमार के गले में डालेंगे।

मत्री—तुम कहते हो कि राजकुमार पापी है, क्योकि उसने नदीघाटी की दीवार तोड डाली है। पर यदि तुम राज्य का कानून तोडोगे तो क्या यह अपराध नही होगा ?

दूसरा—वह और बात है !

तीसरा—और यदि हम कानून तोडे ! फिर ?

मत्री—इसका अर्थ है कि हम, तुम सब अपने पैर मे स्वय ही कुल्हाडी मार रहे हैं।

तीसरा—अच्छा चलो। राजमहल के सामने खडे होकर 'महाराज की जय' के नारे लगाये।

पहला—स्मरण रखना सूर्य तो डूब गया है, पर भभूती का यन्त्र अभी तक चमक रहा है।

(नगरिक बाहर चले जाते हैं।)

मत्री—अब मैं समझा कि महाराज ने राजकुमार को क्यो बन्दी बना लिया है !

ओधव—क्यो ?

मत्री—इन लोगो के क्रोध से बचाने के लिये, पर इन लोगो का क्रोध क्षण

क्षण मे तीव्र होता जा रहा है।

सांजे प्रवेश करता है।

साजे—मैं महाराज को योग्य नही समझता।

मत्री—छोटे राजकुमार आप शान्ति से काम ले, उलझने बहुत वढ गई हैं, और आपकी दौड-धूप से और भी वढ सकती हैं।

साजे—मैं नागरिको से मिला, मेरा विचार था कि वह राजकुमार से बड़ा प्रेम करते हैं और उनके दड को सह नही सकेंगे। पर नदीघाटी की दीवार तोड़ देने के कारण वह विफर रहे हैं।

मत्री—ऐसी दशा मे आपको विश्वास होना चाहिये कि राजकुमार का हित इसी मे है कि वह बन्दी बने रहे।

साजे—मै बाल्यकाल से ही राजकुमार के साथ रहा हूँ, मुझे भी बन्दीघर मे जाने दो!

मत्री—इससे लाभ क्या होगा?

साजे—प्रत्येक व्यक्ति आधा मनुष्य होता है, और यदि उसे कोई सच्चा साथी मिल जाय तो वह आधा नही रहता। राजकुमार मेरा सच्चा साथी है।

मत्री—यदि प्रेम सच्चा हो, तो फिर साथ रहने से कोई लाभ नही होता। आकाश मे मेघ और समुद्र मे जल दोनो एक ही हैं और एक दूसरे से इतनी दूर होने पर भी एक ही हैं। यदि राजकुमार तुम्हारे साथ नही तो तुम्हे यह सिद्ध करना चाहिये कि वह तुम्हारे साथ है।

साजे—मत्री! अपने मुझे स्मरण दिलाया। मै राजकुमार से दूर रहकर उसका स्मरण ताजा करूँगा। मै राजा के पास जा रहा हूँ।

मत्री—किस कारण?

साजे—मै राजा से प्रार्थना करूँगा कि वह मुझे शिवतराई का अध्यक्ष बना दे।

मत्री—पर यह अवसर बडा खतरनाक है।

साजे—और इसीलिये समय अच्छा है।

(वह चले जाते हैं।)

राजा का चाचा विश्वजीत अन्दर आता है।

विश्वजीत—कौन है यहाँ ? ओधव ?

ओधव—जी महाराज !

विश्वजीत—बस मैं अँधेरे की प्रतीक्षा कर रहा था, मेरा पत्र तुम्हे मिल गया होगा ?

ओधव—हाँ महाराज !

विश्वजीत—मैंने जो कुछ कहा, उस पर चले ?

ओधव—हाँ महाराज ! आपको थोडी देर पश्चात् प्रतीत हो जायेगा। पर…

विश्वजीत—तुम किसी प्रकार का विश्वास न करो। राजा उसे स्वतन्त्र नही करना चाहता, पर यदि कोई व्यक्ति उसे किसी प्रकार स्वतन्त्र करा दे तो राजा को बड़ा सुख होगा।

ओधव—पर राजा ऐसे व्यक्ति को कभी क्षमा नही करेंगे !

विश्वजीत—मेरे बहादुर ! तुम्हे और तुम्हारे सिपाहियो को बन्दी बना लेंगे, सारे अपराध तो मेरे ऊपर आयेंगे।

बाहर से एक आवाज—आग ! दौडो !! आग !!!

ओधव—यह लीजिये, उन्होने रसोई के डेरे में आग लगा दी है और यह सिपाहियो के डेरे के पास ही है। इस समय धजय और राजकुमार को स्वतन्त्र कर सकता हूँ।

(वह बाहर चला जाता है।)

राजकुमार भीतर आता है।

राजकुमार—(विश्वजीत से) आप यहाँ क्यो आये ?

विश्वजीत—मैं तुम्हे बन्दी बनाकर मोहनगढ ले जाऊँगा।

राजकुमार—आज मुझे कोई व्यक्ति नही पकड सकता। प्रेम और घृणा की सीमा से मैं बाहर निकल गया हूँ। आप समझते हैं कि डेरो में आग आपने लगाई है, यही आग मेरी प्रतीक्षा करती रही है।

विश्वजीत—बेटा अब तुम्हे क्या करना है ?

राजकुमार—मुझे अपने जीवन का ऋण उतारना है। मुक्तधारा से मेरा जीवन आरम्भ हुआ है, उसे मैं अवश्य स्वतन्त्र करूँगा।

विश्वजीत—इसके लिये समय बहुत अधिक है, पर आज नही।

राजकुमार—मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि वह समय आ गया है, अब पता नही फिर कब वह समय आये?

विश्वजीत—हम भी तुम्हारे साथ हैं राजकुमार!

राजकुमार—यह आदर्श मेरा था और मुझे ही पूरा करने दीजिये।

विश्वजीत—शिवतराई के निवासी तुमसे प्रेम करते हैं, और आज तुम्हारे सकेत की प्रतिक्षा कर रहे हैं। क्या उन्हे बुलावा नही भेजोगे?

राजकुमार—यदि मेरा बुलावा पहुँच गया उनको तो फिर मेरी प्रतीक्षा नही करेंगे।

विश्वजीत—मेरे बच्चे! इस समय अँधेरा बढ रहा है।

राजकुमार—जहाँ से बुलावा आता है वहाँ से प्रकाश भी आता है।

विश्वजीत—जिस मार्ग पर तुमने पैर उठाया है, मैं रोक नही सकता, पर इतना जानता हूँ कि तुमने अधेरे मे छलाग लगाई है। भगवान तुम्हारे साथ हैं, मैं तुम्हे उसी को सौपता हूँ। मुझे यह तो बतादो कि क्या हम दुबारा नही मिलेंगे?

राजकुमार—आप यह न भूले कि हम एक दूसरे से कभी भी पृथक नही हो सकते।

(वह दो विरोधी दिशाओ को चले जाते हैं, बातो और धजय प्रवेश करते हैं।)

बातो—गुरु! सूर्य डूब गया है और अधेरा छा गया है।

धजय—बेटा! हम उस प्रकाश के सहारे ही जीवित हैं, जो बाहर से हमे मिलता है। इसीलिये जब अँधेरा हो जाता है, तो हम अन्धे हो जाते हैं।

बातो—बापू! मेरा विचार था कि भैरो देवता का नृत्य आज आरम्भ हो जायगा, पर क्या भभूती ने देवता के हाथ पैर भी इस यन्त्र से बाँध दिये हैं।

धजय—जब देवता नृत्य आरम्भ करता है तो वह दिखायी नही दे सकता।

जव नृत्य समाप्त हो जायगा तो दिखाई देगा।

बातो—गुरुजी! हमे विश्वास दिलाइये, हम डर रहे हैं। भैरो देवत जागो! जागो!! जागने का यही समय है। प्रकाश लुप्त हो गया, मार्ग पर अँधेरा छा गया, कोई उत्तर नही मिलता। हमारे जीवनदाता! हमारा डर दूर कर दो। भैरो! यह सोने का समय नही है!

(वह चला जाता है।)

उत्तरकोट के निवासी प्रवेश करते हैं।

पहला—यह झूठ है! वह बन्दीघर मे नही हैं, उसे किसी और स्थान पर छुपाकर रखा गया है!

दूसरा—हम देखेगे उसे किस प्रकार छिपाते हैं?

धजय—नही! वह इसे किसी प्रकार नही छुपा सकते! प्राचीरे गिर जायगी! दरवाजे टूट जायेगे और अधकार मे भी प्रकाश उत्पन्न हो जायगा। तुम्हे सब कुछ प्रतीत हो जायगा।

दूसरा—यह कौन है? इसने मुझे चौका दिया है!

पहला—चलो हमे कोई न कोई आखेट तो अवश्य चाहिये, बाँध लो इस वैरागी को।

धजय—उसे पकडने की क्या आवश्यकता है जो सदैव से बन्दी है।

पहला—यह महात्माई एक ओर रहने दो! हम तुम्हारे चेले हैं।

धजय—तुम बडे धनाढ्य हो। मै कई भाग्यहीनो को जानता हूँ, जिन्होने गुरु को खो दिया।

पहला—इनका गुरु कौन है?

धजय—इनका गुरु वह है, जहाँ से इन्हे क्लेश पहुँचता है।

तीसरा—अरे मित्रो! अघेरा छा रहा है और यत्र भी तो काला होता जा रहा है।

पहला—दिन के समय यह बहुत चमकता था, और अब रात्रि के समय रात्रि को जमा रहा है!

दूसरा—पता नही, भभूती ने इसे ऐसा क्यो बनाया? यह यन्त्र तो मदिर

हमारे नेत्रो के समक्ष रहेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि एक चीख हुई है जो आकाश का वक्ष भेद रही है।

चौथा निवासी प्रवेश करता है।

चौथा—सुना! हमारे राजा का चाचा राजकुमार को बलपूर्वक उठाकर ले गया, और साथ ही पहरेदारो को भी ले गया।

पहला—क्या अर्थ हुआ इस बात का ?

तीसरा—यही कि राजा राजकुमार को दड न दे सके।

पहला—ऐसा नही हो सकता! हम राजकुमार को अपने हाथो से दड देना चाहते थे। हमारा अधिकार छीन लिया गया!

तीसरा—चलो! राजा के पास चले।

(वह सब चले जाते हैं।)

एक मुसाफिर भीतर आता है जो ऊँची आवाज में बोलता है।

मुसाफिर—बुद्धन! शम्भू! बुद्धन! शम्भू! क्या सिर खपा दिया है! उन्होने मुझसे कहा था कि वह छोटे मार्ग से पहले यहाँ पहुँच जायेगे और यहाँ उनका चिन्ह तक नही! (ऊपर देखकर) ओह! यह काला भूत कैसा है! वह लोहे का भयानक यत्र! यह तो मुझे दाँत निकालकर दिखा रहा है मुझे डर लग रहा है!

एक और मुसाफिर आता है।

दूसरा मुसाफिर—मै ननकू हूँ। लैम्प बेचने वाला! आज रात को त्यौहार होगा। लैम्पो की तो आवश्यकता होगी न! तुम कौन हो ?

पहला—मै हव्वा हूँ। मैं गाने वाले दल का जोडीदार हूँ। क्या तुम्हे मार्ग में वह लोग नही मिले।

इन्डो तो अवश्य मिला होगा!

ननकू—अरे यहाँ असख्य व्यक्ति घूम रहे हैं, मैं इन्हे कैसे जानूँ ?

हव्वा—पर हमारा माझू तो निराला ही आदमी है, इसे पहिचानने के लिये ऐनक की आवश्यकता नही पडती। मैंने कहा तुम्हारी टोकरी मे तो बहुत से लैम्प है। क्या मुझे एक न दोगे ? वह लोग जो बाहर फिर रहे हैं उन्हे घर

वालो से अधिक लैम्पो की आवश्यकता है।

ननकू—कितने पैसे दोगे ?

हब्बा—अरे भाई ! यदि मै पैसे दे सकता तो तुम्हे चीख कर बुलाता अ मीठी-मीठी बातो से तुम्हारी खुशामद करता !

ननकू—यार तुम भी बड़े रसीले आदमी हो।

(वह चला जाता है

हब्बा—न मिला लैम्प ! न मिला तो न सही, रसीले की डिग्री तो गयी। कुछ तो मिला। रसीले व्यक्ति अंधेरे मे भी दिखायी दे जाते हैं। चाहिये तो ये था कि मै मुक्का मारकर अँधेरे मे लैम्प छीन लेता, और रसी की डिग्री न लेता।

भर्ती करने वाला प्रवेश करता है।

भर्ती करने वाला—चलो ! चलो !!

हब्बा—अरे भाई मुझे क्यो धमका रहे हो ? बात क्या है ?

भर्ती करने वाला—चलने की तैयारी करो।

हब्बा—मै भी तो यही सोच रहा हूँ कि कहाँ जाऊँ ?

भर्ती करने वाला—(धक्का देकर) चलेगा भी या बाते ही बनाता रहेगा

हब्बा—ठीक ! अब मै समझ गया। मुझे चलना ही चाहिये। मेरी इच्छा हो या नही, पर मुझे यह तो बताइये (धक्का देकर) कि हमें जाना किधर है ?

भर्ती करने वाला—शिवतराई की ओर।

हब्बा—क्या वहाँ कोई नाटक हो रहा है ?

भर्ती करने वाला—नाटक ? हाँ नाटक ही समझ लो ! उसे कहते हैं नदी-घाटी की प्राचीन का पुनर्निर्माण।

हब्बा—तुम मेरी सहायता से प्राचीर बनाओगे ? प्रतीत होता है कि अँधेरे मे तुम्हे कुछ दिखायी नही दे रहा। इसीलिये तुम मुझ से ये बात कह रहे हो। मै तो......

भर्ती करने वाला—मैं यह नही जानता कि तुम कौन हो, मैं तो केवल ये

जानता हूँ कि तुम्हारे दो हाथ हैं !

हव्वा—मैं भी लाचार हूँ कि मेरे दो हाथ हैं, परन्तु यह तो बताओ......

भर्ती करने वाला—तुम्हारी जिह्वा से तुम्हारे हाथो का पता नही चल सकता। वहाँ चलकर सारी दशा ज्ञात हो जायगी। चलो।

दूसरा भर्ती करने वाला प्रवेश करता है।

दूसरा—ककर ! मैं भी एक व्यक्ति को अपने साथ लाया हूँ।

ककर—वह कौन है ?

मुसाफिर—मैं कोई भी नही श्रीमान। मैं तो केवल लछमन हूँ और भैरो के मदिर में घडियाल बजाता हूँ।

ककर—इसका अर्थ है तुम्हारे हाथ बडे सुदृढ होगे, चलो शिवतराई !

लछमन—परन्तु घडियाल ?

ककर—कोई बात नही। भैरो देवता स्वय घडियाल बजा लेगे !

लछमन—मुझ पर कृपा करो। मेरी पत्नी बहुत बीमार है।

ककर—यदि तुम उसके पास न रहे तो वह मर जायगी या अच्छी हो जायगी और यदि तुम घर पर रहे तब भी इन्ही दो बातो मे से एक होगी !

हव्वा—लछमन मित्र ! यो ही धमाचौकडी मचाने से कुछ नही बनेगा। यह बात ठीक है कि वहाँ जाकर काम करना खतरनाक है, पर तुम्हारा वहाँ न जाना भी खतरनाक होगा, क्योकि मैं इसका आनन्द पा चुका हूँ।

ककर—अरे सुनो ! यह नरसिह की आवाज आ रही है।

नरसिह बहुत से आदमियो के साथ आता है।

ककर—क्या समाचार है नरसिह ?

नरसिह—मैं इन आदमियो को घेर कर लाया हूँ, कुछ को भेज भी चुका हूँ।

एक—मैं नही जाऊँगा।

ककर—क्यो क्या बात है ?

वही—कुछ नही, पर मै जाऊँगा नही।

ककर—नरसिह इसका नाम क्या है ?

नरासह—इसका नाम बनवारी है, पर यह माला बतला रहा है।

ककर—मै इससे निपटता हूँ (बनवारी से) क्यो बे ! तुम क्यो जाते ?

बनबारी—शिवतराई के निवासियो से हमारी कोई लडाई नही, वह दुश्मन नही हैं।

ककर—पर यह समझ लो कि हम उनके दुश्मन हैं। अब कहो !

बनवारी—किसी का हृदय दुखाना मेरे लिये बडा पाप है !

ककर—हृदय दुखाने के बारे में तुम निर्णय नही कर सकते। उत्तर एक बडा नगर है, और तुम उसके केवल मात्र निवासी हो !

बनवारी—पर सम्भवत: आपको यह पता नही कि विश्व बहुत चौडा है, उत्तरकोट और शिवतराई तो उसके तक लघु भाग मात्र है।

ककर—नरसिह ! यह व्यक्ति तो तर्क से काम लेता है, और तर्क वाला बडा हठी होता है।

नरसिह—ऐसे व्यक्तियो का इलाज ही काम है ! इसीलिये मै इसे लिये जा रहा हूँ।

बनवारी—मै तुम लोगो पर एक भार बन जाऊँगा। और न मुझसे कोई लाभ उठा सकते हो !

ककर—तुम उत्तरकोट के लिये एक भार हो, इसलिये तुम्हे यहाँ से ०८ आवश्यक है।

हव्वा—मेरे मित्र बनवारी ! तुम समझदार व्यक्ति प्रतीत होते हो, स्मरण रखो तुम्हे बलवान आदमियो से भी काम पडता हे और समझदार व बलवान की सदैव टक्कर हुआ करती है। या तो इनका ढग सीख लो या रहो।

बनवारी—तुम्हारा ढग क्या है ?

हव्वा—मैं गाया करता हूँ, पर इस समय गाना बेकार है, ...नि चुप हूँ।

ककर—(बनवारी से) कहो अब क्या सोचा है ?

बनवारी—मै तो एक पग भी नही चलूगा।

ककर—फिर हमे उठाकर ले चलना होगा। अरे इधर आना! बाँध लो पाजी को, जो व्यक्ति सीधे ढग से नही जायेगा उसका भी हमारे पास इलाज है।

(नरसिंह और ककर को छोडकर सब चले जाते हैं।)

नरसिह—देखो भभूती आ रहा है। 'भभूती की जय।'

(भभूती प्रवेश करता है।)

ककर—हमने बहुत से आदमी एकत्रित कर लिये हैं। आप यहाँ कैसे आये? त्यौहार मे लोग आपकी बाट देख रहे हैं।

भभूती—त्योहार मे जाने को मेरा मन नही करता।

नरसिह—भला ऐसा क्यो?

भभूती—नदी घाटी का समाचार खास त्यौहार के समय भेजा गया है, ताकि मेरे रग मे भग पडे। कोई व्यक्ति मेरा मुकाबिला कर रहा है।

ककर—वह कौन हो सकता है?

भभूती—मै उसका नाम लेना नही चाहता, तुम्हे स्वय ज्ञान हो जायगा। वह इसी चिन्ता मे है कि इस देश मे उसका नाम मुझ से अधिक हो। एक बात मैंने तुम्हे बताई ही नही। दूसरे दल का एक व्यक्ति मुझे मिला था, उसने मुझे यह सकेत भी किया था कि वह बाँध भी तोड देना चाहते हैं।

नरसिह—यह एक विचित्र-सी शरारत है।

भभूती—पागलपन का इलाज तो किसी से भी नही हो सका।

ककर—पर ये तो बतलाइये कि बाँध सुदृढ है या नही। आपने एक बार बताया था कि बाँध एक दो स्थान पर कमजोर है और सरलता से. .

भभूती—जो व्यक्ति इन कमजोर स्थानो को जानते है वह ये भी जानते हैं कि यदि तोडने की चेष्टा की गई तो इन्हे पानी का बहाव तिनके की तरह बहाकर ले जायेगा।

नरसिह—मेरे विचार से वहाँ पहरा लगा देना चाहिये।

भभूती—वहाँ मृत्यु स्वय पहरेदार है। मेरे बाँध को किसी प्रकार का डर

नही, यदि मैं नदी घाटी को एक वार फिर बन्द कर दू तो मुझे वडी प्र
न्नता होगी !

ककर—आपके लिये यह कौन बड़ा कार्य है ?

भभूती—मेरा कार्य तो पूर्ण है, पर घाटी इतनी सकीर्ण है कि थ
व्यक्ति भी जमकर मुकाबिला कर सकते हैं।

ककर—इसका अर्थ ये है कि हमे ऐसे व्यक्ति वहाँ ले जाने चाहिएँ,
मरने के लिये तैयार हो।

(दृश्य के पीछे से आवाज़ है, जागो ! भैरो जागो !
धंजय प्रवेश करता है।

ककर—हम अपने मोर्चे पर जा रहे हैं, और इस समय इसका आना क
अच्छा सगुन नही है।

भभूती—वैरागी ! तुम्हारे जैसे साधू भैरो को कभी नही जगा सकते।
जैसे नागरिक ही तुम्हारे देवता को झिझोड सकते हैं।

धजय—मुझे भी पूरा विश्वास है कि तुम्ही देवता को जगाओगे।

भभूती—हम देवता को मदिर मे जाकर घडियाल और घटो से
जगाया करते।

धजय—नही ! जब तुम उसे अपनी शृखलाओ से बाँधोगे तो वह
खोल देगा।

भभूती—हमारी शृखलाये यो ही नही टूट सकती, जिस प्रकार पाप अगणि
होते है उसी प्रकार शृललाओ के जोड़ भी नही गिने जा सकते।

धजय—वह उस समय आता है जब अटकाव दूर न हो सके।

(पुजारी गाते हुये निकलते हैं।

राजा और मंत्री प्रवेश करते हैं।

मत्री—महाराज ! डेरो को आग लगा दी गई है, पहरेदार भी वहाँ....

राजा—छोडो उनको। यह बताओ कि राजकुमार कहाँ है। मैं
समय जानना चाहता हूँ।

ककर—महाराज ! हम राजकुमार को स्वय दड देना चाहते हैं।

राजा—कदि कोई व्यक्ति दड पाने का अधिकारी हो, तो क्या मैं उसके लिये तुम्हारी बाट जोहूँगा ?

ककर—महाराज ! राजकुमार मिलता नही और लोगो को शक हो रहा है कि.... .

राजा—शक ? किसके विरुद्ध ?

ककर—महाराज ! क्षमा कीजिये, आप तो अपनी प्रजा को जानते ही हैं। राजकुमार ढूँढने से नही मिल रहा और यदि वह मिल गया तो प्रजा आपके निर्णय की प्रतीक्षा नही करेगी।

भभूती—और हमने यह भी निर्णय कर लिया है नदी घाटी का फिर पुन-र्निर्माण हो।

राजा—राजा के होते हुये तुम्हे यह निर्माण नही करना चाहिये था।

भभूती—हमे यह शक पैदा हो सकता है कि आपने गुप्तरूप से राजकुमार को आज्ञा दे दी है कि वह नदी घाटी की प्राचीर तोड डाले।

राजा—यह कौन है ? धजय ?

धजय—मैं बडा प्रसन्न हूँ कि आप मुझे भूले नही हैं।

राजा—तुम्हे ज्ञात होगा कि राजकुमार कहा हैं ?

धजय—जिस बात का मुझे पूर्ण पता हो, उसे मैं छिपाया नही करता।

राजा—यहाँ क्या कर रहे हो ?

धजय—मै राजकुमार की बाट जोह रहा हूँ।

(बाहर अम्बा की आवाज आती है।)

अम्बा—(बाहर से) सुमन ! सुमन ! मेरे लाडले, अँधेरा हो चुका है। अब लौट आओ।

राजा—यह किस की आवाज है।

मत्री—महाराज ! यह वही पगली अम्बा है।

अम्बा भीतर आती है।

अम्बा—वह अभी तक वापिस नहीं आया।

राजा—तुम उसे क्यो ढूंढ रही हो ! उसका समय आ गया था, भैरो देवता ने उसको बुला लिया।

अम्बा—क्या भैरो केवल बुलाया ही करता है, वापिस नही दिया करता !

-ईर्स अधकार मे ? मेरे सुमन !

(अम्वा वाहर चली जाती है

एक हल्कारा भीतर आता है ।

हल्कारा—शिवतराई से असख्य व्यक्ति इधर वढे आ रहे हैं ।

भभूती—हमने यह निश्चय किया था कि इन पर अचानक आक्रमण जाय । हम में से कोई देशद्रोही अवश्य हैं । ककर सिवाय तुम्हारे दल के किसी को भी ज्ञात न था । भला ये कैसे हुआ ?

ककर—तुम हम पर भी सन्देह करते हो ?

भभूती—सन्देह की भी कोई सीमा होती है ?

ककर—फिर हम तुम पर सन्देह करते हैं ।

भभूती—हाँ ! तुम कर सकते हो, पर जव समय आयेगा तो वात जायगी ।

राजा—(हल्कारे से) तुम जानते हो, वह किस लिये आ रहे हैं ?

हल्कारा—उन्होने सुना है कि राजकुमार वन्दीघर मे हैं । इसलिये वह रिहा कराने के लिये आ रहे हैं ।

भभूती—हम भी राजकुमार को ही ढूँढ रहे हैं, देखो उसे कौन पाता है ?

धजय—तुम दोनो को ही मिलेगा वह ।

हल्कारा—शिवतराई का नेता गनेश आ रहा है ।

गनेश अन्दर प्रवेश करता है ।

गनेश—(धजय से) पिता ! क्या वह हमे नही मिलेगा ?

धजय—अवश्य मिलेगा !

गनेश—वचन दो ।

धजय—हाँ ! मै वचन देता हूँ ।

राजा—तुम किसे ढूँढ रहे हो ?

गनेश—राजा ! तुम उसे मुक्त कर दो !

राजा—किस को ?

गनेश—हमारे राजकुमार को ! आपको उसकी आवश्यकता न होगी, हमे तो है । क्या आप हमारे जीवन को बिल्कुल समाप्त कर देना चाहते हैं ?